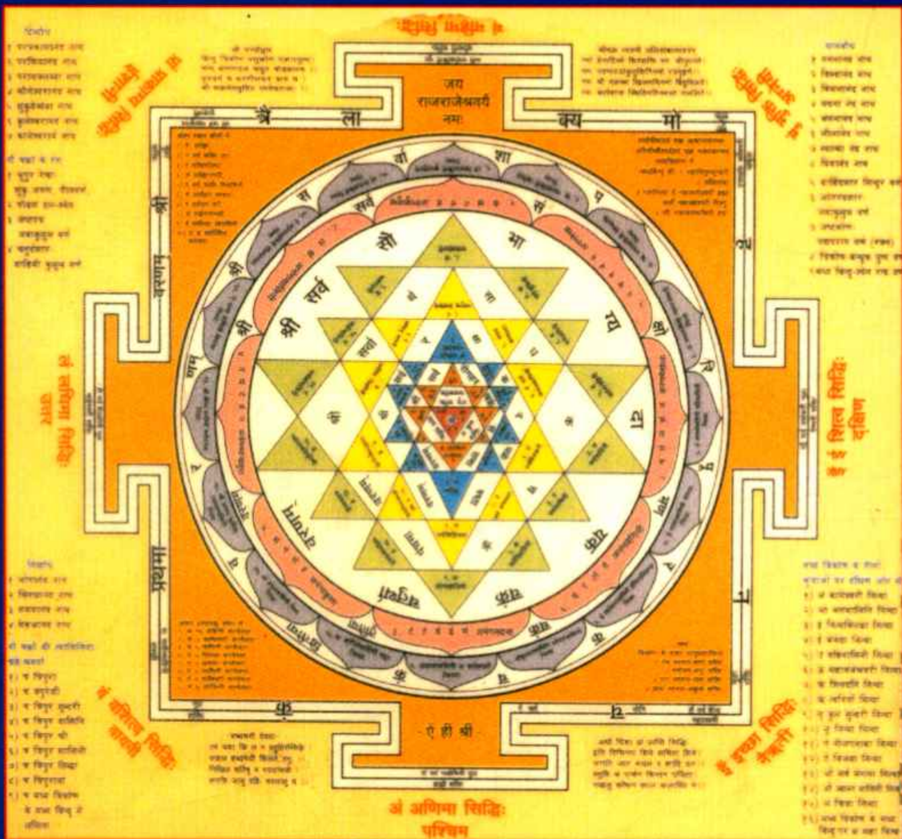
श्री धर्माचार्यकृता

॥ श्रीपञ्चस्तवी ॥



अनुवादक :

ईश्वरस्वरूप स्वामी लक्ष्मण जी महाराज

प्रकाशक :

ईश्वर-आश्रम ट्रस्ट

श्रीनगर - जम्मू - दिल्ली

श्री धर्माचार्यकृता

श्रीपञ्चस्तवी

अन्वय-पदच्छेद-शब्दार्थ, अनुवाद तथा
विशेष संकेतों सहित

अनुवादक :

शैवाचार्य ईश्वरस्वरूप स्वामी लक्ष्मण जी महाराज

प्रकाशक :

ईश्वर-आश्रम ट्रस्ट

श्रीनगर - जम्मू - दिल्ली

प्रकाशक :
ईश्वर आश्रम ट्रस्ट
इश्बर (निशात), श्रीनगर, कश्मीर

पुस्तक प्राप्तिस्थान
प्रशासनिक कार्यालय :
ईश्वर आश्रम भवन
2 महिन्दर नगर, कनाल रोड
जम्मू-तवी - 180016

ईश्वर आश्रम भवन
आर-5/डी पॉकेट
सरिता विहार
नई दिल्ली-110044

प्रथम संस्करण - सन् 2008
मूल्य : रु० 100 (अजिल्द)
रु० 135 (सजिल्द)

मुद्रक :
मेहरचन्द लछमनदास पब्लिकेशंस
4225-ए, 1 अन्सारी रोड, दरियागंज
नई दिल्ली - 110002

इस संस्करण के विषय में

सद्गुरवे नमः

श्री पञ्चस्तवी का नवीन परिष्कृत संस्करण प्रस्तुत करते हुए ईश्वर-आश्रम ट्रस्ट श्रीनगर, कश्मीर अपार प्रसन्नता का अनुभव कर रहा है। यह नवीन परिवर्तित संस्करण आज से तीन दशक पूर्व प्रकाशित संस्करण का ही नवीनतम रूप है। पिछले संस्करण में प्रकाशन अशुद्धियां यथासंभव सावधानी बरतने पर भी स्थान-स्थान पर दृष्टिगोचर होती थीं, जिससे इस बहुमूल्य पुस्तक की महनीयता पर प्रश्न चिन्ह सा लगा था। इस बात को ध्यान में रखकर ईश्वर आश्रम ट्रस्ट के आदरणीय सदस्य प्रस्तुत पुस्तक के परिष्कृत संस्करण के लिए बहुत समय से लालायित थे। उनकी सतत् प्रेरणा ही इस नवीन संस्करण को साकार रूप देने में सहायक रही। ईश्वरस्वरूप सद्गुरु महाराज की असीम अनुकम्पा के फलस्वरूप प्रस्तुत ग्रन्थरत्न पारखियों के बाजार में अब झिलमिलाने लगेगा। यह ग्रन्थरत्न अनमोल है। इसकी चमक-दमक अन्तर्हित होके भी सर्व व्यापक है। ईश्वरस्वरूप जैसे जौहरी ने अपनी साधना, अनुभूति और व्यवहार कुशलता से इस ग्रन्थरत्न की जो बारीकियां दृष्टिपथ में लाई हैं वे विवेचनीय हैं।

पंचस्तवी क्या है?

इस पंचस्तवी का शाब्दिक अर्थ है कि इस पुस्तक में पांच स्तव अर्थात् पांच भिन्न-भिन्न स्तोत्र हैं। स्तोत्र ग्रन्थ होने के नाते यह ग्रन्थ किसी विशेष कथानक पर आधारित नहीं है। इस पुस्तक के स्तवों का प्रत्येक श्लोक स्वयं परिपूर्ण है और अगले श्लोक से असंबद्ध है। इन पांच स्तोत्रों या स्तवों में महात्रिपुरसुन्दरी, जो पराम्बा जगत् जननी है, के अनन्त आयामों का दिग्दर्शन किया गया है। कश्मीर त्रिकदर्शन का उल्लेखनीय प्रभाव इस ग्रन्थरत्न पर पड़ा है। त्रिकदर्शन की विशेष बारीकियां इसमें स्वतः प्रस्फुटित हैं इसीलिए प्राचीन काल से देश के सारे साधक व संस्कृत साहित्यप्रेमी इस पुस्तक को आदर की दृष्टि से देखते हैं। शायद कोई देवस्थल या देवी स्थान हो जहां इस पुस्तक के स्तोत्रों का या इसके विशेष श्लोकों का पाठ नहीं होता है। कश्मीर में इसकी महत्ता इससे भी आंकी जाती है कि प्रदेश की अशिक्षित नारियां भी इस ग्रन्थरत्न के कुछेक श्लोकों को आदर के साथ कण्ठस्थ पढ़ती हैं। कश्मीर में पण्डितजाति की शायद ही कोई ऐसी नारी या नर

हो जिसे कम से कम माया कुण्डलिनी अथवा अजानन्तो यांति या लक्ष्मीवशीकरण आदि श्लोक कण्ठस्थ न हो। वास्तव में ललितापराम्बा, राजराजेश्वरी, महात्रिपुरसुन्दरी, महाकामेश्वरी और महाकामकला आदि नामों से तत्त्वज्ञानियों को परम परमेश्वर की ही अनुभूति होती है क्योंकि पर, परापर और अपर सामर्थ्यशालियों में परमशिव ही एकमात्र परसामर्थ्यशाली है, जिसकी महानता को सच्चा साधक स्तोत्रों की गरिमा से अनुभव करता है। अतः त्रिकदर्शन की दृष्टि में परमशिव का वर्णन हो या ललिता पराम्बा का दोनों एक ही हैं। कहा भी है—

शक्तिश्च शक्तिमद्रूपात् व्यतिरेकं न वाञ्छति।
तादात्म्यं अनयोर्नित्यं वह्निदाहकयोरिव।।

श्री सर्वमंगला शास्त्र में भी कहा गया है—

न शिवेन विना देवी नहि देव्या विना शिवा।
नानयोरन्तरं किंचित् चन्द्रचन्द्रिकयोरिव।।

भारतीय संस्कृत साहित्य में देवी स्तोत्रों की महिमा अपरम्पार है। श्री विद्यास्तोत्रों में श्रीललितादेवी सहस्रनामस्तोत्र, भगवान् दुर्वासा का श्रीत्रिपुरामहिम्नस्तोत्र, श्री गौडपाद का सुभगोदय, श्री शंकराचार्य की सौन्दर्यलहरी, श्रीधर्माचार्य की पंचस्तवी, श्री विद्यारण्यपाद का विद्यार्णव, तथा श्री नित्यानन्दनाथ का सौभाग्यरत्नाकर उल्लेखनीय हैं।

पंचस्तवी में महिमापूर्ण और अतीव सार गर्भित पांच स्तव है जिनमें दिव्यशक्ति मती पराम्बा का उत्कृष्ट वर्णन है। इसमें कुण्डलिनी शक्ति के आकर्षकरूप और आकर्षक तत्त्व का भी वर्णन अनेक स्थानों पर सहज ढंग से किया गया है। परमसत्य की महत्ता को नाना प्रकारों से इस ग्रन्थ में उकेरा गया है। अति गूढरहस्यों की उर्वरा भूमि यदि इस पंचस्तवी को माना जाये तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। वैदिक युग के अनन्तर भारत में तीन शाक्तमतावलम्बी तीन प्रदेशों में प्रभावशाली रहे। एवं गौडीय मतावलम्बी बंगाल में तारा की, कश्मीर में कौलीय धारा के अनुयायी त्रिपुरा या त्रिपुरसुन्दरी की, केरला में केरलीय कालिका पूजा को महत्त्व देने लगे। त्रिपुरसुन्दरी ही महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती के रूपों में प्रकट हुई। यही त्रिपुरा पाकिस्तान में स्थित शारदा शक्ति पीठ में मुखर वाणी स्वरूपा सरस्वती है और कश्मीर के शारिका पर्वत (हारीपर्वत) के चक्रेश्वर पीठ पर मौन यन्त्र स्वरूपा है। इन दोनों पीठों का परस्पर गहरा सम्बन्ध योगियों में पाया जाता था।

पंचस्तवी के स्तवों का प्रचलन कश्मीर में अन्य प्रदेशों से इसीलिए अधिक रहा क्योंकि कश्मीर देश स्वयं माता का स्वरूप है। इसका उल्लेख कल्हण ने राजतरंगिणी (१०७२) में इस प्रकार किया है कि स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने कश्मीर में एक समारोह में पधार कर कहा था कि कश्मीर की धरती स्वयं में पार्वती का स्वरूप है।

पंचस्तवी में जिन पांच स्तवों के होने का उल्लेख ऊपर किया गया उनके नाम इस प्रकार हैं–

१. लघुस्तव २. चर्चास्तव ३. घटस्तव ४. अम्बास्तव ५. सकलजननीस्तव।

इन पांच स्तवों की स्तुति कथा से पराशक्ति की चित्, आनन्द, इच्छा, ज्ञान और क्रिया शक्ति की महिमा को ही उभारा गया है। शैवदर्शन की बारीकियों का जहां तक सम्बन्ध है, तदनुसार लघुस्तव में आणवोपाय जिसे क्रियोपाय या लघुउपाय भी कहते हैं, का संकेत है। इसी आधार पर कई विद्वान् प्रथम स्तव को लघुस्तव का नाम देना युक्ति संगत मानते हैं।

दूसरे स्तव को चर्चास्तव कहते हैं इसमें शाक्तोपाय जिसे ज्ञानोपाय भी कहते हैं की पद्धति की ओर संकेत है। चर्चा का अभिप्राय सत्यान्वेषण है इसीलिए शाक्तोपाय की स्थिति इसमें कही गई है।

तीसरे स्तव घटस्तव में शाम्भवोपाय की ओर संकेत है। शाम्भवोपाय को इच्छोपाय भी कहते हैं। शाम्भवोपाय शक्तिपात की चरमसीमा माना जाता है। अतः महामाया इस स्तव की अधिष्ठात्री देवी है। महामाया में सारा विश्व अन्तर्लीन है जैसे सागर घट में। इसी धारणा के आधार पर इस स्तव का घटस्तव नाम दिया गया है। चौथे स्तव अम्बास्तव में अनुपाय की ओर संकेत है। इसे आनन्दशक्ति का ही प्रतिरूप माना गया है जो शिव शक्ति वैभव के पंच कृत्य में दूसरे स्थान पर है। सारा ब्रह्माण्ड इसी अपार चेतना का प्रवाह है।

पांचवां स्तव "सकलजननी स्तव" है, जो चित् शक्ति का ही प्रसार है। परमशिव से अभिन्ना यह चित् शक्ति (संवित् शक्ति) समस्त ब्रह्माण्ड की प्रसवित्री जननी है। नानाविध दार्शनिक गुत्थियों में इस पराशक्ति को उलझाकर कवि धर्माचार्य ने अपने परमवैदुष्य का प्रमाण इस स्तव में दिया है।

इस प्रकार चित्, आनन्द, इच्छा, ज्ञान और क्रियात्मक पांच विभूतियों का कवि ने पुस्तक के पांच स्तवों में वर्णन करके कश्मीर शैवदर्शन की महत्ता को नतमस्तक स्वीकारा है।

प्रथम लघुस्तव की चर्चा जब हम करते हैं तो यह स्पष्ट होता है कि इस स्तव का मूलमन्त्र श्री बाला भगवती का है। इसी मन्त्र के आधार पर अनेक रहस्यपूर्ण मन्त्रों का उद्धार, मन्त्रोपासना ध्यान और उनके फल आदि का रहस्य वर्णित है। केरल प्रदेश में "बाला भगवती" का ही बोलबाला है। कश्मीर में भी श्रीनगर से पन्द्रह सोलह मील की दूरी पर "बाल होम" नामक स्थान पर बाला भगवती का प्रधान पीठ है। हमारे सद्‌गुरु ईश्वरस्वरूप महाराज प्रायः अपनी इष्टदेवी श्री ज्वालाभगवती के जन्मोत्सव (आषाढ़ शुक्ल चतुर्दशी) पर या अन्य किसी विशेषपर्व पर इष्टदेवी की पूजा करके 'बालादेवी'; के पीठ पर पधार कर परार्चा में लीन होते थे। केरल में पंचस्तवी के इस लघुस्तव को २१ श्लोकों के आधार पर एक विंशतिका नाम से भी जाना जाता है। इस लघुस्तव पर बहुत सारी टीकायें उपलब्ध हैं। इनमें एक टी. गणपति शास्त्री की है। दूसरी जैनाचार्य पण्डित गोवर्धन शर्मा रचित छः सौ साल पुरानी है। मद्रास राजकीय पुस्तकालय में दो हजार श्लोकों वाली लघुबृंहणी नामक एक और पुस्तक इसी पंचस्तवी से संबद्ध है। पर दुर्भाग्यवश यह आजतक अमुद्रित है। कश्मीर के कई पण्डित घरों में पंचस्तवी की कई हस्तलिखित प्रतियां, मूलमात्र या सटीक विद्यमान थीं जो अप्रकाशित रहीं। कश्मीर के महान् शैवाचार्य, धुरन्धर विद्वान् श्री हरभट्ट शास्त्री (सन् १८९४-१९५१) ने कश्मीर शैवदर्शन की सूक्ष्मतम टिप्पणियों के साथ शैवी टीका मधुर और स्फुट संस्कृत भाषा में की। यह टीका शैव सिद्धातों के अन्यतम उद्धरणों से सुसज्जित है। ऐसा प्रतीत होता है कि किसी शोधग्रन्थ का ही हम अध्ययन कर रहे हैं।

पंचस्तवी का कर्ता कौन?

पंचस्तवी का रचयिता कौन थे? कहां के रहने वाले थे? किस काल के विद्वान् थे? इस विषय में विभिन्न मत हैं। वाणी विलास नामक प्रेस से प्रकाशित पञ्चस्तवी का प्रणेता कालिदास है। सौन्दर्य लहरी के व्याख्याकार श्री लक्ष्मीधर ने अपनी टीका में पंचस्तवी का एक श्लोक उद्धृत किया है और उसका लेखक कालिदास ही माना है। कई शैवी आचार्यों का कथन है कि आचार्य अभिनवगुप्तपाद ही इस शैवी स्तोत्र ग्रन्थ का रचयिता है। कई आचार्यों का यह कथन है कि अभिनवगुप्तपाद ने किसी ज्ञानानन्द नामक अपने प्रियशिष्य के मस्तक पर अपना वरदहस्त रखा जिसकी महिमा से उनसे श्री राजराजेश्वरी मां की सुन्दरमन्त्ररहस्यात्मक स्तुति पांच स्तवों में स्वतः प्रस्फुटित हुई।

पंचस्तवी की कई हस्तलिखित प्रतियों में श्री लघ्वाचार्य को पंचस्तवी का रचयिता माना है। इसका प्रमाण वे पंचस्तवी के लघुस्तव का ही यह श्लोक "संचिन्त्यापि लघुत्वमात्मनि" आदि देते हैं। वे इस धारणा की पुष्टि इससे करते हैं कि लघुस्तव का यह नाम भी लघ्वाचार्य के नाम पर रखा गया होगा। कई अन्य हस्तलिखित प्रतियों में आचार्य श्री पृथ्वीधर को इसका प्रणेता माना है। यह पृथ्वीधर आचार्य अभिनवगुप्त के गुरु श्री शम्भुनाथ का शिष्य था। कई प्रतियों में शेषरामचन्द्र आचार्य इसका लेखक माना है।

दूसरी बात यह है कि कुछेक प्रधान ग्रन्थों में पंचस्तवी के श्लोकों को उद्धृत किया गया है पर उनमें रचयिता का नाम नहीं दिया गया है। श्री भोज महाराज ने सरस्वती कण्ठाभरण में, आचार्य मम्मट ने अपने काव्यप्रकाश में, श्री शिवानन्द ने मातृकाचक्रविवेकव्याख्या में माधवाचार्य ने सर्वदर्शन संग्रह में, श्रीमान अप्पय-दीक्षित ने कुवलयानन्द में पंचस्तवी के श्लोकों को या पद्यांशों को दिया है पर प्रणेता का नाम कहीं भी नहीं है।

पर हर्ष की बात है कि विद्यारण्य पाद ने विद्यार्णव में तथा श्री नित्यानन्दनाथ ने श्री सौभाग्यकलाकार में पंचस्तवी के पद्यों को उद्धृत किया है और श्री धर्माचार्य को पंचस्तवी का रचयिता माना है। त्रिपुरा महिमतोत्र के व्याख्याकार श्री नित्यानन्द ने पंचस्तवी के श्लोकों को उद्धृत करके श्री धर्माचार्य को इनका लेखक माना है।

इन साक्ष्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि पंचस्तवी स्तोत्र रत्न के प्रणेता श्री धर्माचार्य हैं। हमारे सद्गुरु महाराज ने, जिन्हें कश्मीर का आधुनिक अभिनवगुप्त माना जाता है, भी धर्माचार्य को ही इस पुस्तक का रचयिता माना है। श्री हरभट्ट शास्त्री ने भी धर्माचार्य को ही इस पुस्तक का प्रणेता माना है। श्री अमृतवाग्भवाचार्य ने भी धर्माचार्य को ही इसका प्रणेता माना है। भोजकृत सरस्वती कण्ठाभरण में पंचस्तवी का उल्लेख है। अतः धर्माचार्य के समय के विषय में यह कहा जाता है कि धर्माचार्य महाराज भोज से प्राचीन थे। महाराज भोज का समय संवत् १०५० माना जाता है। अतः धर्माचार्य नवीं के अन्तिम चरण में, या दशम संवत् के प्रथम चरण में रहे होंगे।

यह धमाचार्य कहां के थे इस विषय में यह कहा जाता है कि यह संभवतः दक्षिण के थे क्योंकि इन्होंने पंचस्तवी में अनेक स्थानों पर शबरी को पूज्या माना है। इससे स्पष्ट होता है कि धर्माचार्य महाराष्ट्र, कर्नाटक या केरल में ही विद्यमान रहे

होंगे क्योंकि इन प्रदेशों में शबरी की पूजा घर-घर, गाँव-गाँव, नगर-नगर में कुल देवता रूप से की जाती है। अतः श्री धर्माचार्य दाक्षिणात्य ही रहे होंगे ऐसी सम्भावना हो सकती है।

परोपकाराय सतां विभूतयः।

•

ईश्वरस्वरूप के स्वनामधन्य एक वरिष्ठ शिष्य के हम आभारी हैं कि उन्होंने इन्द्राक्षी स्तोत्र की एक दुर्लभ प्राचीन प्रति हमें प्रकाशनार्थ दी। इस नवीन संस्करण में हमने उस प्रति के आधार पर ही इस प्रसिद्ध स्तोत्र का संकल्प, न्यास ध्यान आदि सहित परोपकारार्थ प्रकाशन करके उनकी इच्छापूर्ण की। इस स्तोत्र की एक और विशेषता है कि इसमें प्रचलित पाठ से भिन्न कुछेक नवीन नामों का भी अंकन हुआ है जो प्रशंसनीय है। यह सर्व विदित है कि इन्द्राक्षी भगवती समस्तभक्तजनता विशेषतया कश्मीरीपण्डित समुदाय की हृदय की धड़कन है। इस स्तोत्र का प्रचलन शिक्षित या अशिक्षित कश्मीरी पण्डितों के नर-नारी समाज में इतना है कि शायद ही कोई इस स्तोत्र पाठ का मनन न करता हो।

इस नवीन परिष्कृत संस्करण की कुछेक विशेषतायें हैं-

१. इसमें प्रत्येक श्लोक का शब्दार्थ स्वामी जी महाराज के मुख कमल से प्रस्फुटित शब्द सुरभि से सुगन्धित किया है।

२. इसमें पूर्वमुद्रित संस्करण में दिये गये पारिभाषिक शब्दों के अतिरिक्त अन्य अनेक पारिभाषिक दार्शनिक शब्दों का स्पष्टीकरण स्वामीजी महाराज के कथनानुसार ही किया गया है। आशा है कि उससे सहृदय पाठकों व साधकों को बहुत लाभ होगा।

३. इसमें दुर्लभ प्राचीन प्रति के आधार पर इन्द्राक्षीस्तोत्र का संकलन किया गया है।

४. प्रथम संस्करण की प्रकाशन अशुद्धियों का यथासंभव निराकरण करके इसे सर्वजनग्राह्य बना दिया गया है।

दानवीरता :

ईश्वर-आश्रम ट्रस्ट को यह सूचित करते हुए अपार हर्ष हो रहा है कि इस पुस्तक के प्रकाशन का सारा भार स्वामी जी महाराज के एक भक्त शिष्य **श्री अर्जुननाथ सपरू और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती कांतिसपरू** ने उठाकर ईश्वराश्रम

परिवार को अनुगृहीत किया। इनकी दानवीरता की किन शब्दों में प्रशंसा की जाये वह अनिर्वचनीय है। सद्‌गुरु महाराज उनके इहलौकिक कल्याण के साथ-साथ पारलौकिक उद्धार का मार्ग भी सुकर बनाये, यही हमारी कामना है। इन दानवीरों की उत्कट इच्छा के अनुसार ही राज्य के प्रत्येक धार्मिक संस्थानों, आश्रमों तथा शक्तिपीठों को इस पुस्तक की तीन-तीन प्रतियां बिना मूल्य की भेंट के रूप में समर्पित की जायेंगी। आशा है कि वे इसे स्वीकार करके कृतार्थ करेंगे। इसके अतिरिक्त इनकी हार्दिक इच्छा है कि इस पुस्तक की सभी विक्रयराशि ईश्वराश्रम ट्रस्ट को ही प्राप्त हो।

अन्त में ईश्वर आश्रम ट्रस्ट सद्‌गुरु महाराज के प्रिय शिष्य प्रो० मखनलाल कुकिलू का आभारी है कि उन्होंने इस पुस्तक के परिष्कृत संस्करण के लिए बहुत परिश्रम किया। इसमें विशेष संकेतों को जोड़कर साधारण पाठकवर्ग का महान उपकार किया तथा शोधात्मकभूमिका लिखकर पुस्तक के रचयिता तथा पुस्तक की गोपनीयता का रहस्य प्रकट किया। सद्‌गुरु महाराज से प्रार्थना है कि वे इन्हें इसी प्रकार से भक्त जनता के उद्धार के लिए समय-समय पर प्रेरित करें।

अन्त में सर्वश्री मेहरचन्द लक्ष्मणदास प्रकाशन संस्थान का आभार प्रकट किये बिना हमारा यह अनुष्ठान अधूरा ही रहेगा। यह उल्लेखनीय है कि इन्होंने बहुत समय से इस पुस्तक की प्रतिलिपि तैयार रखी थी पर हमारी स्वीकृति की प्रतीक्षा करते रहे। इनके इस महान कार्य के बिना इस पुस्तक का प्रकाशन आज असंभव होता।

सद्‌गुरु महाराज सबोंको परसाक्षात्कार से लाभान्वित करें। यही हमारी मनोकामना है। समस्त भक्त जनता को इस बहुमूल्य पुस्तक की महार्घता का परिचय हो तथा पारमार्थिक लाभ हो, यदि इस प्रकाशन से यह संभव होगा तो ईश्वर आश्रम ट्रस्ट हार्दिक प्रसन्नता से कृतकृत्य होगा।

जय गुरु देव

ईश्वर आश्रम ट्रस्ट
श्रीनगर - जम्मू - दिल्ली

कार्तिक शुक्लपक्ष चतुर्थी २००७



शाम्भवी मुद्रा में
ईश्वरस्वरूप स्वामी लक्ष्मण जी महाराज

श्री धर्माचार्यकृता

।। पञ्चस्तवी ।।

लघुस्तवः प्रथमः

श्रीत्रिपुरसुन्दर्यै नमः

ऐन्द्रस्येव शरासनस्य दधती मध्ये ललाटं प्रभां
शौक्लीं कान्तिमनुष्णगोरिव शिरस्यातन्वती सर्वतः।
एषासौ त्रिपुरा हृदि द्युतिरिवोष्णांशोः सदाहः स्थिता
छिन्द्यान्नः सहसा पदैस्त्रिभिरघं ज्योतिर्मयी वाङ्मयी।। १।।

पदच्छेद अन्वय सहित

ऐन्द्रस्य इव शरासनस्य दधती मध्ये ललाटं प्रभां
शौक्लीं कान्तिम् अनुष्ण गोः इव शिरसि आतन्वती सर्वतः।
एषा असौ त्रिपुरा हृदि द्युतिरिव उष्णांशोः सदाहः स्थिता
छिन्द्यात् नः सहसा पदैः त्रिभिः अघं ज्योतिर्मयी वाङ्मयी।। १।।

ऐंद्रस्य शरासनस्य प्रभाम् इव मध्येललाटं दधती, अनुष्णगोः शौक्लीं कान्तिम् इव शिरसि सर्वतः आतन्वती, उष्णांशोः सदा अहः स्थिता द्युतिरिव हृदि दधती, एषा असौ (सौ)त्रिपुरा ज्योतिर्मयी वाङ्मयी त्रिभिः पदैः सहसा नः अघं छिन्द्यात्।। १।।

शब्दार्थ

ऐन्द्रस्य = इन्द्र के
शरासनस्य = धनुष की
इव = भांति
प्रभाम् = कान्ति या शोभा को (जिसने)
मध्ये = बीच में
ललाटं = माथे के
दधती = धारण किया है
अनुष्ण = शीतल (जो गर्म न हो)
गोः = किरणों वाले चन्द्रमा की
शौक्लीं = सफेद,
कान्तिम् = ज्योति को (जिसने)
शिरसि = सिर अर्थात् ब्रह्माण्ड में
सर्वतः = संपूर्ण रूप से
आतन्वती = फैलाया है (जिसने)
उष्णांशोः = गर्म किरणों वाले सूरज के
द्युतिः = प्रकाश (को)
सदा = हमेशा
अहः स्थिता = दिन की अवस्था में ठहरी हुई अर्थात् सदा उदित
हृदि = हृदय में
(दधति = धारण किया है)
एषा = वही,

असौ = यह
त्रिपुरा = तीन स्वरूपों को पूर्ण करने वाली त्रिपुरा देवी,
ज्योतिर्मयी = प्रकाशरूपिणी
वाङ्मयी = विमर्शरूपिणी
त्रिभिः पदैः = तीन पदों से अर्थात् ऐन्द्रस्य के "ऐं" पद से शौक्लीं के "क्लीं" पद से "एषासौ" के "सौः" पद से - ऐं क्लीं सौः इन तीन बीजाक्षरों से
नः = हमारे
अघं = पापों को (आणवमल, मायीय और कार्म मल को)
सहसा = क्षणमात्र में
छिन्द्यात् = नष्ट करे।

अनुवाद

इन्द्र-धनुष की भांति (अनेकानेक) कांति को जिसने ललाट (मस्तक) के बीच में धारण किया है, शीतल किरणों वाले चन्द्रमा की श्वेत-ज्योति को (जिसने) शिर अर्थात् ब्रह्माण्ड में संपूर्ण रूप से फैलाया है अर्थात् प्रकाशित किया है और (जिसने) उष्ण-किरणों वाले सूर्य के प्रकाश को सदा हृदय में स्थान दिया है वही इन तीन स्वरूपों को पूर्ण करने वाली त्रिपुरादेवी प्रकाशविमर्शमयी अपने (ऐंद्रस्य - इसमें 'ऐं' पद से, शौक्लीं - इसमें 'क्लीं' पद से, एषासौ-इसमें 'सौः' पद से) इन तीन पदों से हमारे पापों को क्षण-मात्र में नष्ट करे ॥ १॥

या मात्रा त्रुपसीलतातनुलसत्तन्तूत्थितिस्पर्धिनी
वाग्बीजे प्रथमे स्थिता तव सदा तां मन्महे ते वयम्।
शक्तिः कुण्डलिनीति विश्वजननव्यापारबद्धोद्यमा
ज्ञात्वेत्थं न पुनःस्पृशन्ति जननीगर्भेऽर्भकत्वं नराः ॥ २॥

पदच्छेद अन्वय सहित

या मात्रा त्रुपसी-लता-तनु-लसत्-तन्तु-उत्थिति-स्पर्धिनी
वाग्बीजे प्रथमे स्थिता तव सदा तां मन्महे ते वयम्।
शक्तिः कुण्डलिनी इति विश्वजनन-व्यापार-बद्ध-उद्यमा
ज्ञात्वा इत्थं न पुनःस्पृशन्ति जननी-गर्भे-अर्भकत्वं नराः ॥ २॥

या मात्रा त्रुपसी-लता-तनु-लसत्-तन्तु-उत्थिति-स्पर्धिनी तव प्रथमे वाग्-बीजे स्थिता, तां, वयं सदा विश्व-जनन व्यापार-बद्ध-उद्यमा ते कुण्डलिनी-शक्तिः-इति मन्महे। इत्थं ज्ञात्वा नराः जननी-गर्भे अर्भकत्वं न पुनः स्पृशन्ति॥ २॥

शब्दार्थ

तव = आपके
प्रथमे = पहिले
वाग्बीजे = वाणी के बीज में अर्थात् 'ऐं' बीजाक्षर में
या = जो (आपकी)
मात्रा = उत्कृष्ट कला
त्रपुसीलता = त्रपुसी नामक लता विशेष के या रांगा बेल के (जिसे कश्मीरी भाषा में ग्यवथीर कहते हैं)
तनु = बहुत ही सूक्ष्म
तन्तु = तार की तरह
लसत् = चमकती हुई
उत्थिति = विकास को प्राप्त हुई
स्पर्धिनी = तथा उसके साथ बराबरी करने पर लगी हुई है।
तां = उसको
वयं = हम
सदा = हमेशा
विश्वजनन = जगत् को पैदा करने के,
व्यापार = काम में,
बद्ध उद्यमा = कमर कसी हुई
ते = आपकी ही
कुण्डलिनीशक्ति = कुण्डलिनी शक्ति
इति मन्महे = ऐसा मानते हैं।
इत्थं = इस प्रकार
ज्ञात्वा = आपकी (कुण्डलिनी शक्ति का) स्वरूप जानकर अर्थात् पूरी तरह उसका अनुभव करके
नराः = मनुष्य
जननी = मां के
गर्भे = गर्भ में
अर्भकत्वं = बालक भाव का
न = कभी नहीं
पुनः = दुबारा
स्पृशन्ति = स्पर्श करते हैं अर्थात् वे हमेशा के लिए जन्म मरण के चक्र से छुटकारा पाते हैं।

अनुवाद

आपके प्रथम-बीजाक्षर (ऐं) में जो आपकी उत्कृष्ट कला, त्रपुसी नामक लता-विशेष के अति सूक्ष्म तन्तुओं के समान विकास को प्राप्त हुई तथा उस के साथ होड़ अर्थात् बराबरी करने पर तुली हुई है, उसे हम जगत् को उत्पन्न करने के कार्य में कटिबद्ध बनी हुई आपकी ही कुण्डलिनी शक्ति मानते हैं। इस प्रकार (आपकी कुण्डलिनी-शक्ति के) स्वरूप को जानकर अर्थात् अनुभव करके मनुष्य मां के गर्भ में बालक-भाव को कदापि स्पर्श नहीं करते हैं, अर्थात् वे सदा के लिये जन्म-मरण के चक्र से मुक्त होते हैं॥ २॥

दृष्ट्वा संभ्रमकारि वस्तुसहसा ऐ ऐ इति व्याहृतम्
येनाऽकूतवशादऽपीह वरदे ! बिन्दुं विनाप्यक्षरम्।

तस्यापि ध्रुवमेव देवि तरसा जाते तवानुग्रहे
वाचः सूक्तिसुधारसद्रवमुचो निर्यान्ति वक्त्राम्बुजात्।। ३।।

पदच्छेद अन्वय सहित

दृष्ट्वा संभ्रमकारि वस्तु सहसा ऐ ऐ इति व्याहृतम्
येन आकूतवशात् अपि इह वरदे ! बिन्दुं विना अपि अक्षरम्।
तस्य अपि ध्रुवम् एव देवि ! तरसा जाते तव अनुग्रहे
वाचः सूक्तिसुधारसद्रवमुचः निर्यान्ति वक्त्र अम्बुजात्।। ३।।

वरदे ! देवि ! इह संभ्रम-कारि वस्तु दृष्ट्वा आकूत-वशात्-अपि येन बिन्दुं विना अपि 'ऐ ऐ' –इति अक्षरं सहसा व्याहृतम्। तस्य अपि तव अनुग्रहे जाते सूक्ति-सुधा-रस-द्रव-मुचः वाचः वक्त्र अम्बुजात् तरसा निर्यान्ति ।। ३।।

शब्दार्थ

वरदे ! देवि ! = हे अभीष्ट (चाहे हुए) वर को देने वाली देवी !
इह = इस संसार में
संभ्रमकारिवस्तु = कोई डरावनी चीज़ अथवा कोई आश्चर्य पैदा करनेवाली वस्तु
दृष्ट्वा = देखकर
आकूतवशात् = बिना किसी अभिप्राय से भी या भय से ही
येन = जिसने
बिन्दुं विना अपि = बिन्दु के बिना भी
ऐ ऐ इति अक्षरं = ऐ ऐ इस अक्षर को
सहसा = जल्दी से
व्याहृतं = बोला हो
तस्य = ऐसे व्यक्ति के
अपि = भी
तव = तुम्हारा
अनुग्रहे = अनुग्रह या शक्तिपात
जाते = होने पर
वक्त्र = मुखरूपी
अम्बुजात् = कमल से
तरसा = उसी क्षण, बिना किसी यत्न के
वाचः = वाणियां या ऐसी कविता
ध्रुवं एव = निश्चय करके ही
निर्यान्ति = निकलती है जो
सूक्ति सुधा रस = उत्तम वाणी रूपी अमृत रस की
द्रवमुचः = धाराओं को बहाती है।

अनुवाद

हे अभीष्ट वर को देने वाली देवी ! जिस व्यक्ति ने कोई भयप्रद वस्तु शेर सांप आदि देख कर बिना किसी अभिप्राय से भय-वशात् ही ऐ ऐ – अक्षर का बिन्दु के बिना ही उच्चारण किया हो ऐसे व्यक्ति पर भी यदि आप अनुग्रह करें तो निःसन्देह

उस व्यक्ति के मुख-कमल से उसी क्षण ऐसी कविता प्रकट होती है जो कि अमृत-रस-धाराओं की परिचायक होती हैं। अभिप्राय यह है कि भगवती के प्रथम बीजाक्षर 'ऐं' की इतनी महिमा है कि यदि कोई व्यक्ति भूल से भी 'ऐ ऐ' – का ही उच्चारण करे तो उसे भगवती अपूर्व कवित्व-शक्ति प्रदान करती हैं।। ३।।

यन्नित्ये तव कामराजमपरं मन्त्राक्षरं निष्कलं
तत्सारस्वतमित्यवैति विरलः कश्चिद्बुधश्चेद्भुवि।
आख्यानं प्रतिपर्व सत्यतपसो यत्कीर्तयन्तो द्विजाः
प्रारम्भे प्रणवास्पदप्रणयितां नीत्वोच्चरन्ति स्फुटम्।। ४।।

पदच्छेद अन्वय सहित

यत् नित्ये ! तव कामराजम् अपरं मन्त्र अक्षरं निष्कलम्
तत् सारस्वतम् इति अवैति विरलः कश्चिद् बुधः चेत् भुवि।
आख्यानं प्रतिपर्व सत्य तपसः यत् कीर्तयन्तः द्विजाः
प्रारम्भे प्रणव आस्पद प्रणयितां नीत्वा उच्चरन्ति स्फुटम्।। ४।।

हे नित्ये ! यत् तव अपरं कामराजं निष्कलं मन्त्राक्षरम् (अस्ति) तत् सारस्वतं भुवि कश्चिद् विरलः बुधः चेत् अवैति, यत्-प्रभावात् सत्यतपसः आख्यानं प्रतिपर्व द्विजाः कीर्तयन्तः प्रारम्भे प्रणव-आस्पद-प्रणयितां नीत्वा स्फुटम् उच्चरन्ति ।। ४।।

शब्दार्थ

हे नित्ये ! = हे हमेशा एक जैसी दिखने वाली देवी !
यत् = जो
तव = आपका
अपरं = दूसरा
कामराजं = कामराज नाम वाला, अथवा सारी कामनाओं को पूर्ण करने वाला
निष्कलं = कलना रहित अथवा क या ल रहित अर्थात् 'क्लीं' व बीज मन्त्र में से 'क' और 'ल' रहित केवल 'ईं'
मन्त्राक्षरं = मन्त्र अक्षर है
तत् = वह
सारस्वतं = सरस्वती का (बीजाक्षर है)
इति = इस तरह
भुवि = इस संसार में
कश्चित् = कोई
विरलः = विरला
बुधः = बुद्धिमान् व्यक्ति
चेत् = यदि
अवैति = जानता है
यत् = जिस बीजाक्षर के
प्रभावात् = प्रभाव से अर्थात् जिसके फलस्वरूप

द्विजाः = सभी ब्राह्मण
प्रतिपर्व = प्रत्येक उत्सव के
प्रारम्भे = प्रारम्भ में (शुरु में)
सत्यतपसः = सत्यतपस नामवाले ऋषि का (सत्यवादी हरिश्चन्द्र का)
आख्यानं = नाम
कीर्तयन्तः = वर्णन करते हुए (हर काम के आरंभ में)
प्रणवास्पद = प्रणव (ओंकार) के समान
प्रणयितां नीत्वा = प्रेम के साथ मानकर अथवा बड़े आदर के साथ
स्फुटं = स्पष्ट रूप से, (इस बीजाक्षर 'ईं' का)
उच्चरन्ति = बोलते हैं।

अनुवाद

हे सदा एकवत् रहने वाली देवी ! आपका जो दूसरा कामराज-नामक निष्कल अर्थात् कलना-रहित अथवा 'क-ल'-रहित क्लीं बीजाक्षर है, इस मन्त्र का जप, यदि कोई विरला बुद्धिमान् व्यक्ति इस संसार में करे तो वह सारस्वत क्लीं बीजाक्षर का साक्षात्कार करके सरस्वती देवी के अनुग्रह का पात्र बनता है। इस बीजाक्षर के जप के संबन्ध में यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि सत्यवादी श्री हरिश्चन्द्र ने इस मन्त्र को सिद्ध किया था, जिसके फलस्वरूप सभी ब्राह्मण प्रत्येक उत्सव के प्रारम्भ में उसकी कथा उसी आदर से वर्णन करते हैं, जिस आदर से ओं का उच्चारण प्रत्येक यज्ञ के आद्य में किया जाता है।। ४।।

विशेषः- सत्य-तपस्वी हरिश्चन्द्र ने आजीवन सत्य बोलने का व्रत ले रखा था। उसकी इस प्रतिज्ञा को भंग करने के लिए इन्द्र ने शिकारी का रूप धारण किया और वे आखेट करते हुए उसके पास आये। इन्द्र (शिकारी) के आगे एक हिरण का बच्चा सत्य-वादी हरिश्चन्द्र के सामने से जा निकला। शिकारी ने सत्यवादी हरिश्चन्द्र से अपने शिकार के विषय में पूछा कि वह किस मार्ग से निकल कर भागा है। उसके प्रश्न का उत्तर प्रतिभाशाली सत्य-संध हरिश्चन्द्र ने इस श्लोक में दिया–

या पश्यति न सा ब्रूते या ब्रूते सा न पश्यति।
अहो व्याध। स्वकार्यार्थी कं पृच्छसि मुहुर्मुहुः।।

आंख देखती है, परन्तु वह कह नहीं सकती। जिह्वा कहती है, पर वह देख नहीं सकती। इसलिये हे व्याध ! अपने प्रयोजन के लिये तुम किससे पूछते हो ?

उसके इस अलौकिक उत्तर को सुनकर इन्द्र अपना सा मुंह लेकर रह गया। अन्त में उसने यही निश्चय किया कि सत्य-वादी हरिश्चन्द्र ने अवश्य क्लीं बीजाक्षर की उपासना से सरस्वती का अनुग्रह प्राप्त किया है तभी उसकी वाणी में इतना चातुर्य तथा सत्य-पालन की शक्ति प्राप्त हुई है।

यत्सद्यो वचसां प्रवृत्तिकरणे दृष्टप्रभावं बुधैः
तार्तीयीकमहं नमामि मनसा त्वद्बीजमिन्दुप्रभम्।
अस्त्वौर्वोऽपि सरस्वतीमनुगतो जाड्याम्बुविच्छित्तये
गोशब्दो गिरि वर्तते स नियतं यो गं विना सिद्धिदः।। ५।।

पदच्छेद अन्वय सहित

यत् सद्यः वचसां प्रवृत्तिकरणे दृष्टप्रभावं बुधैः
तार्तीयीकम् अहं नमामि मनसा त्वत् बीजम् इन्दु प्रभम्।
अस्तु और्वः अपि सरस्वतीम् अनुगतः जाड्य-अम्बु विच्छित्तये
गो शब्दः गिरि वर्तते स नियतं यो गं विना सिद्धिदः।। ५।।

यत् बुधैः सद्यः वचसां प्रवृत्तिकरणे दृष्ट-प्रभावम् (अस्ति) तत् त्वद् तार्तीयीकम् इन्दु-प्रभं बीजम् अहं मनसा नमामि। [सिद्धमेतत्] यत् सरस्वतीम् अनुगतः और्वोऽपि जाड्य-अम्बु विच्छित्तये (गौ इति) अस्तु। स गौ शब्दः नियतं गिरि वर्तते यः गं विना [औ-इति रूपेण] सिद्धि-दः (भवति)।। ५।।

शब्दार्थ

यत् = जिस 'सौः' बीज अक्षर का।
बुधैः = ज्ञानी जनों ने
सद्यः = क्षणमात्र में
दृष्ट प्रभावं = प्रभाव देखा है, जिससे
वचसां = वाणियों में
प्रवृत्तिकरणे = निरर्गल कवित्व शक्ति प्राप्त होती है, अर्थात् बेरोकटोक कविता करने की शक्ति आती है।
तत् = उस
त्वद् = आपके।
तार्तीयकं बीजं = तीसरे, बीज अक्षर 'सौः' को
इन्दुप्रभं = चन्द्रमा के समान प्रकाशमान।
अहं = मैं,
मनसा = मन से,
नमामि = नमस्कार करता हूँ।
यत् = जो,
सरस्वती अनुगतः = सरस्वती को सिद्ध करने वाला 'सौः' मन्त्र
जाड्य = अज्ञानरूपी
अम्बु = जल को
विच्छित्तये = भस्म करने के लिए या सुखाने के लिए
और्वः = वाडवाग्नि (के समान)
अस्तु = बनें
अपि = भी
स गौ शब्दः = वह 'सौ' बीज के समान दिखने वाला 'गौ' शब्द
गिरि वर्तते = जो वाणी के अर्थ में प्रयुक्त होता है
यो गं विना = जो गकार के बिना अर्थात् 'औ' के रूप से ही
नियतं = अवश्य ही

सिद्धिः = सिद्धि देने वाला है। अथवा 'यो गं विना' को मिलाकर पढ़ने से – योगं विना का दूसरा अर्थ यह हो सकता है कि योग क्रिया के बिना ही, यह "सौः" बीज

नियतं = अवश्य ही

सिद्धिदः = अभीष्ट सिद्धि प्रदान करता है।

अनुवाद

मैं चन्द्र-तुल्य-दीप्ति से युक्त आपके उस तीसरे बीजाक्षर (सौः) को मन से नमस्कार करता हूँ, जिसका प्रभाव ज्ञानी-जनों ने क्षण-मात्र में देखा है जिस के फलस्वरूप उनकी वाणियों में निरर्गल कवित्व-शक्ति प्राप्त होती है। वह सरस्वती को सिद्ध कराने वाला (सौः) मन्त्र अज्ञानरूपी जल को भस्म करने में वाडवाग्नि के समान बन जाता है, तथा उस सारस्वत (सौः) की छाया का अनुकरण करने वाला (गौ) शब्द, जो वाणी के अर्थ में प्रयुक्त होता है ग के बिना औ के रूप से ही सिद्धि-प्रद बन जाता है। अथवा इसका दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि यह सरस्वती का बीजाक्षर योग-क्रिया करने के बिना ही अभीष्ट-सिद्धि प्रदान करता है।।५।।

एकैकं तव देवि बीजमनघं सव्यञ्जनाव्यञ्जनं
कूटस्थं यदि वा पृथक्क्रमगतं यद्वा स्थितं व्युत्क्रमात्।
यं यं काममपेक्ष्य येन विधिना केनापि वा चिन्तितं
जप्तं वा सफलीकरोति सहसा तं तं समस्तं नृणाम् ।। ६।।

पदच्छेद अन्वय सहित

एक एकं तव देवि ! बीजम् अनघं सव्यञ्जन अव्यञ्जनं
कूटस्थं यदि वा पृथक् क्रमगतं यद्वा स्थितं व्युत्क्रमात्।
यं यं कामम् अपेक्ष्य येन विधिना केन अपि वा चिन्तितं
जप्तं वा सफली-करोति सहसा तं तं समस्तं नृणाम्।। ६।।

देवि ! तव एकैकम् अनघं बीजं सव्यञ्जन-अव्यञ्जनं यदि वा कूटस्थं, यद्वा पृथक्-क्रम-गतं, यद्वा व्युत्क्रमात् स्थितं येन केनापि वा विधिना यं यं कामम् अपेक्ष्य चिन्तितं जप्तं वा (स्यात्) तं तं समस्तं कामं नृणां सहसा सफली-करोति।। ६ ।।

शब्दार्थ

देवि ! = हे देवि !
तव = तुम्हारा
एकैकं = 'ऐं' 'क्लीं' 'सौः' इनमें से हर एक
अनघं = पापरहित
बीजं = बीजाक्षर
सव्यञ्जनं = व्यञ्जन सहित (with consonants) अर्थात् "ऐं, क्लीं, सौः"
अव्यञ्जनं = (without consonants) व्यञ्जन रहित अर्थात् 'ऐ' 'ई' 'औ'
यदि वा = अथवा
कूटस्थं = (combined) मिले हुए अर्थात् ऐंक्लींसौः
यद्वा = अथवा,
पृथक् क्रमगतं = अलग-अलग क्रम में ठहरा हुआ अर्थात् ऐं या क्लीं, अथवा केवल सौः
यद्वा = अथवा
व्युत्क्रमात् = उलटे क्रम से अर्थात् "सौः-क्लीं-ऐं"
वा या येन = जिस
केनापि विधिना = किसी विधि से
यं यं = जिस-जिस
कामं = अभिलाषा की
अपेक्ष्य = अपेक्षा करके, (जो कोई व्यक्ति)
चिन्तितं = ध्यान करता है
जप्तं वा = अथवा उसका जप करता है,
नृणां = उन मनुष्यों की
तं तं = उन उन
समस्तं = सभी अभिलाषाओं को (वह बीजाक्षर)
सहसा = उसी समय
सफली-करोति = सफल बना देता है।।

अनुवाद

हे देवि ! 'ऐं' क्लीं' 'सौः' – इनमें से आपका प्रत्येक निष्पाप बीजाक्षर व्यञ्जन सहित (ऐं, क्लीं, सौः), व्यञ्जन रहित (ऐ, ई, औः) या कूटस्थ (ऐं-क्लीं-सौः), अथवा भिन्न क्रम में ठहरा हुआ ऐं, अथवा क्लीं या केवल सौः, या उलटे क्रम से (सौः-क्लीं-ऐं) जिस किसी विधि से जो कोई व्यक्ति ध्यान करता है अथवा उसका जप करता है, उन मनुष्यों की सभी अभिलाषाओं को वह बीजाक्षर उसी क्षण सफल बना देता है। ।। ६।।

वामे पुस्तकधारिणीमभयदां साक्षस्त्रजं दक्षिणे
भक्तेभ्यो वरदानपेशलकरां कर्पूरकुन्दोज्ज्वलाम्।
उज्जृम्भाम्बुजपत्रकान्तनयनस्निग्धप्रभालोकिनीं
ये त्वामऽम्ब न शीलयन्ति मनसा तेषां कवित्वं कुतः ।। ७।।

पदच्छेद अन्वय सहित

वामे पुस्तक धारिणीम् अभयदां साक्षस्त्रजं दक्षिणे

भक्तेभ्यो वरदानपेशलकरां कर्पूरकुन्द उज्ज्वलाम्।
उज्जृम्भ अम्बुजपत्र कान्तनयन स्निग्धप्रभा लोकिनीम्
ये त्वाम् अम्ब ! न शीलयन्ति मनसा तेषा कवित्वं कुतः ॥ ७॥

अम्ब ! वामे पुस्तकधारिणीम् अभयदां (च)। दक्षिणे साक्षस्रजं भक्तेभ्यः वरदान-पेशलकरां (च)। (एवं) कर्पूर-कुन्द-उज्ज्वलाम्, उज्जृम्भ-अम्बुज-पत्र-कान्त-नयन-स्निग्ध-प्रभा-आलोकिनीं त्वां ये मनसा न शीलयन्ति, तेषां कवित्वं कुतः (स्यात्) ॥ ७॥

शब्दार्थ

अम्ब = हे माता! (आपका स्वरूप चारभुजाओं से युक्त है)
वामे = (आप) बायें हाथ में
पुस्तक-धारिणीम् = पुस्तक को धारण किये हुए हैं, (दूसरे बायें हाथ में)
अभयदां = अभय मुद्रा को दिखा रही हैं,
दक्षिण = दाहिने हाथ में
साक्षस्रजं = जप माला को लिये हुई हैं, (तथा चौथा हाथ)
वरदान = भक्तों को वर देने के कारण
पेशल करां = कोमल बना हुआ है या कोमल हाथ वाली हैं, (इसके अतिरिक्त, आप)
कर्पूर = काफूर के समान (like Camphor) तथा
कुन्द = कुन्द फूल के समान (like Jasmine flower)
उज्ज्वलां = चमकीली और
उज्जृम्भ = खिले हुए
अम्बुज = कमल के
पत्र = पत्ते के समान
कान्त = सुन्दर
नयन = नेत्रों वाली,
स्निग्ध = प्रेम पूर्ण
प्रभा = शोभा
आलोकिनी = देखने वाली
त्वां = तुम्हारे (इस स्वरूप का)
मनसा = मनसे
ये = जो लोग
न शीलयन्ति = मनन नहीं करते हैं
तेषां = उनको
कवित्वं = सर्वज्ञता अथवा पाण्डित्य
कुतः = कहां से या क्यों (प्राप्त हो सकता है)॥

अनुवाद

हे माता ! (आपका स्वरूप चार भुजाओं से युक्त है) आप बायें हाथ में पुस्तक को धारण किये हुए हैं, दूसरे बायें हाथ में अभय-मुद्रा को दिखा रही हैं। ऊपर के दाहिने हाथ में अक्षमाला (जप-माला) को लिये हुई हैं तथा चौथा हाथ भक्तों को वर देने के कारण कोमल बना हुआ है। इसके अतिरिक्त आप काफूर तथा कुन्द-फूल की भांति उज्ज्वल तथा विकसित कमल-पत्र के समान सुन्दर नेत्रों से युक्त प्रेममयी अनुग्रह-दृष्टि रखती हैं। जो जन आपके ऊपर वर्णित स्वरूप का ध्यान मन से कदापि

नहीं करते, भला उनको पाण्डित्य कैसे और क्यों प्राप्त हो सकता है।। ७।।

ये त्वां पाण्डुर पुण्डरीकपटलस्पष्टाभिरामप्रभां
सिञ्चन्तीमऽमृतद्रवैरिव शिरो ध्यायन्ति मूर्ध्नि स्थिताम्।
अश्रान्तं विकटस्फुटाक्षरपदा निर्यान्ति वक्त्राम्बुजा-
त्तेषां भारति! भारती सुरसरित्कल्लोललोलोर्मिवत्।। ८।।

पदच्छेद अन्वय सहित

ये त्वां पाण्डुर पुण्डरीक पटल स्पष्ट अभिराम प्रभां
सिञ्चन्तीम् अमृतद्रवैः इव शिरो ध्यायन्ति मूर्ध्नि स्थिताम्
अश्रान्तं विकट-स्फुट-अक्षर-पदा निर्यान्ति वक्त्र अम्बुजात्
तेषां भारति ! भारती सुरसरित् कल्लोल-लोल-उर्मिवत् ।। ८।।

भारति ! पाण्डुर-पुण्डरीक-पटल-स्पष्ट-अभिराम-प्रभाम् अमृतद्रवैः इव सिञ्चन्तीं मूर्ध्नि स्थितां ये शिरः ध्यायन्ति, तेषां वक्त्र-अम्बुजात् सुरसरित् कल्लोल-लोल-ऊर्मिवत् विकट-स्फुट-अक्षर-पदा भारती अश्रान्तं निर्याति।। ८।।

शब्दार्थ

भारति ! = हे सरस्वती देवी !
(आप) पाण्डुर = सफेद
पुण्डरीक = कमल के
पटल = समूह की भांति
स्पष्ट = निर्मल, और
अभिराम प्रभां = सुन्दर दीप्ति से युक्त है
(आप ऐसी प्रतीत होती हैं कि मानो)
अमृतद्रवैः = अमृत के प्रवाहों से
शिरा = भक्तों के सिर को, अर्थात द्वादशान्त का,
सिञ्चन्ती = सिंचन करती हैं। (ऐसी)
त्वां = आपका
ये = जो भाग्यशाली
ध्यायन्ति = ध्यान करते हैं
तेषां = उनके
वक्त्र = मुखरूपी
अम्बुजात् = कमल से
सुरसरित् = गंगा की
विकट = गहन
कल्लोल लोल ऊर्मिवत् = चंचल प्रवहन शील लहरों की तरह (उछलती हुई)
स्फुट = स्पष्ट
अक्षरपदा = अक्षरों तथा पदों से पूर्ण
भारती = वाणी अर्थात् कविता
अश्रान्तं = अनथक रूप से
निर्याति = प्रसरित होती है।

अनुवाद

हे सरस्वती देवी ! आप सफेद पुण्डरीक कमल के समूह की भांति स्पष्ट

(निर्मल) तथा सुन्दर दीप्ति से युक्त हैं। आप ऐसी प्रतीत होती हैं, मानो बहते हुए अमृत के द्वारा भक्तों को सिंचन करती हैं। ऐसे आपके स्वरूप का ध्यान जो भाग्यशाली व्यक्ति करते हैं, उनके मुख-कमल से गंगा-नदी की गहन तथा (चंचल) प्रवहन-शील लहरों की भांति उछलती हुई, सुन्दर स्पष्ट अक्षरों तथा पदों से युक्त वाणी अर्थात् कविता अनथक रूप से प्रसरित होती है॥ ८॥

ये सिन्दूरपरागपुञ्जपिहितां त्वत्तेजसा द्यामिमा-
मुर्वींचापि विलीनयावकरसप्रस्तारमग्नामिव।
पश्यन्ति क्षणमप्यऽनन्यमनसस्तेषामनङ्गज्वर-
क्लान्तास्त्रस्तकुरङ्गशावकदृशोवश्याः भवन्ति स्फुटम्॥ ९॥

पदच्छेद अन्वय सहित

ये सिन्दूर पराग पुञ्जपिहितां त्वत् तेजसा द्याम् इमाम्
उर्वीं च अपि विलीन यावकरस प्रस्तार मग्नाम् इव।
पश्यन्ति क्षणम् अपि अनन्यमनसःतेषाम् अनङ्ग ज्वर-
क्लान्ताः त्रस्तकुरङ्ग शावकदृशः वश्याः भवन्ति स्फुटम्॥ ९॥

ये अनन्य-मनसः (सन्तः) त्वत्-तेजसा इमां द्यां सिन्दूर-पराग-पुञ्ज-पिहिताम् (इव) (तथा इमाम्) उर्वीं च अपि विलीन-यावक-रस-प्रस्तार-मग्नाम् इव क्षणमपि पश्यन्ति। तेषाम् अनङ्ग-ज्वर-क्लान्ताः त्रस्त-कुरंग-शावक-दृशः (शक्तयः) स्फुटं वश्याः भवन्ति॥ ९॥

शब्दार्थ

ये = जो भक्त
अनन्य-मनसः = एकाग्र मन से
त्वत् = आपके
तेजसा = लाल रंग के तेज के द्वारा
इमां = इस
द्यां = आकाश को
सिन्दूर = सिन्दूर की
पराग = धूलि के
पुञ्ज = समूह से
पिहितां = रंजित
च = और
उर्वीं = इस पृथ्वी को
अपि = भी
विलीन = पिघले हुए
यावकरस = लाख के रस के
प्रस्तार = विस्तार में
मग्नाम् इव = डूबी हुई जैसी
क्षणं अपि = एक क्षण के लिए भी
पश्यन्ति = देखते हैं
तेषां = उनको

अनङ्गज्वर क्लान्ताः= संकल्प विकल्प के कारण दुःखी बनी हुई
दृशः = अपनी इन्द्रियां
स्फुटं = पूरी तरह से इस प्रकार
वश्याः भवन्ति = वश हो जाती हैं जिस प्रकार
त्रस्त = डरपोक और चंचल
कुरंगशावक = हिरण के बच्चों की
दृशः = दृष्टि, किसी शेर आदि को देखकर (आप ही आप)
वश्याः भवन्ति = सहम जाती है।

अनुवाद

जो व्यक्ति एकाग्र मन से आपके अरुण-वर्ण तेज के द्वारा इस आकाश को सिन्दूर की धूलि के समूह से रंजित बनी हुई तथा इस पृथ्वी को पिघले हुए लाख के रस में सनी हुई जैसी देखते हैं अर्थात् आकाश और पृथ्वी में व्याप्त बने हुए आपके अरुण-वर्ण-स्वरूप का साक्षात्कार एक क्षण के लिये भी करते हैं, उनको संकल्प-विकल्प के कारण दुःखी बनी हुई (अपनी) इन्द्रियां उसी भांति वश हो जाती हैं, जिस भांति स्वभावतः चञ्चल और डरपोक हिरण के बच्चों की दृष्टि किसी शेर आदि को देखकर आप ही आप सहम जाती है।। ९।।

चञ्चत्कांचन कुण्डलाङ्गदधरामाबद्धकाञ्चीस्त्रजं
ये त्वां चेतसि तद्गतेक्षणमपि ध्यायन्ति कृत्वा स्थितिम्।
तेषां वेश्मसु विभ्रमादहरहः स्फारीभवन्त्यश्चिरं
माद्यत्कुञ्जरकर्णतालतरलाः स्थैर्यं भजन्ते श्रियः।। १०।।

विशेषः- भाव यह है कि ऐसे भक्त की इन्द्रियां अपने चञ्चल स्वभाव को छोड़कर सदा स्वात्मानुसंधान में ही लगी रहने से एकाग्र बन जाती हैं। श्रीमद्भगवद्गीता के 'तमेव शरणं गच्छ'- इस श्लोक की व्याख्या करते हुए आचार्य अभिनवगुप्त ने इन्हीं उपरोक्त भावों की पुष्टि की है। यथा– 'नहि निशिततरनखर कोटि विदारत समद करि करट गलित मुक्ताफलनिकर परिकर प्रकाशित प्रतापमहसि सिंहकिशोरके गुहामधितिष्ठति चपलमनसो विद्रवणमात्र-बलशालिनो हिरणपोतकाः स्वैरं स्वव्यापारपरिशीलना पटुभावमवलम्बन्ते'-इति।

अर्थात्– जिस भांति किशोर सिंह अति तीक्ष्ण नखों के अग्रभाग से, मदमस्त हाथी के कपोलों को विदारित करके उस गंडस्थल में से निकाले हुए मोतियों की प्रभा से प्रभावित बन कर, अपनी गुफा में बैठा हो और चंचल मन वाले, स्वतन्त्रता पूर्वक विचरने वाले, भागने में पटु स्वभाव वाले छोटे-छोटे हिरण उस (सिंह) को देखकर अपनी स्वाभाविक भागने की चतुरता का आश्रय न लेकर अर्थात् सहम कर उस स्फूर्ति को भूल जाते हैं। उसी भांति परमेश्वर के अनन्य परायण रहने से आगामी कर्म तथा संचित कर्मों का फल नष्ट हो जाता है।

पदच्छेद अन्वय सहित

चञ्चत् काञ्चन कुण्डल अङ्गद धराम् आबद्धकाञ्चीस्रजं
ये त्वां चेतसि तद्गते क्षणम् अपि ध्यायन्ति कृत्वा स्थितिम्।
तेषां वेश्मसु विभ्रमाद् अहः अहः स्फारी भवन्त्यः चिरम्
माद्यत् कुञ्जर कर्णताल तरलाः स्थैर्यं भजन्ते श्रियः।। १०।।

(हे देवि !) ये तद्गते चेतसि स्थितिं कृत्वा चञ्चत्-कांचन-कुण्डल-अंगद-धराम् आबद्ध-कांची-स्रजं त्वां क्षणम् अपि ध्यायन्ति, तेषां वेश्मसु माद्यत्-कुञ्जर-कर्णताल-तरलाः श्रियः विभ्रमाद् अहरहः स्फारी-भवन्त्यः चिरं स्थैर्यं भजन्ते।। १०।।

शब्दार्थ

(**हे देवि !**) **ये** = जो साधक
तद्गते = आपके स्वरूप में एकाग्र बने हुए
चेतसि = हृदय में
चञ्चत् = चमकीले
काञ्चन = सोने के
कुण्डल = बालियों से युक्त
अङ्गद = बाजूबन्दों को
धरां = धारण किये हुए
तथा काञ्चीस्रजं = तगड़ी अथवा सोने का गजरा
आबद्ध = बान्धे हुए
त्वां = आपके (स्वरूप का)
क्षणं अपि = एक क्षण के लिए ही
ध्यायन्ति = ध्यान करते हैं।
तेषां = उनके
वेशमसु = घरों में
माद्यत् = मदमस्त
कुञ्जर = हाथी के
कर्णताल = कनपुटी जैसी
तरलाः = चञ्चल
श्रियः = लक्ष्मी (संपदा)
अहरहः = सदैव
स्फारी भवन्त्यः = विकसित होती हुए
विभ्रमात् = बेबस होके
चिरं = बहुत समय तक
स्थैर्यं भजन्ते = स्थिररूपता से अपना स्थान बना लेती है।

अनुवाद

जो व्यक्ति एकाग्र बने हुए हृदय में आपका स्वरूप चमकीले स्वर्ण-कुण्डलों से युक्त, बाजूबन्द को धारण किये हुए तथा सोने का गजरा बान्धे हुए स्वरूप से युक्त आपका ध्यान एक क्षण के लिये ही करते हैं, उनके घरों में मद-मस्त हाथी के चञ्चल कानों की भांति सदा चलायमान और इसीलिये अस्थिर बनी हुई भी लक्ष्मी (संपदा) बहुत समय के लिये विपुल-रूप से सदैव स्थिर रूपता से अपना स्थान बना लेती है। भाव यह है कि आप के भक्तों के घर से लक्ष्मी कभी भी जाने का नाम नहीं लेती है, अतः वे सदा समृद्धिशाली बने रहते हैं।। १०।।

आर्भट्याशशिखण्डमण्डितजटाजूटां नृमुण्डस्रजं
बन्धूककुसुमारुणाम्बरधरां प्रेतासनाध्यासिनीम्।
त्वां ध्यायन्ति चतुर्भुजां त्रिनयनामापीनतुङ्गस्तनीं
मध्ये निम्नवलित्रयाङ्कितततनुं त्वद्रूप संवित्तये।। ११।।

पदच्छेद अन्वय सहित

आर्भट्या शशिखण्डमण्डित जटाजूटां नृमुण्डस्रजं
बन्धूक कुसुम-अरुण-अम्बरधरां प्रेत आसन अध्यासिनीम्।
त्वां ध्यायन्ति चतुर्भुजां त्रिनयनाम् आपीन तुङ्गस्तनीम्
मध्ये निम्न वलि त्रय अङ्कितततनुं त्वत् रूप संवित्तये।। ११।।

शशिखंड-मण्डित-जटाजूटां, नृ-मुण्ड-स्रजं, बन्धूक-कुसुम-अरुण-अम्बर-धरां, प्रेतासन-अध्यासिनीं, चतुर्भुजां, त्रिनयनाम्, आपीन-तुंग-स्तनीम्, मध्ये निम्न-वलि-त्रय-अंकित-तनुं त्वां (भक्ताः) त्वद्रूप-संवित्तये त्वाम् आर्भट्या ध्यायन्ति।। ११।।

शब्दार्थ

हे देवी ! (आपकी)
जटाजूटां = जटाओं के समूह पर,
शशिखण्ड = चन्द्रमा का (आधे आकार का) टुकड़ा, (ऐसा शोभित होता है मानो)
आर्भट्या = किनारी की बन्धी (decorative ribbon) बान्ध रखी है। आर्भटी शब्द के बहुत से अर्थ हैं। एक अर्थ 'किनारी की बन्धी' है। दूसरा अर्थ है वीरवृत्ति (heroic-worship)। तीसरा अर्थ है = आर्भट्या इति आदरेणेत्यर्थः अर्थात् आदर से। चौथा अर्थ है आसन विशेष आदि। पांचवा अर्थ है वीरात्मक लास्यवृत्ति।
नृमुण्ड स्रजं = (गले में आपने मरे हुए), मनुष्यों के सिरों की माला (धारण की है)
बन्धूक कुसुम = बन्धूक नामक फूलों की तरह
अरुणाम्बर = लाल वस्त्रों को
धरां = धारण करती है
प्रेतासन = (आप) शिवरूपी शव का आसन बनाकर
अध्यासिनीं = उस पर बैठी हैं
चतुर्भुजां = (आप) चार भुजाओं वाली हैं।
त्रिनयनां = तीन नेत्रों वाली हैं। सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि तीन नेत्र हैं।
आपीन = बड़े, **तुङ्ग** = उन्नत
स्तनीं = स्तनों वाली अर्थात् ज्ञान और क्रिया से युक्त आपका स्वरूप है
मध्ये = इन्हीं ज्ञान क्रियारूप स्तनों के बीच में,
निम्न = गहरी
वलित्रय = तीन रेखाओं अर्थात् भव, अभव और अतिभव रूपी कुण्डल आकार की लकीरें,
अंकित तनुं = सुशोभित हुई हैं। (इस प्रकार)

त्वद्रूप = आपके स्वरूप का
संवित्तये = साक्षात्कार करने के लिए,
(भक्त जन)
त्वां = आपका
ध्यायन्ति = ध्यान करते हैं
अर्भटया = वीरात्मक लास्य वृत्ति से
(heroic dancing form).

अनुवाद

हे देवी ! आपकी जटाओं के समूह पर चन्द्रमा का (अर्धाकार) खण्ड ऐसा शोभित होता है मानो आप ने किनारी की बन्धी बान्ध रक्खी है। गले में आपने मरे हुए मनुष्यों के सिरों की माला धारण की है। आप बन्धूक नामक फूलों की तरह लाल वस्त्रों को धारण करती हैं और आप शिव रूपी शव का आसन बना कर उस पर बैठी हैं। आप चार भुजाओं वाली हैं। तीन नेत्रों वाली हैं। बड़े और उन्नत वक्षस्थल अर्थात् ज्ञान और क्रिया से युक्त आपका स्वरूप है तथा इन्हीं आपके ज्ञान-क्रिया रूपी स्तनों के मध्य में तीन गहरी भव-अभव- और अतिभव रूपी कुण्डलाकार लकीरें सुशोभित हुई हैं—इस प्रकार आपके स्वरूप का साक्षात्कार करने के लिये भक्तजन आपका ध्यान वीरात्मक लास्यवृत्ति में सदा करते रहते हैं।। ११।।

जातोऽप्यऽल्पपरिच्छदे क्षितिभुजां सामान्यमात्रे कुले
निःशेषावनिचक्रवर्ति पदवीं लब्ध्वा प्रतापोन्नतः।
यद्विद्याधर वृन्दवन्दितपदः श्रीवत्सराजोऽभवत्
देवि ! त्वच्चरणाम्बुज प्रणतिजः सोऽयं प्रसादोदयः।। १२।।

पदच्छेद अन्वय सहित

जातः अपि अल्पपरिच्छदे क्षितिभुजां सामान्यमात्रे कुले
निःशेष अवनि चक्रवर्ति पदवीं लब्ध्वा प्रताप उन्नतः।
यत् विद्याधर वृन्दवन्दितपदः श्रीवत्सराजः अभवत्
देवि ! त्वत् चरण अम्बुज प्रणतिजः स अयं प्रसाद उदयः।। १२।।

(स) श्रीवत्स-राजः क्षितिभुजां सामान्यमात्रे कुले अल्प-परिच्छदे जातः अपि, यत् निःशेष-अवनि-चक्रवर्ति-पदवीं लब्ध्वा प्रताप - उन्नतः (सन्) विद्याधर-वृन्द-वन्दित-पदः अभवत्, सः अयं त्वत्-चरणाम्बुज-प्रणतिजः प्रसादोदयः तस्य आसीत् ।। १२।।

शब्दार्थ

देवि ! = हे देवी
श्रीवत्सराजः = कोशाम्बी नगरी का राजा उदयन
क्षितिभुजां = राजाओं के
सामान्यमात्रे कुले = साधारण कुल में
अल्प = छोटे
परिच्छदे = खानदान में
जातः = पैदा हुआ
अपि = भी
यत् = जो
निःशेष = सारी
अवनि = पृथ्वी पर
चक्रवर्ति = चक्रवर्ती राजा की
पदवी = पदवी को
लब्ध्वा = प्राप्त करके
प्रताप = ऐश्वर्व से
उन्नतः = ऊँचा सिर वाला (बना) (और जिसके)
वन्दितपदः = चरणों की
वन्दना = प्रणाम
विद्याधरवृन्दः = विद्याधरों का समूह
अभवत् = करने लगा अर्थात् जो विद्याधरों के समूह से पूजे हुए चरणों वाला बना, हे जगन्माता ! (सच तो यह है कि)
सः अयं = उसका सभी यह ऐश्वर्य
त्वत् = आपके
चरणाम्बुज = चरण कमलों में
प्रणतिजः = नतमस्तक होने से या सदा प्रणाम करने से पैदा हुआ
प्रसादोदयः = आपके ही अनुग्रह का प्रत्यक्ष फल था।

अनुवाद

राजाओं के साधारण कुल में एक सामान्य राजसेवक के रूप में उत्पन्न होने पर भी जो 'वत्सराज' नामक सम्राट् सम्पूर्ण पृथ्वी पर चक्रवर्ति-पदवी को प्राप्त करके ऐश्वर्य से उन्नत मस्तक वाला बना और जिसके चरणों की वन्दना (नित-प्रति) विद्याधरों का समूह करने लगा। हे जगन्माता ! (सच तो यह है कि) उस का सभी यह ऐश्वर्य आपके चरण-कमलों में नत-मस्तक रहने से उत्पन्न आपके ही अनुग्रह का प्रत्यक्ष फल था। ॥ १२॥

चण्डि ! त्वच्चरणाम्बुजार्चनविधौ बिल्वीदलोल्लुण्ठन-
त्रुटच्चत्कण्टककोटिभिः परिचयं येषां न जग्मुः कराः।
ते दण्डाङ्कुशचक्रचापकुलिशश्रीवत्समत्स्याङ्कितै-
र्जायन्ते पृथिवीभुजः कथमिवाम्भोजप्रभैः पाणिभिः ॥ १३॥

पदच्छेद अन्वय सहित

चण्डि ! त्वत्-चरण-अम्बुज-अर्चन-विधौ बिल्वी-दल उल्लुण्ठन-
त्रुटच्यत् कण्टक कोटिभिः परिचर्यं येषां न जग्मुः कराः।

ते दण्ड-अङ्कुश-चक्र-चाप-कुलिश-श्रीवत्स-मत्स्य-अङ्कितैः
जायन्ते पृथिवीभुजः कथम् इव अम्भोज प्रभैः पाणिभिः।। १३।।

चण्डि! त्वत्-चरणाम्बुज-अर्चन-विधौ बिल्वी-दल-उत् लुण्ठन-त्रट्यत्-कण्टक-कोटिभिः परिचयं येषां कराः न जग्मुः, ते दण्ड-अंकुश-चक्र-चाप- कुलिश-श्रीवत्स-मत्स्य-अङ्कितैः अम्भोज-प्रभैः पाणिभिः संयुक्ताः पृथिवीभुजः कथमिव जायन्ते।। १३।।

शब्दार्थ

चण्डि! = हे चण्डिका भगवती !
त्वत् = आपके
चरण = चरण
अम्बुज = कमलों की
अर्चनविधौ = पूजा करने के लिए
बिल्वीदल = बिल्वपत्रों को
उत् लुण्ठन = तोड़ने से
त्रुट्यत् = चुभते हुए
कण्टक = कांटों के
कोटिभिः = सिरों से
परिचयं न जग्मुः = पैदा हुए दुःख का अनुभव जिन्होंने न किया हो,
ते = वे, (आगामी जन्म में)
दण्ड = डंडा
अंकुश = अंकुश (goad)
चक्र = चक्र (discus)
चाप = धनुष (a bow)
कुलिश = वज्र (axe)
श्रीवत्स = श्रीवत्सरत्न अथवा लक्ष्मी का चिह्न
मत्स्य = मछली के आकारों से
अङ्कितैः = चिह्नित
अम्भोज = कमल के
प्रभैः = समान
पाणिभिः = हाथों से युक्त
पृथिवीभुजः = चक्रवर्ती राजा
कथमिव = किस भांति
जायन्ते = बन सकते हैं।

अनुवाद

हे चण्डिका भगवती ! जिन व्यक्तियों के हाथों ने आपके चरण-कमलों की पूजा करने के लिए बिल्वपत्रों को काटते हुए (उस बिल्व-वृक्ष में स्थित) कांटों के तीखे अग्रभाग के चुभने से उत्पन्न दुःख का अनुभव न किया हो, वे जन भला (आगामी जन्म में) दण्ड, अंकुश, चक्र, धनुष, वज्र, लक्ष्मी तथा मछली की आकृतियों से अंकित कमल के समान हाथों से युक्त चक्रवर्ती सम्राट् किस भांति बन सकते हैं। कहने का भाव यह है कि जो भक्त, जगज्जननी की, पूजा के लिए अनेक कष्टों को सहन करता है उसी के हाथ दूसरे जन्म में दण्ड आदि चिन्हों से युक्त होते हैं,

जिसके फलस्वरूप वह सम्राट् बनने की योग्यता रखता है।। १३।।

विशेषः- शास्त्रों का कहना है कि जिस व्यक्ति के हाथों में–दण्ड, अंकुश, चक्र, धनुष, वज्र, लक्ष्मी तथा मत्स्य–इनमें से किसी एक का भी चिन्ह अंकित हुआ हो, वह निःसन्देह चक्रवर्ती राजा बन जाता है। स्मरण रहे कि ऐसा चक्रवर्ती सम्राट् जगन्माता की कृपा से ही होता है।

विप्राः क्षोणिभुजो विशस्तदितरे क्षीराज्यमध्वासवै-
स्त्वां देवि ! त्रिपुरे ! पराऽपरमयीं सन्तर्प्य पूजाविधौ।
यां यां प्रार्थयते मनः स्थिरधियां तेषां ते एव ध्रुवं
तां तां सिद्धिमवाप्नुवन्ति तरसा विघ्नैरविघ्नीकृताः ।। १४।।

पदच्छेद अन्वय सहित

विप्राः क्षोणिभुजः विशः तत् इतरे क्षीर आज्य मधु आसवैः
त्वां देवि ! त्रिपुरे ! पर अपरमयीं सन्तर्प्य पूजाविधौ।
यां यां प्रार्थयते मनः स्थिरधियां तेषां ते एव ध्रुवं
तां तां सिद्धिम् अवाप्नुवन्ति तरसा विघ्नै-विघ्नी कृताः ।। १४।।

हे देवि ! हे त्रिपुरे ! विप्राः क्षोणि-भुजः विशः तदितरे क्षीर-आज्य-मधु-आसवैः, परापरमयीं त्वां पूजाविधौ संतर्प्य, तेषां स्थिर-धियां मनः यां यां प्रार्थयते तां तां सिद्धिं ते विघ्नैः-अविघ्नी-कृताः (सन्तः) तरसा एव ध्रुवं प्राप्नुवन्ति।। १४।।

शब्दार्थ

हे देवि! = हे देवी!
हे त्रिपुरे = हे त्रिपुरा भगवती, (आपके भक्त)
विप्राः = ब्राह्मण
क्षीर = दूध से
क्षोणिभुजः = क्षत्रिय
आज्य = घी से
विशः = वैश्य
मधु = शहद से
तदितरे = इनके अतिरिक्त अर्थात् शूद्र
आसवैः = मदिरा से
त्वां = आप
परापरामयीं = विश्वोत्तीर्ण और विश्वमयी देवी की
पूजाविधौ = पूजा की विधि में
संतर्प्य = तृप्त करके अर्थात् तृप्त करते हैं। (उसके फलस्वरूप)
तेषां = उन
स्थिरधियां = दृढ़ बुद्धिवालों का
मनः = मन
यां यां = जिस जिस
सिद्धिं = सिद्धि को
प्रार्थयते = चाहता है
तां तां = उस उस सिद्धि को
ते = वे
विघ्नैः = सारे विघ्नों से
अविघ्नीकृताः = निर्विघ्न होकर

तरसा = उसी समय
एव = ही
ध्रुवं = निश्चय करके
अवाप्नुवन्ति = प्राप्त करते हैं।

अनुवाद

हे देवी ! हे त्रिपुरा भगवती ! (आप के भक्त-जन) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र क्रम से दूध, घी, शहद तथा मदिरा से आप (विश्वोत्तीर्णा और विश्वमयी) देवी की पूजा करके आपको सन्तुष्ट करते हैं। उसके फलस्वरूप उन स्थिरबुद्धि वालों का मन जिस भी यथाभिलषित वस्तु की याचना आपके सम्मुख करता है वे अभीष्ट सिद्धियां उसे निर्विघ्न बनकर प्राप्त होती हैं।। १४।।

विशेषः- कहा भी है–

मुन्यत्रं ब्राह्मणस्योक्तमाज्यं क्षत्रियवैश्ययौः।
मधुप्रधानं शूद्रस्य .... ।।

अर्थात् ऋषियों के-अन्न (दूध) से ब्राह्मण को अपना इष्टदेव पूजना चाहिए। घी आदि से क्षत्रिय और वैश्य को तथा मधु-आदि से शूद्र को अपना देव पूजना चाहिये।

शब्दानां जननी त्वमत्र भुवने वाग्वादिनीत्युच्यसे
त्वत्तः केशववासव प्रभृतयोऽप्याविर्भवन्ति स्फुटम्।
लीयन्ते खलु यत्र कल्पविरमे ब्रह्मादयस्तेऽप्यमी
सा त्वं काचिदचिन्त्यरूपमहिमा शक्तिः परा गीयसे ।। १५।।

अन्वय पदच्छेद-सहित

शब्दानां जननी त्वम् अत्र भुवने वाक् वादिनी इति उच्यसे
त्वत्तः केशववासव प्रभृतयः अपि आविर्भवन्ति स्फुटम्।
लीयन्ते खलु यत्र कल्पविरमे ब्रह्मादयः ते अपि अमी
सा त्वं काचित् अचिन्त्यरूप महिमा शक्तिः परा गीयसे।। १५।।

अत्र भुवने त्वं शब्दानां जननी वाग्वादिनी इति उच्यसे। केशव-वासव-प्रभृतयः अपि स्फुटं त्वत्तः आविर्भवन्ति। ते अपि अमी ब्रह्मादयः खलु यत्र कल्पविरमे लीयन्ते, सात्वं काचित् अचिन्त्य-रूप महिमा परा-शक्तिः गीयसे।। १५।।

शब्दार्थ

(हे देवी !) अत्र = इस
भुवने = संसार में
त्वं = तू
शब्दानां जननी = सारे शब्द भण्डार की कारण

अर्थात् पैदा करने वाली है
(**त्वं** = आपको ही)
वाग्वादिनी = सरस्वती, अथवा वाणियों की अर्थात् परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी की उच्चारण करने वाली
इति = इस नाम से
उच्यसे = पुकारी जाती है।
केशव = नारायण
वासव = इन्द्र
प्रभृतयः = आदि (etc.)
अपि = भी
स्फुटं = प्रत्यक्षरूप से
त्वत्तः = आपसे ही
आविर्भवन्ति = प्रकट होते हैं।
ते = वे सारे
अमी = ये
ब्रह्मादयः अपि = ब्रह्मा आदि भी
कल्पविरमे = कल्प के अन्त में
यत्र = जिस तुम्हारे स्वरूप में
खलु = निश्चय करके
लीयन्ते = लय हो जाते हैं
सा = वही
त्वं = आपका
अचिन्त्य रूपमहिमा = अचिन्त्य महिमावाला स्वरूप
पराशक्तिः = पराशक्ति के नाम से
गीयसे = गाया जाता है।

अनुवाद

हे देवी ! इस संसार में आप समस्त शब्द-भण्डार की जननी अर्थात् कारण हैं। आपको वाग्वादिनी अर्थात् सरस्वती कहते हैं। आपके स्वरूप से ही नारायण, इन्द्र आदि देवता भी प्रत्यक्ष रूप से प्रकट होते हैं। कल्प के अन्त में वे सभी ब्रह्मादि देवता-गण तथ्यतः आपके स्वरूप में लीन होते हैं अर्थात् अपनी स्थिति को खो बैठते हैं। वही आपका अचिन्त्य महिमा वाला स्वरूप परा शक्ति के नाम से कहा जाता है। ।। १५।।

देवानां त्रितयं त्रयी हुतभुजां शक्तित्रयं त्रिस्वरा-
स्त्रैलोक्यं त्रिपदी त्रिपुष्करमथो त्रिब्रह्म वर्णास्त्रयः।
यत्किंचिज्जगति त्रिधा नियमितं वस्तु त्रिवर्गात्मकं
तत्सर्वं त्रिपुरेति नाम भगवत्यन्वेति ते तत्त्वतः ।। १६।।

पदच्छेद अन्वय सहित

देवानां त्रितयं त्रयी हुतभुजां शक्तित्रयं त्रिस्वराः
त्रैलोक्यं त्रिपदी त्रिपुष्करम् अथो त्रिब्रह्म वर्णाः त्रयः।
यत् किंचित् जगति त्रिधा नियमितं वस्तु त्रिवर्ग आत्मकम्

तत् सर्वं त्रिपुरा इति नाम भगवति ! अन्वेति ते तत्त्वतः।। १६।।

त्रितयं देवानां, त्रयी हुतभुजां, शक्तित्रयं, त्रिस्वराः, त्रैलोक्यं, त्रिपदी, त्रिपुष्करम्, अथ त्रिब्रह्म, त्रयः वर्णाः- (इत्येवं) यत्किंचित् त्रिवर्गात्मकं वस्तु जगति त्रिधा नियमितं, तत्सर्वं त्रिपुरा भगवती-इति ते नाम तत्त्वतः अन्वेति।। १६।।

शब्दार्थ

भगवति = हे ऐश्वर्यशालिनी भगवती !

देवानां त्रितयं = ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र – तीन देवताओं का वर्ग (group)

त्रयी = ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद

हुतभुजां शक्तित्रयं = अग्नि की तीन शक्तियां अर्थात् आहवनीय अग्नि (sacrificial fire) गार्हपत्याग्नि (household fire) दक्षिणाग्नि (crematory fire) (यहां यह ध्यान देने योग्य है कि स्वामी जी महाराज ने 'त्रयी' को अलग मानकर वेदत्रयी का अर्थ किया और शक्तित्रयं को हुतभुजां के साथ जोड़ा है। पर अन्य विद्वानों ने त्रयी को हुतभुजां के साथ जोड़कर त्रयी का वेदत्रयी अर्थ न करके 'तीन अग्नि' अर्थ किया है। और शक्ति त्रयं को - इच्छा, ज्ञान और क्रिया ये तीन शक्तियां अर्थ किया है)

त्रिस्वराः = उदात्त, अनुदात्त और स्वरित ये तीन वैदिक स्वर, उदात्त (high pitched sound) अनुदात्त (low pitched sound) स्वरित (mixed tone lying between high and low),

त्रैलोक्यं = तीन लोक – भूः (earth) भुवः (space) स्वः (heaven)

त्रिपदी - गायत्री के तीन पद – भूः, भुवः, स्वः

त्रिपुष्करं = ज्योतिष शास्त्र में कहे गये तीन पुष्कर योग अथवा नासिक, पुष्कर और प्रयाग नामक तीन तीर्थस्थान

अथो = और

त्रिब्रह्म = तीन ब्रह्म – ऊँ, तत्, सत् अथवा नर, शक्ति और शिव, अथवा इडा, पिंगला और सुषुम्ना

त्रयः वर्णाः = तीन वर्ण – अ, उ, म् अथवा ऐं, क्लीं, सौः अथवा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य,

यत्

किंचित् = इसी प्रकार जो भी कुछ

जगति = इस संसार में

त्रिवर्गात्मकं = तीन रूपों वाली वस्तु

नियमितं = नियमित कही गई है अथवा नियम में बांधी गई है

तत्सर्वं = वह सभी

त्रिपुराभगवती = तीन स्वरूपों को पूर्ण करने वाली भगवती के

इति ते नाम = नाम के ही

तत्त्वतः = वास्तविकता में

अन्वेति = अनुसरण करती है या अनुगामी है या परिचायक है।

अनुवाद

'ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र'–तीन देवताओं का वर्ग, 'ऋक्, यजु, साम'-वेदत्रयी अग्नि देवता की तीन शक्तियां - 'गार्हपत्य, आहवनीय, दक्षिणाग्नि', तीन स्वर-'उदात्त,

अनुदात्त, स्वरित', तीन लोक - 'भूः, भुवः, स्वः', गायत्री के तीन पद-'भूः, भुवः, स्वः', ज्योतिष-शास्त्र में वर्णित तीन पुष्कर-योग, तीन ब्रह्म-'ओं, तत् सत्' और तीन वर्ण-'अ, उ, म'-इसी भांति संसार में जो भी तीन-तीन रूप वाली वस्तु नियमित कही गई हैं, वह सभी 'त्रिपुरा' अर्थात् तीन स्वरूपों को पूर्ण करने वाली भगवती के नाम के ही अनुगामी अर्थात् परिचायक हैं।। १६।।

लक्ष्मीं राजकुले जयां रणभुवि क्षेमङ्करीमध्वनि
क्रव्यादद्विपसर्पभाजि शवरीं कान्तारदुर्गे गिरौ।
भूतप्रेतपिशाचजम्बुकभये स्मृत्वा महाभैरवीं
व्यामोहे त्रिपुरां तरन्ति विपदस्तारां च तोयप्लवे ।। १७।।

पदच्छेद अन्वय सहित

लक्ष्मीं राजकुले जयां रणभुवि क्षेमङ्करीम् अध्वनि
क्रव्याद-द्विप-सर्प-भाजि शवरीं कान्तार-दुर्गे गिरौ।
भूत-प्रेत-पिशाच-जम्बुक-भये स्मृत्वा महाभैरवीम्
व्योमोहे त्रिपुरां तरन्ति विपदः तारां च तोयप्लवे।। १७।।

राजकुले लक्ष्मीम् इव, रण-भुवि जयाम् इव, अध्वनि क्षेमंकरीम् इव, क्रव्याद-द्विप-सर्प-कान्तार-दुर्गे गिरौ शवरीम् इव, भूत-प्रेत-पिशाच-जम्बुक-भये महाभैरवीम् इव, व्योमोहे त्रिपुराम् इव (तथा) तोय-प्लवे ताराम् इव त्वां स्मृत्वा विपदः तरन्ति।। १७।।

शब्दार्थ

लक्ष्मीं = लक्ष्मी का
राजकुले = राजकुल में अर्थात् राजकुल में साक्षात् लक्ष्मी की भांति
रणभुवि जयां (इव) = भयंकर युद्ध-भूमि में जयप्रदा (जीत दिलाने वाली) विजया की भांति,
अध्वनि = दुःखग्रस्त संसार में
क्षेमङ्करीम् (इव) = कल्याण स्वरूप वाली क्षेमङ्करी की भांति
क्रव्याद = कच्चा मांस खाने वाले शेर तथा
द्विप = हाथी
सर्प = और सांप आदि से
भाजि = घिरे हुए
कान्तारदुर्गे = कठिन दुर्गम जंगलों से युक्त
गिरौ = पर्वत स्थानों में
शवरीं (इव) = आपको रक्षा करने वाली भीलिनी के समान
भूत-प्रेत पिशाच-जम्बुक भये = भूत, प्रेत, पिशाच और गीदड़ों के भय में
महाभैरवी (इव) = महाभैरवी के समान

व्यामोहे = सांसारिक मोह में
त्रिपुरां (इव) = त्रिपुरा का स्वरूप बनी हुई, जैसी
तोयप्लवे = संकट-रूपी विस्तृत जल से युक्त सागर में
तारां इव = नौका के समान बनी हुई
(त्वां) = आपका जो मनुष्य
स्मृत्वा = स्मरण करते हैं
विपदः तरन्ति = वे सभी आपदाओं से छूट जाते हैं।

अनुवाद

राज-कुल में साक्षात् 'लक्ष्मी' की भांति, भयंकर युद्ध-भूमि में जय-प्रदा 'विजया' की भांति, दुःख-ग्रस्त संसार में कल्याणस्वरूप वाली 'क्षेमंकरी' की भांति, आम-मांस-भक्षक सिंह तथा हाथी और सांप आदि भयंकर प्राणियों से घिरे हुए कठिन दुर्गम जंगलों से युक्त पर्वतस्थानों में आपको रक्षा करने वाली 'भीलिनी' के समान, भूत, प्रेत, पिशाच और गीदड़ों के भय में 'महाभैरवी' के समान, सांसारिक मोह में 'त्रिपुरा' का स्वरूप बनी हुई और संकट रूपी विस्तृत जल से युक्त समुद्र में 'तारा' (नौका) के समान बनी हुई जो मनुष्य आपका स्मरण करते हैं, वे उपरोक्त सभी आपदाओं से छूट जाते हैं।। १७।।

विशेषः- जम्भकभये – कई टीकाकारों ने जम्बुक के स्थान पर जम्भुक या जम्भक को ही उचित माना है और गीदड़ के स्थान पर इसका तात्पर्य एक तुच्छवृत्ति वाले साधु या एक भीषण योद्धा या भयंकर राक्षस, किया है। उत्तर रामायण में राम द्वारा इस जम्भक के शिरच्छेद का प्रसंग मिलता है जबकि यह तुच्छ जम्भक कठोर तपस्या के द्वारा सदेह स्वर्ग प्राप्ति की कामना करके रामराज्य में ऐसा नीच कर्म करने से ब्राह्मण बालक की मृत्यु का कारण बना था। अतः राम को इसका वध करना पड़ा। आदरणीय श्री हरभट्टशास्त्री ने जम्भक पाठान्तर मानकर धन्वन्तरि के हाथों से अमृत छीनने वाला 'जम्भासुर' इसका अर्थ किया है। यह असुर देवों के लिए महान् भय का कारण बना था। वैसे हाथी और शेरों के साथ गीदड़ का होना कुछ विचित्र सा लगता है अतः पिशाचों के साथ दैत्य की उपस्थिति उचित प्रतीत होती है।

माया कुण्डलिनी क्रिया मधुमती काली कला मालिनी
मातङ्गी विजया जया भगवती देवी शिवा शाम्भवी।
शक्तिः शङ्करवल्लभा त्रिनयना वाग्वादिनी भैरवी
ह्रींकारी त्रिपुरा परापरमयी माता कुमारीत्यसि ।। १८ ।।

पदच्छेद अन्वय सहित

माया कुण्डलिनी क्रिया मधुमती काली कला मालिनी
मातङ्गी विजया जया भगवती देवी शिवा शाम्भवी।
शक्तिः शङ्कर वल्लभा त्रिनयना वाक् वादिनी भैरवी
ह्रींकारी त्रिपुरा पर अपर मयी माता कुमारी इति असि।। १८।।

माया, कुण्डलिनी, मधुमती-क्रिया, काली कला, मालिनी, मातंगी, विजया, जया, भगवती, देवी, शिवा, शांभवी-शक्तिः, शंकर-वल्लभा, त्रिनयना, वाग्वादिनी, भैरवी, ह्रींकारी, त्रिपुरा, परापरमयी, माता, कुमारी–इति (त्वम्) असि ।। १८।।

शब्दार्थ

माया = हे देवी ! आप मायारूप हैं

कुण्डलिनी = कुण्डलिनी स्वरूपा हैं

क्रियामधुमती = मधुमती नामक योग संबंधी भूमिका हैं (इस मधुमती भूमिका में जाकर योगियों के सम्मुख अपनी करणेश्वरी देवियां वर देने के लिए उपस्थित हो जाती हैं)।

काली = आप काली भगवती हैं

कला = आप निवृत्ति कला, प्रतिष्ठाकला, विद्याकला, शान्ताकला तथा शान्तातीता नामक पांच कलाओं का स्वरूप बनी हुई हैं

मालिनी = 'न' कार वर्ण से लेकर 'फ' कार तक मालिनी (णादिफान्ता मालिनी) रूपा हैं

मातंगी = दस महाविद्याओं में से आप मातंगी विद्यास्वरूप हैं, (तारा, धूमावती, बगला, छिन्नमस्ता, मातंगी आदि)

विजया = आप तन्मात्रों पर विजय दिलाने वाली शुद्ध चेतनतारूपा विजया हो

जया = आप कर्म, अकर्म तथा तज्जन्य फल से मुक्ति दिलाने वाली जया हो, आप

भगवती = छः ऐश्वर्यों से सम्पन्न हो, आप देवी हो (अपनी स्वतन्त्र इच्छा से शिव तत्त्व से पृथिवी तत्त्व तक प्रकट होनेवाली स्वयं प्रकाशनशीला दिव्य शक्ति) आप

शिवा = कल्याणरूपा पार्वती हो तथा

शाम्भवी = शिव की अभिन्न शक्ति हो

शक्तिः = आप शक्ति स्वरूपा हो

शङ्करवल्लभा = शिव प्रिया हो

त्रिनयना =तीन नेत्रों वाली हो

वाग्वादिनी = आप सरस्वती हो

भैरवी = आप भैरव नाथ की शक्ति हो

ह्रींकारी = आप ह्रींकार रूपा अर्थात् माया प्रणव बीज हो

त्रिपुरा = तीन अवस्थाओं को पूर्ण करने वाली हो

परापरमयी = भोग तथा मोक्ष को देने वाली हो

माता = आप जगत् जननी हो

कुमारी इति = और आप भेदरूप माया का नाश करने वाली कुमारी

असि = हो।।

अनुवाद

हे देवी ! आप माया रूप हैं, कुण्डलिनी के स्वरूप वाली हैं, मधुमती नामक योगसंबंधी भूमिका हैं, (इस मधुमती भूमिका में जाकर योगियों के सम्मुख अपनी करणेश्वरी-देवियां वर देने के लिये उपस्थित हो जाती हैं) आप काली भगवती हैं, आप निवृति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ता तथा शान्तातीता नामक पांच कलाओं का स्वरूप बनी हुई हैं, नकार वर्ण से लेकर फकार तक मालिनी-रूप हैं। दस महाविद्यालयों में से आप मातंगी-विद्या-स्वरूप हैं। आप विजया, जया, भगवती, देवी, पार्वती तथा शम्भु-पत्नी हैं। आप शक्ति-स्वरूप हैं। शंकर भगवान् की प्रिया हैं। तीन नेत्रों वाली हैं। आप सरस्वती हैं। आप भैरव-नाथ की शक्ति हैं। आप ह्रींकार-रूपा हैं। तीन अवस्थाओं को पूर्ण करने वाली त्रिपुरा हैं। भोग तथा मोक्ष को देने वाली हैं। आप माता जगज्जननी हैं और भेदरूप माया का नाश करने वाली कुमारी हैं।। १८।।

आईपल्लवितैपरस्परयुतैर्द्वित्रि क्रमाद्यक्षरैः
काद्यैः क्षान्तगतैः स्वरादिभिरथो क्षान्तैश्च तैः सस्वरैः।
नामानि त्रिपुरे ! भवन्ति खलु यान्यत्यन्त गुह्यानि ते
तेभ्यो भैरवपत्नि ! विंशतिसहस्त्रेभ्यः परेभ्यो नमः ।। १९।।

पदच्छेद अन्वय सहित

आई पल्लवितैः परस्परयुतैः द्वित्रि क्रमाद्यक्षरैः
काद्यैः क्षान्तगतैः स्वरादिभिः अथो क्षान्तैः च तैः सस्वरैः।
नामानि त्रिपुरे ! भवन्ति खलु यान्यत्यन्त गुह्यानि ते
तेभ्यो भैरव पत्नि विंशति सहस्त्रेभ्यः परेभ्यो नमः।। १९।।

हे त्रिपुरे ! हे भैरवपत्नि ! आ-ई-पल्लवितैः परस्पर-युतैः द्वि-त्रि-क्रमादि-अक्षरैः, काद्यैः-अथ स्वरादिभिः सह क्षान्तैश्च तैः तैः स्वैरः (सह) यानि खलु अत्यन्त-गुह्यानि ते नामानि भवन्ति, तेभ्यः परेभ्यः विंशति-सहस्रेभ्यः नमः (अस्तु) ।। १९।।

शब्दार्थ

हे त्रिपुरे ! = हे तीनों लोकों को पूर्ण करने वाली देवी !

हे भैरवपत्नि ! = हे भैरवनाथ भगवान् शंकर की पत्नी

आईपल्लवितैः = 'आ' 'ई' स्वरों रूपी पत्तों से युक्त

द्वित्रि क्रमाद्यक्षरैः = दो तीन वर्णों के क्रम से
परस्परयुतैः = एक दूसरे से मिले हुए हैं
काद्यैः क्षान्तगतैः = 'क' से लेकर 'क्ष' अन्तवाले हैं
सस्वैरः = स्वर से युक्त हैं
स्वरादिभिः च क्षान्तैः = अथवा स्वरों से युक्त क्षकार अन्तवाले हैं अर्थात् 'अक्ष ह्रीं' और 'न फ ह्रीं' बीजमन्त्रों के अक्षरों से संपूर्ण हैं
नामानि भवन्ति = जो नाम बनते हैं
यानि = जो
अत्यन्त गुह्यानि भवन्ति = बहुत रहस्य बने हुए (बीजाक्षर) रूप में नाम हैं
तेभ्यः = उन
परेभ्यः = अति उत्कृष्ट
विंशति सहस्रेभ्यः = बीस हजार नामों को
नमः = हमारा प्रणाम हो।

अनुवाद

हे तीनों लोकों को पूर्ण करने वाली देवी ! हे भैरव-पत्नि ! जो आपके अत्यन्त रहस्य बने हुए (बीजाक्षर) रूप में नाम हैं, वे आ, ई स्वरों रूपी पत्तों से युक्त हैं। दो, तीन वर्णों के क्रम से संयुक्त रूप वाले हैं। ककार से लेकर क्षकार अन्त वाले हैं। स्वरों से युक्त हैं अथवा स्वरों से युक्त क्षकार अन्त वाले हैं अर्थात्-अक्षह्रीं नफह्रीं वाले हैं। उन आपके अति उत्कृष्ट बीस हजार नामों को हमारा प्रणाम हो।। १९।।

बोद्धव्या निपुणं बुधैः स्तुतिरियं कृत्वा मनस्तद्गतं
भारत्या त्रिपुरेत्यनन्य मनसा यत्राद्यवृत्ते स्फुटम्।
एकद्वित्रिपद क्रमेण कथितस्त्वत्पाद संख्याऽक्षरै-
र्मन्त्रोद्धारविधिर्विशेष सहितः सत्संप्रदायान्वितः।। २०।।

पदच्छेद अन्वय सहित

बोद्धव्या निपुणं बुधैः स्तुतिः इयं कृत्वा मनः तद्गतं
भारत्याः त्रिपुरा-इति अनन्यमनसः यत्र आद्यवृत्ते स्फुटम्।
एक-द्वि-त्रिपद क्रमेण कथितः त्वत्पाद संख्या अक्षरैः
मन्त्र उद्धार विधिः विशेष सहितः सत्संप्रदाय अन्वितः।। २०।।

इयं भारत्या त्रिपुरा-इति-स्तुति तद्गतं मनः कृत्वा बुधैः निपुणं बोद्धव्या, अनन्य मनसा यत्र आद्य-वृत्ते एक-द्वि-त्रिपदक्रमेण त्वत्-पाद-संख्या-अक्षरैः मन्त्र-उद्धार-विधिः विशेष-सहितः, सत्संप्रदाय-अन्वितः स्फुटं कथितः।। २०।।

शब्दार्थ

इयं = यह
भारत्या = सरस्वती की
त्रिपुरा-इति = तीन अवस्थाओं को पूर्ण करनेवाली
स्तुतिः = त्रिपुरा नाम की स्तुति
तद्गतं मनः कृत्वा = मन को एकाग्र बनाके देवी की भक्ति में लीन होकर
बुधैः = शिवशक्तिपात से अनुगृहीत बने हुए विद्वानों को
निपुणं = भली भांति
बोद्धव्या = समझनी चाहिए
अनन्य मनसा = और न किसी में लगाये हुए एकाग्रमन से।
यत्र = जिस स्तुति में
आद्यवृत्ते = प्रथम श्लोक में, **एक** = एक अर्थात् पहिले 'ऐं', **द्वि** = दो अर्थात् दूसरे 'क्लीं' **त्रि** = तीन अर्थात् 'सौः' (ऐं क्लीं सौः) **पद क्रमेण** = पदों के क्रम से युक्त, **त्वत्पाद संख्याक्षरैः** = आपके चरणों के साथ सम्बन्ध रखने वाले बीजाक्षरों के द्वारा, **मन्त्रोद्धारविधिः** = मंत्र के निकालने की विधि, **विशेष सहितः** = विशेषपूर्वक, **स्फुटं** = स्पष्ट रूप में, **कथितः** = कही गई है, **सत्संप्रदायान्वितः** = यह स्तुति गुरुजनों के सत्सम्प्रदाय से भी युक्त है अर्थात् गुरुजनों के द्वारा ही इस स्तुति का प्रादुर्भाव हुआ है।।

अनुवाद

सरस्वती भगवती की यह तीन अवस्थाओं को पूर्ण करने वाली त्रिपुरा नाम वाली स्तुति, मन को एकाग्र बना कर तथा देवी की भक्ति में लीन होकर शिव-शक्तिपात से अनुगृहीत बने हुए विद्वानों को भली-भांति समझनी चाहिये। जहां इस स्तुति के प्रथम श्लोक में एक अर्थात् पहिले ऐं, दो अर्थात् दूसरे क्लीं, तीन अर्थात् तीसरे सौः– इन तीन पदों के क्रम से युक्त आपके चरणों के साथ संबन्ध रखने वाले बीजाक्षरों के द्वारा मन्त्रोद्धार की विधि विशेषपूर्वक वर्णन की गई है, वहां यह स्तुति गुरुजनों के सत्संप्रदाय से भी युक्त है अर्थात् गुरुजनों के द्वारा ही इस स्तुति का प्रादुर्भाव हुआ है।। २०।।

विशेषः- इसमें 'तत्पाद संख्याक्षरैः' भी पाठान्तर है जिसका तात्पर्य है कि उस श्लोक के पादों की गिनती के अनुस्वार अर्थात् पहले श्लोक 'ऐन्द्रस्येव शरासनस्य दधतीं' के पहले, दूसरे और तीसरे पक्षों की क्रम से। कई आचार्यों ने 'निपुणं को मन': का विशेषण मानकर 'तीक्ष्णमन' ऐसा तात्पर्य किया है।

सावद्यं निरवद्यमस्तु यदि वा किं वानया चिन्तया
नूनं स्तोत्रमिदं पठिष्यति नरो यस्यास्ति भक्तिस्त्वयि।
संश्चिन्त्यापि लघुत्वमात्मनि दृढं सञ्जायमानं हठा-

त्वद्भक्त्या मुखरी कृतेन रचितं यस्मान्मयापि स्फुटम्।। २१।।

पदच्छेद अन्वय सहित

स अवद्यं निर् अवद्यम् अस्तु यदि वा किं वा अनया चिन्तया
नूनं स्तोत्रम् इदं पठिष्यति नरः यस्य अस्ति भक्तिः त्वयि।
सञ्चिन्त्य अपि लघुत्वम् आत्मनि दृढं सञ्जायमानं हठात्
त्वत् भक्त्या मुखरीकृतेन रचितं यस्मात् मया अपि स्फुटम् ।। २१।।

सा (इयं स्तुतिः) अवद्यम् अस्तु यदि वा निरवद्यम्। अनया चिन्तया किम्। यस्य त्वयि भक्तिः अस्ति, स नरः इदं स्तोत्रं नूनं पठिष्यति। यस्मात् आत्मनि संजायमानं दृढं लघुत्वं संचिन्त्य अपि त्वद्-भक्त्या-मुखरी-कृतेन मया अपि हठात् ध्रुवम् (इदं स्तोत्र) रचितम् ।। २१।।

शब्दार्थ

सा (इयं स्तुति) = मेरी यह स्तुति
यदि वा = चाहे
सावद्यं = दोष सहित
निरवद्यं = दोष रहित
अस्तु = हो
अनया चिन्तया व किम् = इसकी मुझे चिन्ता नहीं है।
नूनं = निश्चयरूप से
यस्य त्वयि भक्तिः अस्ति = जिस भक्त को आपकी भक्ति होगी
स नरः = वह भक्त
इदं स्तोत्रं नूनं पठिष्यति = इस स्तोत्र को अवश्य पढ़ेगा
यस्मात् = क्योंकि
लघुत्वं आत्मनि संजायमानं दृढं संचिन्त्यापि = अपने हृदय में अपनी लघुता का पूर्ण रूप से ज्ञान होने पर भी
मया = मैंने
त्वत् भक्त्या मुखरीकृतेन = तुम्हारी भक्ति से वाचाल बन कर
हठात् = हठ से
ध्रुवं = निश्चय करके
रचितं = इस स्तुति की रचना की है।।

अनुवाद

मेरी यह स्तुति सदोष है या निर्दोष है—इसकी मुझे चिन्ता नहीं है। निश्चय रूप से जिस भक्त को आपकी भक्ति होगी वह अवश्य इस स्तोत्र को पढ़ेगा। अपने हृदय में अपनी लघुता का पूर्ण रूप से ज्ञान होने पर भी मैंने इस स्तुति की रचना केवल भक्त होने के नाते वाचाल बन कर हठ से अर्थात् भक्ति पर-वश होकर ही रची है।। २१।।

विशेषः- कई आचार्यों ने मुखरीकृतेन का तात्पर्य तीक्ष्ण विमर्श युक्त बना हुआ और लघुत्वं का तात्पर्य शरीर प्राण आदि के अभिमान का अभाव किया है। इस पञ्चस्तवी के रचयिता धर्माचार्य ने अपने आपको अकिंचन समझकर इस प्रथम स्तव का नाम 'लघुस्तव' रखा है। अथवा यह भी हो सकता है कि जगन्माता की दया के फलस्वरूप ही, माता की अत्यन्त कठिन व असाध्यतम स्तुति सरल, स्पष्ट और लघु बन सकती है। तभी तो इस स्तोत्र का नाम 'लघुस्तव' रखा गया है।

इति पञ्चस्तव्यां लघुस्तवः प्रथमः।। १।।

अथ चर्चास्तवः द्वितीयः
।। ॐ नमस्त्रिपुरसुन्दर्यै।।

आनन्दसुन्दरपुरन्दरमुक्तमाल्यं
मौलौ हठेन निहितं महिषासुरस्य।
पादाम्बुजं भवतु मे विजयाय मञ्जु
मञ्जीरशिञ्जितमनोहरमम्बिकायाः।। १ ।।

पदच्छेद अन्वय सहित

आनन्द सुन्दर पुरन्दर मुक्त माल्यं
मौलौ हठेन निहितं महिषासुरस्य।
पाद अम्बुजं भवतु में विजयाय मञ्जु
मञ्जीर-शिञ्जित-मनोहरम् अम्बिकायाः।। १ ।।

आनन्द-सुन्दर-पुरन्दर-मुक्त-माल्यं, महिषासुरस्य मौली हठेन निहितं (एवं) मञ्जीर-शिञ्जित-मनोहरम् अम्बिकायाः मञ्जु पादाम्बुजं मे विजयाय भवतु ।। १।।

शब्दार्थ

आनन्द = आनन्द से
सुन्दर = अर्थात् प्रसन्न बने हुए
पुरन्दर = इन्द्र के द्वारा
मुक्त = उपहार की गई
माल्यं = माला वाला
महिषासुरस्यमौलौ = महिषासुर के सिर पर
हठेन = आग्रहपूर्वक
निहितं = रखा गया
मञ्जीर = पांयजेब 'नूपुर' की
शिञ्जित = घन घनाहट (झन-झन) के कारण
मनोहरं = सुन्दर
अम्बिकायाः = माता का
मञ्जु = सुन्दर
पादाम्बुजं = चरण कमल
मे = मेरी
विजयाय = विजय के लिए
भवतु = बना रहे।।

अनुवाद

पायज़ेब नूपुर की घनघनाहट के कारण मनोहारी, महिषासुर के सिर पर आग्रह-पूर्वक रखा गया है और इसी कारण आनन्द से सुन्दर अर्थात् प्रसन्न बने हुए

इन्द्र द्वारा उपहार की गई माला वाला माता दुर्गा जगज्जननी का सुन्दर-चरण कमल मेरी विजय के लिये बना रहे।। १।।

विशेषः- पौराणिक किंवदन्ती है कि महिषासुर नामक बलशाली दैत्य इन्द्र महाराज को बहुत सताया करता था। इस दुःख से छुटकारा प्राप्त करने के लिए इन्द्र ने श्रीदुर्गाजी की शरण ली। भक्त के हितार्थ देवी दुर्गा सिंहारूढ़ बन कर महिषासुर के समीप आई तथा उसके सिर को अपने चरणों से ऐसा दबाया कि वह पाताल में जा पहुँचा। यह देखते ही इन्द्र हर्षित हुए और माता दुर्गा जी के चरणों पर शिर झुकाने लगे; ऐसा करते हुए उनकी मोतियों की माला दुर्गा के चरणों पर गिर पड़ी। इस श्लोक में इन्द्र संबन्धिनी मोतियों की माला से सुशोभित दुर्गा जी के उन्हीं चरणों के ध्यान की ओर संकेत है।

विशेष—महिषासुर को कई आचार्यों ने देह अभिमान का प्रतीक माना है। चरणकमल-ज्ञान क्रिया रूप हैं। भेद-भाव पर विजय पाने के लिए तथा सारे मलों को दूर करने के लिए जगन्माता से प्रार्थना की गई है।

सौन्दर्य विभ्रमभुवो भुवनाधिपत्य-
सम्पत्ति कल्पतरवस्त्रिपुरे ! जयन्ति।
एते कवित्वकुमुदप्रकरावबोध-
पूर्णेन्दवस्त्वयि जगज्जननि प्रणामाः ।। २।।

पदच्छेद अन्वय सहित

सौन्दर्य विभ्रमभुवः भुवन आधिपत्य
सम्पत्ति कल्पतरवः त्रिपुरे ! जयन्ति।
एते कवित्व कुमुद प्रकर-अवबोध
पूर्ण इन्दवः त्वयि जगत् जननि ! प्रणामाः ।। २।।

त्रिपुरे ! जगज्जननि ! एते त्वयि प्रणामाः सौन्दर्य विभ्रम-भुवः, भुवन-आधिपत्य-संपत्ति-कल्प-तरवः, कवित्व-कुमुद-प्रकर-अवबोध-पूर्ण-इन्दवः (च) सन्ति।। २।।

शब्दार्थ

त्रिपुरे = हे त्रिपुरा भगवती

जगत् जननि = हे जगन्माता

एते त्वयि प्रणामाः = आपके निमित्त भक्तजनों के द्वारा किये गये प्रणाम

सौन्दर्यविभ्रमभुवः = अनन्त सुन्दरता के जन्म दाता हैं।

भुवन आधिपत्य संपत्ति=चक्रवर्ती राज्य की संपत्ति को देने में

कल्पतरवः= कल्पवृक्षों के समान है।
तथा कवित्व = कविता रूपी
कुमुद = कुमुद कमलों के
प्रकर = समूह को
अवबोध = विकसित करने के लिए
पूर्ण इन्दवः च = पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान
सन्ति = हैं।

अनुवाद

हे त्रिपुरा भगवती ! हे जगन्माता ! आपके निमित्त (भक्त-जनों के द्वारा) किये गये प्रणाम, अनन्त सुन्दरता के जन्म-दाता हैं। चक्रवर्ती-राजा की संपत्ति को देने में कल्प-वृक्षों के समान हैं। ये प्रणाम, कविता रूपी कुमुद-कमलों के समूह को विकसित करने के लिए पूर्णिमा के चन्द्रमा के तुल्य हैं। भाव यह है कि जो जन आपको प्रणाम करते हैं उन्हें आन्तरिक तथा बाह्य-सुन्दरता जगन्माता प्रदान करती है। वे चक्रवर्ती राज्य को प्राप्त करके अनन्त समय के लिये ऐश्वर्य भोगते हैं तथा उन्हें कविता का प्रादुर्भाव धारावाहिक रूप से होने लगता है।। २।।

विशेष–त्रिपुरा को कई शाक्त आचार्यों ने 'ऐं क्लीं सौः' नामक तीन वाग्भवकूट, कामराजकूट और शक्तिकूट के बीजाक्षरों की अधिष्ठातृ देवी भूः भुवः स्वः नामक तीन भवनों की पराशक्ति अथवा जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति नामक तीन अवस्थाओं की ईश्वरी तथा पंचदशाक्षरी स्वरूपा श्रीविद्या माना है।

'कुमुद'–सफेद रंग के "Water Lilly" को कुमुद कहते हैं जो पूनम के दिन पूर्णरूप से विकसित होता है। कुमुद पुष्प का ही दूसरा नाम है 'कुन्दपुष्प'।

देवि ! स्तुतिव्यतिकरे कृतबुद्धयस्ते
वाचस्पति प्रभृतयोऽपि जडी भवन्ति।
तस्मान्निसर्ग जडिमा कतमोऽहमत्र
स्तोत्रं तव त्रिपुरतापनपत्नि ! कर्तुम् ।। ३।।

पदच्छेद अन्वय सहित

देवि ! स्तुति व्यतिकरे कृतबुद्धयः
वाचस्पति प्रभृतयः अपि जडी भवन्ति।
तस्मात् निसर्ग जडिमा कतमः अहम् अत्र
स्तोत्रं तव त्रिपुरतापन पत्नि ! कर्तुम् ।। ३।।

हे देवि ! ते स्तुति-व्यतिकरे कृतबुद्धयः वाचस्पति प्रभृतयः अपि जडी भवन्ति।

तस्मात् हे त्रिपुरतापन पत्नि ! - जडिमा अहम् अत्र तव स्तोत्रं कर्तुं कतमः (अस्मि) ॥ ३॥

शब्दार्थ

हे देवि ! = हे देवी

ते स्तुति व्यतिकरे = आपके स्तुति रचनात्मक परिश्रम करने में

कृतबुद्धयः = बुद्धि पारंगत बने हुए

वाचस्पतिप्रभृतयः = बृहस्पति आदि विद्वान् भी

जडी भवति = मूक बन जाते हैं, अर्थात् आपकी स्तुति नहीं कर सकते हैं।

तस्मात् = इसलिए

त्रिपुर- तापनपत्नि = हे त्रिपुरारि शंकर की महारानी !

निसर्ग = स्वभाव से ही

जडिमा = जड अर्थात् मूर्ख

अहं = मैं

अत्र = यहां

तव = आपकी

स्तोत्रं कर्तुं = स्तुति करने में

कतमः (अस्मि) = गिनती ही क्या रखता हूँ।।

अनुवाद

हे देवी ! आपके स्तुति-रचनात्मक परिश्रम करने में बुद्धि-पारंगत बने हुए बृहस्पतिपाद आदि विद्वान् भी मूक बन जाते हैं, अर्थात् आपकी स्तुति नहीं कर सकते हैं। इसलिए हे त्रिपुरारि शंकर की महारानी ! स्वभाव से ही जड अर्थात् मूर्ख मैं, आपकी स्तुति करने में गिनती ही क्या रखता हूं।। ३।।

मातस्तथापि भवतीं भवतीव्रताप-
विच्छित्तये स्तुति महार्णव कर्णधारः।
स्तोतुं भवानि स भवच्चरणारविन्द-
भक्तिग्रहः किमपि मां मुखरी करोति ।। ४।।

पदच्छेद अन्वय सहित

मातः ! तथा अपि भवतीं भव तीव्रताप-
विच्छित्तये स्तुति महा अर्णव कर्णधारः।
स्तोतुं भवानि ! स भवत् चरण अरविन्द-
भक्तिग्रहः किम् अपि मां मुखरी करोति ॥ ४॥

हे मातः ! हे भवानि ! तथापि भवतीव्रतापविच्छित्तये स्तुति-महार्णव-कर्णधारः स किमपि भवच्चरणारविन्दभक्तिग्रहः भवती स्तोतुं मां मुखरी करोति ॥ ४॥

शब्दार्थ

हे मातः ! हे भवानि ! = हे माता ! हे भवानी! (यद्यपि मैं आपकी स्तुति करने में असमर्थ हूँ)
तथापि = फिर भी
भव = सांसारिक
तीव्र = घोर
ताप = दुःखों को
विच्छित्तये = हटाने के लिए
स्तुति = आपकी स्तुति
महा-अर्णव = महान् सागर में
कर्णधारः = एक प्रवीण (चतुर) नाविक के समान सहायक है
सः = वह
किमपि = कुछ
भवत् = आपके
चरणारविन्द = चरण कमलों की
भक्तिग्रहः = अलौकिक भक्ति ही
भवतीं = आपकी
स्तोतुं = स्तुति करने के लिए
मां = मुझे
मुखरी करोति = वाचाल बना देती है।।

अनुवाद

हे माता ! हे भवानी ! (यद्यपि मैं आपकी स्तुति करने में असमर्थ हूं) क्योंकि आपकी स्तुति एक अथाह समुद्र के तुल्य है और इसके पार होना मनुष्य के पुरुषार्थ से बाहर है, तथापि आपके चरण-कमलों की अलौकिक भक्ति ही इस उपरोक्त स्तुति-रचनात्मक समुद्र में एक प्रवीण नाविक के समान सहायक है। वही भक्ति सांसारिक दुःखों को हटाने के निमित्त मुझे आपकी स्तुति करवाने में मुखर अर्थात् वाचाल बना देती है।। ४।।

सूते जगन्ति भवती भवती बिभर्ति
जागर्ति तत्क्षयकृते भवती भवानि।
मोहं भिनत्ति भवती भवती रुणद्धि
लीलायितं जयति चित्रमिदं भवत्याः ।। ५।।

पदच्छेद अन्वय सहित

सूते जगन्ति भवती भवती बिभर्ति
जागर्ति तत्क्षयकृते भवती भवानि !
मोहं भिनत्ति भवती भवती रुणद्धि
लीलायितं जयति चित्रम् इदं भवत्याः ।। ५।।

हे भवानि ! भवती जगन्ति सूते, भवती बिभर्ति, तत्क्षयकृते भवती जागर्ति। भवती मोहं भिनत्ति, भवती रुणद्धि। (इत्यतः) इदं भवत्याः चित्रम् लीलायितं जयति ॥ ५॥

शब्दार्थ

हे भवानि = हे माता
भवती = आप
जगन्ति = इन सभी सांसारिक मण्डलों की
सूते = उत्पत्ति करती है
भवती = आप
बिभर्ति = पालन-पोषण करती है
तत्क्षयकृते = और इनका नाश करने के लिए
भवती = आप
जागर्ति = होशियार अर्थात् सन्नद्ध बनी रहती हैं
भवती = आप
मोहं = तिरोधानात्मक एवं अज्ञानरूपी मोह को
भिनत्ति = काटती हैं
भवती = आप
रुणद्धि = उस मोह को फिर से आश्यानी भावात्मक स्थिति देती हैं अर्थात् स्वरूप का तिरोधान करती है
इदं = इस
भवत्याः = आपकी
चित्रं = विचित्र
लीलायितं = लीलामय क्रीड़ा की
जयति = जय हो॥

अनुवाद

हे माता ! आप इन सभी सांसारिक मण्डलों की उत्पत्ति करती हैं, इनका पालन पोषण करती हैं और इनका नाश करने के लिए होशियार अर्थात् सन्नद्ध बनी रहती हैं। इसके अतिरिक्त आप तिरोधानात्मक एवं अज्ञान रूपी मोह को काटती हैं तथा उस मोह को फिर से (आश्यानीभावात्त्मक) स्थिति देती हैं, अतः आपकी इस विचित्र लीलामय क्रीड़ा की जय हो ॥ ५॥

यस्मिन्मनागपि नवाम्बुज पत्र गौरि !
गौरि ! प्रसादमधुरां दृशमादधासि ।
तस्मिन्निरन्तरमनङ्गशरावकीर्ण-
सीमन्तिनीनयनसन्ततयः पतन्ति ॥ ६॥

पदच्छेद अन्वय सहित

यस्मिन् मनाक् अपि नव अम्बुज पत्र गौरि !
गौरि ! प्रसादमधुरां दृशम् आदधासि ।
तस्मिन् निरन्तरम् अनङ्ग शर अवकीर्ण-

सीमन्तिनी नयन सन्ततयः पतन्ति ॥ ६॥

हे नवाम्बुज पत्र गौरि ! यस्मिन् प्रसाद-मधुरां दृशं मनागपि (त्वं) आदधासि, तस्मिन् अनङ्ग-शर-अवकीर्ण-सीमन्तिनी-नयन-सन्ततयः निरन्तरं पतन्ति ॥ ६॥

शब्दार्थ

हे नवाम्बुज पत्रगौरि ! = नवीन कमल के पत्तों के समान श्वेतवर्णवाली हे पार्वती !

यस्मिन् = जिस भक्त पर

प्रसादमधुरां = दया से मधुर बनी हुई

दृशं = अपनी दृष्टि

मनागपि = तनिक मात्र भी

(**त्वं** = तू)

आदधासि = डालती हो

तस्मिन् = उस भक्त का

अनङ्ग-शर-अवकीर्ण = मानसिक संकल्प विकल्पों से छलनी बना हुआ मन

सीमन्तिनी नयन सन्ततयः = तथा मनकी वृत्तियों की पंक्ति

निरन्तरं पतन्ति = सदा के लिए निश्चेष्ट हो जाती है। "अनंग शरावकीर्ण सीमन्तिनी नयन सन्ततयः पतन्ति" इस पंक्ति का शाब्दिक अर्थ इस प्रकार है–

अनंग = कामदेव के

शर=बाणों से

अवकीर्ण = चंचल बनी हुई

सीमन्तिनी = मनोहर स्त्रियों की (शक्तियों की)

नयन = आंखों की

सन्ततयः = पंक्तियां

निरन्तरं पतन्ति = अविराम पड़ती हैं अर्थात् अणिमा आदि अष्ट सिद्धियां वश में हो जाती हैं।

अनुवाद

नवीन कमलों के पत्तों के समान श्वेत-वर्ण वाली हे पार्वती ! दया से मधुर बनी हुई अपनी दृष्टि आप जिस भक्त पर तनिक मात्र भी डालती हैं उसकी ओर दया-पूर्ण दृष्टि से देखती हैं, उस भक्त का मानसिक संकल्प विकल्पों से छलनी बना हुआ मन तथा मन की वृत्तियों की पंक्ति सदा के लिए स्वयं अर्थात् बिना किसी प्रयास के निश्चेष्ट हो जाती हैं अर्थात् वह एकाग्र बन कर समाधि-निष्ठ बनता है॥ ६॥

विशेष– देवी पुराण में 'गौरी' शब्द की व्याख्या इस प्रकार की गई है कि जो शक्ति योग अग्नि से जलकर फिर हिमालय पर्वत के पास पुत्री रूप में पैदा हुई वही शंख और कुमुद फूल के समान सफेद वर्णवाली शक्ति 'गौरी' के नाम से प्रसिद्ध हुई। स्मरण रहे कि 'कान्यकुब्ज' वर्तमान 'कन्नौज' प्रदेश के शक्तिपीठ की अधिष्ठातृ देवी का नाम 'गौरी' ही है।

पृथ्वीभुजोऽप्युदयनप्रवरस्य तस्य
विद्याधर प्रणति चुम्बित पाद पीठः।

यच्चक्रवर्तिपदवीप्रणयः स एव

त्वत्पादपङ्कजरजः कणजः प्रसादः ॥ ७॥

पदच्छेद अन्वय सहित

पृथ्वीभुजः अपि उदयन प्रवरस्य तस्य
विद्याधर प्रणति चुम्बित पाद पीठः।
यत् चक्रवर्ति पदवी प्रणयः स एव
त्वत् पाद पङ्कजरजः कणजः प्रसादः ॥ ७॥

तस्यपि उदयन प्रवरस्य पृथ्वीभुजः यत् विद्याधर प्रणति चुम्बित पाद पीठः चक्रवर्ति पदवीप्रणयः (अभवत्) स एव प्रसादः त्वत्पाद-पंकज रजः कणजः (तस्य आसीत्) ॥ ७॥

शब्दार्थ

तस्यापि = उसकी भी
उदयन प्रवरस्य पृथ्वीभुजः = श्रेष्ठ राजा उदयन की
यत् = जो
चक्रवर्ति पदवी प्रणयः (अभवत्) = चक्रवर्ती पदवी की बढ़ाई प्राप्त हुई थी जिसके राज्यसिंहासन के
पादपीठः = पाद पीठ को
प्रणति = प्रणाम करके और
चुम्बित = चूमकर
विद्याधर = विद्याधर गण अपना अहोभाग्य समझते थे
स एव प्रसादः = वह यह अनुग्रह या दया अर्थात् इस भांति उसके सम्पूर्ण ऐश्वर्य का होना
त्वत्पाद-पंकज = आपके ही चरणकमलों की
रजः = धूलि के
कणजः (तस्य आसीत्) = एक एक कण मात्र की दया थी।

अनुवाद

उस श्रेष्ठ राजा उदयन को, जो चक्रवर्ती-पदवी की बढ़ाई प्राप्त हुई थी तथा जिस के राज्य-सिंहासन के पाद-पाठ को प्रणाम करके और चूम कर विद्याधर गण अपना अहोभाग्य समझते थे। (इस भांति उसके संपूर्ण ऐश्वर्य का होना) आपके ही चरण कमलों की धूलि के एक कण-मात्र की दया थी॥ ७॥

विशेष– राजा उदयन एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक राजा था, जो देवी का अत्यन्त भक्त था। जिसके परिणामस्वरूप वह चक्रवर्ती राजा बना और विशेष आध्यात्मिक ज्ञान से समृद्ध बने हुए विद्याधरों से भी पूजा जाता था। उसका एक बेटा राजा नरवाहन दत्त था। जिसका दूसरा नाम 'उदयन प्रवर' था। वह भी जगन्माता के कृपा कटाक्ष का पात्र बन कर अत्यन्त भक्ति से पूजा जाता था। यहां 'उदयनप्रवरस्य' का निर्देश शायद उसी राजपुत्र से हो यह विचारणीय विषय है।

कल्पद्रुमप्रसवकल्पितचित्रपूजा-
मुद्दीपित प्रियतमामदरक्तगीतिम्।
नित्यं भवानि ! भवतीमुपवीणयन्ति
विद्याधराः कनकशैलगुहागृहेषु ॥ ८॥

पदच्छेद अन्वय सहित

कल्पद्रुम-प्रसव-कल्पित-चित्र-पूजाम्
उद्दीपित प्रियतम आमदरक्त गीतिम्।
नित्यं भवानि ! भवतीम् उपवीणयन्ति
विद्याधराः कनक शैल गुहागृहेषु ॥ ८॥

हे भवानि ! विद्याधराः कल्प-द्रुम-प्रसव-कल्पित चित्र-पूजां भवतीम् कनक-शैल-गुहा-गृहेषु उद्दीपित-प्रियतम-आमद-रक्त-गीतिं नित्यम् उपवीणयन्ति ॥ ८॥

शब्दार्थ

हे भवानि ! = हे पार्वती !
विद्याधरः = विद्याधरगण
कल्पद्रुम = कल्पवृक्षों के
प्रसव =पुष्पों से
कल्पित चित्रपूजां = अनूठी पूजा करके
भवतीं = आपकी
कनकशैल गुहागृहेषु = सुवर्णमय सुमेरु पर्वत की गुफाओं में (कन्दराओं में)
उद्दीपित = अत्यन्त ज्वाज्वल्यमान, तथा
प्रियतम = प्रिय;
आमद = हर्ष से
रक्त = युक्त (सहित)
गीतिं = गीतों को
नित्यं = सदैव
उपवीणयन्ति = वीणाओं पर बजाते रहते हैं।

अनुवाद

हे पार्वती ! विद्याधर-गण कल्प वृक्षों के पुष्पों से आपकी अनूठी पूजा करके सुवर्णमय सुमेरु पर्वत की कन्दराओं में अत्यन्त ज्वाज्वल्यमान तथा अपने प्रिय हर्ष-युक्त गीतों को सदैव वीणाओं पर बजाते रहते हैं तथा आपके गुणों का गान करते हैं॥ ८॥

विशेष– स्मरण रहे कि ईश्वरस्वरूप स्वामी लक्ष्मणजी महाराज ने एक रविवासरीय व्याख्यान माला में इस श्लोक के ऊपर निर्दिष्ट शाब्दिक अर्थ के अतिरिक्त आध्यात्मिक अर्थ का भी स्पष्टीकरण किया जो इस प्रकार है– "कल्पद्रुम" से स्थूल देह की ओर संकेत है जिसकी

इन्द्रियवृत्तियां पूजा के फूल हैं। 'चित्रपूजा' का तात्पर्य है विस्मयावहक पूजा जिसमें अक्षवलय पूजा साधन है। यह आणव उपाय क्रम है क्योंकि इसमें स्थूल उपायों को प्रयोग में लाया गया है।

प्रियतमामदरक्तगीति– यह शाक्तोपाय क्रम है। दिव्य उन्माद में गाने का संकेत गहन परामर्श की उद्युक्तता की ओर है। गहन परामर्श साधना का सूक्ष्म उपाय है जो आध्यात्मिक अभिवृद्धि को जतलाता है।

'उपवीणयन्ति' का तात्पर्य वीणाओं पर बजाते रहते हैं अर्थात् यहां गहन-साधना में मग्न होकर अहं परामर्श का पूर्णविमर्श में स्वाभाविक रूप से लय होना ही जगदानन्द दशा की ओर संकेत है, जो शाम्भव उपाय साधना है।

'विद्याधराः' ये वे साधक हैं जो ज्ञानवान् हैं पर साधना में अपरिपक्व हैं।

'कनकशैलगुहागृहेषु' – सुमेरु पर्वत की गुफाओं से संवित्धाम अभिप्रेत है।

लक्ष्मीवशीकरणकर्मणिकामिनीना-
माकर्षणव्यतिकरेषु च सिद्धमन्त्रः।
नीरन्ध्रमोहतिमिरच्छिदुरप्रदीपो
देवि ! त्वदऽङ्घ्रिजनितो जयति प्रसादः ।। ९।।

पदच्छेद अन्वय सहित

लक्ष्मी वशीकरण कर्मणि कामिनीनाम्
आकर्षण व्यतिकरेषु च सिद्धमन्त्रः।
नीःरन्ध्र-मोह-तिमिर-च्छिदुर प्रदीपः
देवि ! त्वद् अङ्घ्रि जनितः जयति प्रसादः ।। ९।।

हे देवि ! त्वद् अंघ्रि जनितः प्रसादः, लक्ष्मी वशीकरणकर्मणि (तथा) कामिनीनां आकर्षण-व्यतिकरेषु सिद्धमन्त्रः नीरन्ध्र-मोह-तिमिर-च्छिदुर-प्रदीपः जयति।। ९।।

शब्दार्थ

हे देवि ! = हे देवी !
त्वत् = आपके
अङ्घ्रि = चरणों से
जनितः = उत्पन्न
प्रसादः = अनुग्रह
लक्ष्मी वशीकरणकर्मणि = अनन्त संपदाओं को वशीभूत करने में, (तथा)
कामिनीनां = करणकामिनियों अर्थात् अद्वैत प्रधान अष्ट सिद्धियों को
आकर्षणव्यतिकरेषु = अपने स्वाधीन बनाने में
सिद्धमन्त्रः = सिद्ध रामबाण की भांति अचूकमन्त्र है,
(तथा = एवं)
नीरन्ध्र = घने

मोह तिमिर = अज्ञान रूपी अन्धकार को
च्छिदुर = छिन्न-भिन्न करने में
प्रदीपः = दीपक के समान है
जयति = आपकी उसी दया की जय हो।

अनुवाद

हे देवि ! आपके चरणों से उत्पन्न अनुग्रह, अनन्त संपदाओं को वशीभूत करने में तथा कामिनियों अर्थात् अद्वैत-प्रधान अष्ट-सिद्धियों को अपने स्वाधीन बनाने में सिद्ध राम-बाण की भांति अचूक मन्त्र है एवं घने अज्ञान रूपी अंधकार को छिन्न-भिन्न करने में दीपक के समान है। उसी आपकी दया की जय हो।। ९।।

देवि ! त्वदऽङ्घ्रिनखरत्नभुवो मयूखाः
प्रत्यग्रमौक्तिकरुचो मुदमुद्वहन्ति।
सेवानतिव्यतिकरे सुरसुन्दरीणां
सीमन्तसीम्निकुसुमस्तवकायितं यैः।। १०।।

पदच्छेद अन्वय सहित

देवि ! त्वत् अङ्घ्रि नख-रत्न-भुवः मयूखाः
प्रत्यग्र मौक्तिकरुचः मुदम् उद्वहन्ति।
सेवा-नति व्यतिकरे सुरसुन्दरीणाम्
सीमन्त सीम्नि कुसुमस्तवकायितं यैः ।। १०।।

हे देवि ! त्वद् अंघ्रि-नख-रत्न-भुवः प्रत्यग्र-मौक्तिक-रुचः मयूखाः मुदम् उद्वहन्ति, यैः (मयूखैः) सुरसुन्दरीणां सीमन्त-सीम्नि सेवा-नति-व्यतिकरे कुसुमस्तवकायितम् ।।१०।।

शब्दार्थ

हे देवि ! = हे देवी !
त्वद् = आपके
अङ्घ्रि = चरणों के
नख = नाखून रूपी
रत्न = रत्नों से
भुवः = उत्पन्न
मयूखाः = किरणें
प्रत्यग्र = प्रत्येक नाखून के अग्रभाग पर
मौक्तिकरुचः = मोती की कांति के समान चमक से
मुदं = आनन्द को
उद्वहन्ति = प्राप्त करती हैं
यैः = जिन किरणों से
सेवानति व्यतिकरे = सेवा के कारण नतमस्तक रहने वाली
सुरसुन्दरीणां = देवस्त्रियों के
सीमन्त सीम्नि = मांग के स्थान में
कुसमस्तवकायितं = गुलदस्ते की भांति आभा से युक्त दिखाई देती है।

अनुवाद

हे देवी ! आपके चरणों के नाखून रूपी रत्नों से उत्पन्न सौन्दर्य की किरणें प्रत्येक नाखून के अग्रभाग पर मोती की कांति के समान चमक से आनन्द को प्राप्त करती हैं, तथा वे किरणें सेवा के कारण नत-मस्तक रहने वाली देवस्त्रियों के मांग के स्थान में गुलदस्ते की भांति आभा से युक्त दिखाई देती हैं।। १०।।

विशेष– 'सुरसुन्दरीणां' से करणेश्वरी वृत्तियों की ओर संकेत है जो साधकों को स्वरूप साक्षात्कार में सहायक बनती हैं।

मूर्ध्नि स्फुरत्तुहिनदीधितिदीप्तिदीप्तं
मध्ये ललाटममरायुधरश्मिचित्रम्।
हृच्चक्रचुम्बि हुतभुक्कणिकाऽनुरूपं
ज्योतिर्यदेतदिदमम्ब ! तव स्वरूपम्।। ११।।

पदच्छेद अन्वय सहित

मूर्ध्नि स्फुरत् तुहिन दीधिति दीप्ति दीप्तं
मध्ये ललाटम् अमर आयुध रश्मि चित्रम्।
हृत् चक्र चुम्बि हुतभुक् कणिका अनुरूपं
ज्योतिः यत् एतत् इदम् अम्ब ! तव स्वरूपम्।। ११।

अम्ब ! मूर्ध्नि स्फुरत् तुहिन दीधिति दीप्तिदीप्तं, मध्ये ललाटम् अमरायुध रश्मि चित्रं, (तथा) हृच्चक्र चुम्बि हुतभुक्-कणिका अनुरूपं यत् एतत् ज्योतिः (वर्तते) तत् तव स्वरूपम् (अस्ति)।

शब्दार्थ

अम्ब = हे माता
मूर्ध्नि = समस्त प्राणियों के ब्रह्मांड स्थान में
स्फुरत् =चमकते हुए
तुहिन-दीधिति = चन्द्रमा की
दीप्ति = किरणों की कांति के समान
दीप्तं = चमकता हुआ
ललाटं मध्ये = माथे के बीच में, अर्थात् प्राणियों के मस्तक के बीच में
अमरायुध = इन्द्रधनुष की तरह
रश्मि चित्रं = रंग बिरंगी अनेक रश्मियों से युक्त
यत् ज्योतिः = जो प्रकाश (ठहरा रहता है) (तथा)
हृत् चक्र = प्राणियों के हृदय में
चुम्बि = ठहरी हुई (अथवा स्पर्श करने वाली)
हुतभुक् = अग्नि की
कणिका अनुरूपं = कणों की भांति
यत् एतत् ज्योतिः = जो यह प्रकाश

वर्तते = अवस्थित है

तत् तव स्वरूपं अस्ति = वे सभी प्रकार वास्तव में आपके ही स्वरूप हैं।।

अनुवाद

हे माता ! समस्त प्राणियों के ब्रह्मांड स्थान में जो ज्योति चन्द्रमा की किरणों की कांति के समान विकसित बनी हुई है, तथा प्राणियों के मस्तक के बीच में इन्द्र-धनुष की नाई रंग-बिरंगी अनेक रश्मियों से युक्त जो प्रकाश ठहरा रहता है, एवं प्राणियों के हृदय-स्थान में ठहरी हुई अग्नि के कणों की भांति जो ज्योति अवस्थित है, वे सभी प्रकाश, वास्तव में आपके ही स्वरूप हैं। भाव यह है कि 'ऐं, क्लीं, सौः' —ये आपके बीजाक्षर आपके स्वरूप को ही दिखाते हैं।। ११।।

रूपं तव स्फुरितचन्द्रमरीचिगौर-
मालोकते शिरसि वागधिदैवतं यः।
निःसीमसूक्तिरचनामृतनिर्भरस्य
तस्य प्रसादमधुराः प्रसरन्ति वाचः।। १२।।

पदच्छेद अन्वय सहित

रूपं तव स्फुरित चन्द्र मरीचि गौरम्
आलोकते शिरसि वाक् अधिदैवतं यः।
निःसीम सु उक्ति रचना अमृत निर्भरस्य
तस्य प्रसाद मधुराः प्रसरन्ति वाचः ।। १२।।

यः (कश्चित्) स्फुरित-चन्द्र मरीचि-गौरम् तव रूपं वागधि दैवतं शिरसि आलोकते, निःसीमसूक्ति रचनामृत निर्भरस्य तस्य प्रसाद मधुराः वाचः प्रसरन्ति ।। १२।।

शब्दार्थ

यः = जो (कश्चित्) भक्त
स्फुरित = विकसित
चन्द्र मरीचि गौरं = चन्द्रमा की किरणों की भांति श्वेतता से युक्त;
वाक् अधिदैवतं = सरस्वती के मुख्य बने हुए क्लीं नामक
तवरूपं = आपके मन्त्र स्वरूप को
शिरसि = सिरपर
आलोकते = ध्यान करता है
तस्य = उस भक्त को
निःसीम = सीमारहित
सूक्ति = सुन्दर उक्ति रूपी
रचना = अमृत
निर्भरस्य = रचनामृत के प्रवाह से युक्त

प्रसाद = आपकी कृपा के फलस्वरूप
प्रसरन्ति = प्रकट होती है।
मधुराः वाचः = मधुर आकर्षक कवित्वमय वाणी

अनुवाद

जो भक्त, सरस्वती के मुख्य बने हुए (क्लीं) नामक आपके मन्त्र-स्वरूप को विकसित चन्द्रमा की किरणों की भांति श्वेतता से युक्त शिर पर ध्यान करता है, उस भक्त को सीमा-रहित सुन्दर उक्ति रूपी रचनामृत के प्रवाह से युक्त आपकी कृपा के फल-स्वरूप मधुर आकर्षक कवित्वमय वाणी प्रकट होती है।। १२।।

सिन्दूरपांसुपटलच्छुरितामिव द्यां
त्वत्तेजसा जतुरसस्नपितामिवोर्वीम्।
यः पश्यति क्षणमपि त्रिपुरे ! विहाय
व्रीडां मृडानि ! सुदृशस्तमनुद्रवन्ति ।। १३।।

पदच्छेद अन्वय सहित

सिन्दूर पांसु पटल छुरितां इव द्यां
त्वत् तेजसा जतु रस स्नपितां इव उर्वीम्।
यः पश्यति क्षणम् अपि त्रिपुरे ! विहाय
व्रीडां मृडानि ! सुदृशः तम् अनुद्रवन्ति ।। १३।।

यः त्वत्तेजसा सिन्दूर-पांसु-पटल-छुरिताम् इव द्यां (तथा) जतु-रस-स्नपिताम् इव ऊर्वीम् क्षणम् अपि पश्यति, हे त्रिपुरे ! तं सुदृशः व्रीडां विहाय अनुद्रवन्ति ।। १३।।

शब्दार्थ

यः = जो भक्त
हे त्रिपुरे = हे त्रिपुरा देवी !
त्वत् तेजसा = आपके तेज से
द्यां = आकाश को
सिन्दूर = सिन्दूर के
पांसु = रंग से
पटल = समूह से
छुरितां = रंगा हुआ
इव = जैसा तथा
जतुरस = लाक्षारस से
स्नपितां = लाल बनी हुई
इव = जैसी
ऊर्वीं = पृथ्वी को
क्षणमपि = क्षणमात्र के लिए भी
पश्यति = देखता है
तं = उसे

सुदृशः = इन्द्रिय वृत्तियां
व्रीडां = लज्जा को
विहाय = छोड़कर
अनुद्रवन्ति = पीछे-पीछे दौड़ती हैं।

अनुवाद

हे त्रिपुरा देवी ! जो भक्त आपके तेज से आकाश को सिन्दूर के रंग से रंगे हुए तथा लाक्ष-रस से लाल बनी हुई पृथ्वी को क्षणमात्र के लिए भी ध्यान करके देखता है, उसे इन्द्रिय-वृत्तियां लज्जा को त्याग कर अर्थात् बिना किसी रुकावट से पीछे-पीछे दौड़ती हैं अर्थात् पूर्ण रूप से स्ववशवर्ती बन जाती हैं।। १३।।

मातर्मुहूर्तमपि यः स्मरति स्वरूपं
लाक्षारस प्रसरतन्तुनिभं भवत्याः।
ध्यायन्त्यनन्यमनसस्तमनङ्गतप्ताः
प्रद्युम्नसीम्नि सुभगत्वगुणं तरुण्यः।। १४।।

पदच्छेद अन्वय सहित

मातः ! मुहूर्तम् अपि यः स्मरति स्वरूपं
लाक्षारस प्रसर तन्तुनिभं भवत्याः।
ध्यायन्ति अनन्यमनसः तं अनङ्ग तप्ताः
प्रद्युम्न सीम्नि सुभगत्वगुणं तरुण्यः।। १४।।

मातः ! यः भवत्याः स्वरूपं लाक्षा-रस प्रसर-तन्तुनिभं मुहूर्तमपि स्मरति, तं अनङ्गतप्ताः तरुण्यः प्रद्युम्न सीम्नि सुभगत्वगुणं अनन्य मनसः ध्यायन्ति।।

शब्दार्थ

मातः = हे माता !
यः = जो भक्त
भवत्याः = आपके
स्वरूपं = स्वरूप का ध्यान
लाक्षारस प्रसर तन्तुनिभं = लाक्षारस से प्रसारित हुए (निकले हुए) सूक्ष्म तार के समान
मुहूर्तमपि = एक मुहूर्त के लिए भी
स्मरति = करता है (ध्यान का विमर्श करता है)
तं = उसे
अनङ्गतप्ताः=कामदेव से पीड़ित बनी हुई
तरुण्यः = युवतियां
प्रद्युम्न = कामदेव के
सीम्नि = स्थान पर अर्थात् कामदेव की नाईं उसे अत्यन्त सुन्दर मानकर
अनन्यमनसः = एकाग्रता से
सुभगत्वगुणं(तं) = उस सुन्दर गुणों वाले (भक्त) का
ध्यायन्ति = ध्यान करती हैं।

अनुवाद

हे माता ! जो भक्त एक मुहूर्त के लिए भी आपके स्वरूप का ध्यान, प्रसारित हुए लाक्षारस के समान करता है; अर्थात् आपके स्वरूप का ध्यान परिपूर्ण प्रकाशरूपता से संयुक्त बना हुआ करता है, उसे कामदेव से पीड़ित बनी हुई युवतियां, अर्थात् मानसिक संकल्प-विकल्पों से संक्षुभित बनी हुई इन्द्रियां अपनी चञ्चलता को छोड़ कर कामदेव की नाईं अत्यन्त सुन्दर मानकर एकाग्रता से ध्यान करती हैं, अर्थात् उसकी सभी इन्द्रियां सदा के लिए उसके वशवर्ती बन जाती हैं।। १४।।

विशेष– मुहूर्तं - दो घटिकायें अर्थात् एक घटिका २४ मिनट की होती है। ४८ मिनटों का समय एक मुहूर्त होता है। सुषुम्णा की मूलाधार से मणिपूर चक्र की ओर सरकने की क्रिया 'लाक्षारस प्रसर तन्तुनिभं' से अभिप्रेत है।

योऽयं चकास्ति गगनार्णवरत्नमिन्दु-
र्योऽयं सुरासुरगुरुः पुरुषः पुराणः।
यद्वाममर्धमिदमन्धकसूदनस्य
देवि ! त्वमेव तदिति प्रतिपादयन्ति ।। १५।।

पदच्छेद अन्वय सहित

यः अयं चकास्ति गगन अर्णव रत्नं इन्दुः
यः अयं सुर असुर गुरुः पुरुषः पुराणः।
यत् वामं अर्धं इदं अन्धकसूदनस्य
देवि ! त्वम् एव तत् इति प्रतिपादयन्ति ।। १५।।

हे देवि ! योऽयं गगनार्णवरत्नमिन्दुः चकास्ति, योऽयं सुरासुरगुरुः पुराणः पुरुष (अस्ति), यत् (च) इदं अन्धकसूदनस्य वामम् अर्धम् अस्ति। 'तत् त्रितयं त्वमेव'–इति (ज्ञानिनः) प्रतिपादयन्ति ।। १५।।

शब्दार्थ

हे देवि ! = हे देवी !
योऽयं = जो यह
गगनार्णवरत्नं इन्दुः = आकाशरूपी सागर का रत्न बना हुआ चन्द्रमा
चकास्ति = चमक रहा है
योऽयं = जो यह

सुर-असुर-गुरुः = देवताओं तथा असुरों के गुरु
पुराणः = पुरातन (प्राचीन)
पुरुषः = पुरुष नारायण हैं
यत् = जो
(च = और)
इदं = यह
अन्धकसूदनस्य = अन्धकासुर-राक्षस को मारने वाले महादेव जी की
वामं = सुन्दर
अर्धं = अर्धाङ्गिनी पार्वती जी
अस्ति = हैं
तत् त्रितयं त्वमेव = ये सभी तीनों आपका ही स्वरूप है
इति = इस प्रकार
(ज्ञानिनः = ज्ञानीजन)
प्रतिपादयन्ति = सिद्ध करते हैं।

अनुवाद

हे देवी ! आकाशरूपी समुद्र का रत्न बना हुआ जो यह चन्द्रमा चमक रहा है, जो यह देवताओं तथा असुरों के गुरु पुरातन पुरुष भगवान् नारायण हैं और जो अन्धकासुर राक्षस को मारने वाले महादेव जी की सुन्दर (अर्धांगिनी) पार्वती जी हैं। "ये सभी तीनों आपका ही स्वरूप हैं"–इस प्रकार ज्ञानीजन सिद्ध करते हैं।। १५।।

विशेष– इस श्लोक की प्रथम पंक्ति, दूसरी पंक्ति और तीसरी पंक्ति में आणवोपाय, शाक्तोपाय और शाम्भवोपाय की ओर क्रमशः संकेत किया गया है।

इच्छाऽनुरूपमनुरूपगुणप्रकर्षं
सङ्कर्षिणि ! त्वमनुसृत्य यदा बिभर्षि।
जायेत स त्रिभुवनैक गुरुस्तदानीं
देवः शिवोऽपि भुवनत्रयसूत्रधारः ।। १६।।

पदच्छेद अन्वय सहित

इच्छा अनुरूपं अनुरूप गुण प्रकर्षं
सङ्कर्षिणि ! त्वम् अनुसृत्य यदा बिभर्षि।
जायेत स त्रिभुवन एक गुरुः तदानीम्
देवः शिवः अपि भुवन-त्रय-सूत्रधारः ।। १६।।

हे संकर्षिणि! यदा त्वं (तं शिवं) इच्छानुरूप-अनुरूप-गुण-प्रकर्षं अनुसृत्य बिभर्षि, तदानीम् (एव) स शिवः अपि त्रिभुवन-एक-गुरुः भुवन-त्रय-सूत्रधारः देवः जायेत।। १६।।

शब्दार्थ

हे संकर्षिणि = हे शिव को अपनी ओर आकर्षित करने वाली देवी !
यदा = जब
त्वं = तू
(तं शिवं = उस शिव को)
इच्छानुरूपं = अपनी इच्छा के अनुरूप
गुणप्रकर्ष = अपने उत्कृष्टगुणों के सदृश
अनुसृत्य = परामर्श के बल से
बिभर्षि = बनाती है
तदानीं (एव) = उसी समय
स देवः = वह देवता शिव भी
त्रिभुवन एक गुरुः = तीन भुवनों का गुरु
भुवनत्रय सूत्रधारः = तीन भुवनों रूपी नाटक के सृजन और संहार करने में समर्थ सूत्रधार
जायेत = बन जाता है।

अनुवाद

हे शिव को अपनी ओर आकर्षित करने वाली देवी ! जब आप शिव को अपनी इच्छा के अनुरूप अपने उत्कृष्ट-गुणों के सदृश परामर्श के बल से बनाती हैं तो उसी समय वह भगवान् शिव भी तीन भुवनों का गुरु तथा तीन भुवनों के सृजन और संहार करने में समर्थ सूत्रधार अर्थात् त्रिभुवन-नाटक रचाने में समर्थ बन जाता है।। १६।।

विशेष– अनुसृत्य के स्थान पर अभिमृष्य भी पाठान्तर है जिसका आशय है स्वतन्त्र इच्छा के अनुसार अथवा स्वीकार करके।

अथवा जिस किसी व्यक्ति में आप अपनी अनुग्रह मयी इच्छा से अपनी शांभव-शक्ति का संचार करती हैं, वह भी भगवान् शंकर के सदृश त्रिलोकनाथ तथा जगत् की लीला रचाने में समर्थ सूत्रधार बन जाता है।

रुद्राणि ! विद्रुममयीं प्रतिमामिव त्वां
ये चिन्तयन्त्यरुणकान्तिमनन्यरूपाम्।
तानेत्य पक्ष्मलदृशः प्रसभं भजन्ते
कण्ठावसक्तमृदुबाहुलतास्तरुण्यः।। १७।।

पदच्छेद अन्वय सहित

रुद्राणि ! विद्रुममयीं प्रतिमां इव त्वां
ये चिन्तयन्ति अरुण कान्तिम् अनन्यरूपाम्।
तान् एत्य पक्ष्मलदृशः प्रसभं भजन्ते
कण्ठ अवसक्त मृदुबाहु लताः तरुण्यः ।। १७।।

हे रुद्राणि ! ये त्वाम् अनन्यरूपाम् अरुणकांर्ति विद्रुममयीम् इव प्रतिमां चिन्तयन्ति, पक्ष्मलदृशः (साधकाः) कण्ठ-अवसक्तमृदुबाहुलताः तरुण्यः तान् (साधकान्) एत्य प्रसभं भजन्ते ।। १७।।

शब्दार्थ

रुद्राणि = हे रुद्राणि !
ये = जो भक्त
त्वां = आपके
अनन्यरूपां = अलौकिक या अनुपम शोभावाले
अरुण कांतिम् = लालरंग से युक्त
विद्रुममयीं प्रतिमां इव = विद्रुम नामक मनका जैसी मूर्ति का
चिन्तयन्ति = ध्यान करते हैं
तानेत्य = ऐसे उपासकों के पास जाकर
कण्ठ-अवसक्त = ग्रीवा (गले) से लगाये हुए
मृदुबाहुलताः = कोमल बाहुलताओं वाली
पक्ष्मलदृशः = सुन्दर नेत्रों वाली
तरुण्यः = युवतियां
प्रसभं = निःसंकोच होकर (साधकों को)
भजन्ते = आलिंगन करती हैं, अर्थात् उनका सेवन करती हैं अथवा उनके अधीन रहती हैं।

अनुवाद

हे रुद्राणि ! जो भक्त 'विद्रुम' नामक मनके की भांति लाल रंग से युक्त बनी हुई एवं अनुपम प्रतिमा बनी हुई आपके स्वरूप का ध्यान करते हैं, ऐसे उपासकों के पास जाकर, उनके कण्ठ अर्थात् ग्रीवा में लगाये हुए कोमल बाहुलताओं वाली सुन्दर नेत्रों वाली युवतियां निःसंकोच होकर आलिंगन करती हैं।। १७।।

विशेषः- इस श्लोक में 'पक्ष्मल दृशः' शब्द में आध्यात्मिक दृष्टि से प्राणापान के अवधान की ओर संकेत है, 'कण्ठावसक्त' शब्द में लम्बिका चतुष्पथ की ओर संकेत है, 'बाहुलता' शब्द में चित्प्रकाशमय प्रकाश और विमर्श की ओर संकेत है तथा 'तरुण्यः' शब्द में अन्तः प्रमातृपद में ठहरी हुई करणेश्वरी-वर्ग की ओर संकेत है। भाव यह है कि साधक जब पूर्ण-प्रकाशमयी परापारमेश्वरी का अनुसन्धान करता है तो फिर उस साधक की इन्द्रिय-वृत्तियां अन्तर्मुख होकर उस साधक के प्राणापान को लम्बिका चतुष्पथ पर ले जाती हैं और फिर वह साधक उस शक्ति चक्र के बाहुपाश में आकर पूर्णरूप से स्वरूप निष्ठ बनता है।

त्वद्रूपमुल्लसितदाडिम पुष्परक्त-
मुद्भावयेन्मदनदैवतमक्षरं यः।
तं रूपहीनमपि मन्मथनिर्विशेष-
मालोकयन्त्युरुनितम्बतटास्तरुण्यः।। १८।।

पदच्छेद अन्वय सहित

त्वत् रूपं उल्लसित दाडिम पुष्प रक्तम्
उद्भावयेत् मदनदैवतम् अक्षरं यः।
तं रूपहीनम् अपि मन्मथनिर्विशेषम्
आलोकयन्ति उरुनितम्ब तटाः तरुण्यः।। १८।।

'हे मातः' यः उल्लसित-दाडिम-पुष्प रक्तम् मदन - दैवतम् अक्षरं त्वद्रूपम् उद्भावयेत् रूपहीनमपि तं उरु-नितम्ब-तटाः-तरुण्यः मन्मथनिर्विशेषम् आलोकयन्ति ।। १८।।

शब्दार्थ

हे मातः = हे माता !
यः = जो साधक
उल्लसित = प्रफुल्लित (खिले हुए)
दाडिम = अनार के
पुष्प = फूल की तरह
रक्त = लालिमा से युक्त, तथा
अक्षरं = अविनश्वर
मदनदैवतं = कामराजबीजमय
त्वद्रूपं = आपके स्वरूप को
उद्भावयेत् = स्वात्माभेदरूपता से ध्यान करता है (उसके साथ एक होकर भजता है।)
रूपहीनं अपि तं = यदि ऐसा साधक रूप और लावण्य (सुन्दरता) से रहित भी हो, तो भी
उरु नितम्ब-तटाः = बड़े-बड़े सुन्दर कटि तटों वाली
तरुण्यः = युवतियां, (स्वरूप समावेश पूर्ण ज्ञान क्रिया शक्ति से युक्त होकर वह साधक)
मन्मथनिर्विशेषं = कामदेव के समान उन साधकों (सुन्दर और आकर्षक)
अवलोकयन्ति = समझती हैं। अर्थात् मन्थानभैरव विकास समाधि को वह भक्त प्राप्त करता है।

अनुवाद

हे जगन्माता ! जो साधक प्रफुल्लित अनार के फूल की तरह लालिमा से युक्त एवं अविनश्वर कामराजबीजमय आपके स्वरूप को स्वात्माभेदरूपता से ध्यान करता है, ऐसा साधक लावण्य तथा रूप से रहित भी हो तथापि बड़े-बड़े सुन्दर कटितटों वाली युवतियां उसे मन्मथ अर्थात् कामदेव के समान ही अत्यन्त सुन्दर समझती हैं इस प्रकार उसे बड़े प्रेम से अपनाती हैं।। १८।।

विशेषः- इस श्लोक में आध्यात्मिक दृष्टि से (रूपहीनमपि) शब्द में मित प्रमातृ दशा के त्यागने की ओर संकेत है, (मन्मथ निर्विशेषम्) शब्द में मन्थान-भैरव-समापत्ति की ओर संकेत है और (उरुनितम्बतटाः) शब्द में स्वरूप समावेशपूर्ण ज्ञान क्रिया की ओर संकेत है। भाव यह है कि साधक जब अत्यन्तप्रकाश पूर्ण तथा स्वातन्त्र्यपूर्ण परापारमेश्वरी का अनुसंधान करता है तो फिर उस साधक की मितप्रमातृ दशा नष्ट जो जाती है और वह परप्रमातृ भाव में समाविष्ट होता है, उसके फलस्वरूप वह साधक पूर्ण ज्ञान क्रिया शक्ति से युक्त होकर मन्थान भैरव-समापत्ति (अर्थात् विकास-समाधि) को प्राप्त करता है।

ध्याताऽसि हैमवति ! येन हिमांशुरश्मि-
मालाऽमलद्युतिरऽकल्मष मानसेन।
तस्याविलम्बमनवद्यमनल्पकल्प-
मल्पैर्दिनैः सृजसि सुन्दरि ! वाग्विलासम् ।। १९।।

पदच्छेद अन्वय सहित

ध्याता असि हैमवति ! येन हिम अंशु रश्मि-
माला अमल द्युतिः अकल्मष मानसेन।
तस्य अविलम्बम् अनवद्यम् अनल्प कल्पम्
अल्पैः दिनैः सृजसि सुन्दरि ! वाक् विलासम् ।। १९।।

हैमवति ! हिमांशु-रश्मि-माला-अमल-द्युतिः (त्वं) येन अकल्मष मानसेन ध्याता असि, (हे) सुन्दरि ! तस्य अविलम्बम् अनवद्यम् अनन्तकल्पम् वाग्विलासम् अल्पैः दिनैः (त्वं) सृजसि ।। १९।।

शब्दार्थ

हैमवति ! = हे हिमालय की पुत्री !
सुन्दरि = हे सुन्दरी !
हिमांशुरश्मिमाला = चन्द्रमा की किरणावलि (किरणों की कतार) की भांति
अमलद्युतिः = निर्मल प्रकाश से युक्त
(त्वं = आपके स्वरूपका)
ध्यातासि = ध्यान किया हो
येन = जिस साधक ने
अकल्मष मानसेन = पापहीन मन से अर्थात् निर्विकल्प मन से
तस्य = उसे
अल्पैः दिनैः = आप थोड़े ही दिनों में
वाग्विलासं = कविता का प्रसर
(त्वं = तू)
सृजसि = सृजन (उत्पन्न) करती हो, जो कविता का प्रसर

अनवद्यं = श्रुतिकटु (कानों को भद्दा लगने वाला) आदि दोषों से रहित हो तथा प्रसाद आदि गुणों से संपन्न हो

अनल्पकल्पं = धारावाहिकरूप से (और)

अविलम्बं = अस्खलित (रुकावट के बिना) हो।

अनुवाद

हे हिमालय की पुत्री ! हे सुन्दरी ! जिस भक्त ने चन्द्रमा की किरणावलि की भांति निर्मल प्रकाश से युक्त आपके स्वरूप का ध्यान निष्पाप मन से अर्थात् निर्विकल्प मन से किया हो, उसे आप थोड़े ही दिनों में कविता का प्रसर सृजन करती हैं, जो कविता का प्रसर श्रुति-कटु इत्यादि दोषों से रहित तथा प्रसाद आदि गुणों से संपन्न एवं अस्खलित और धारावाहिक रूप से प्रसरणशील होता है।। १९।।

विशेष—अनल्पकल्पं के स्थान पर अनन्तकल्पं भी पाठान्तर है। परापारमेश्वरी की अनुग्रहमयी लीला दिखाते हुए तंत्रालोक में कहा भी है—

कवित्वं पञ्चमं ज्ञेयं सालंकारं मनोहरम्। अर्थात् परासंविति देवी के अनुग्रह-शक्ति का पांचवां लक्षण कवित्व-शक्ति की प्राप्ति है, जो कविता मनोहर, सुन्दर तथा दोषरहित होती है।

आधारमारुतनिरोधवशेन येषां
सिन्दूररंजितसरोजगुणनुकारि।
दीप्तं हृदि स्फुरति देवि ! वपुस्त्वदीयं
ध्यायन्ति तानिह समीहितसिद्धसाध्याः ।। २०।।

पदच्छेद अन्वय सहित

आधार मारुत निरोध वशेन येषां
सिन्दूर रञ्जित सरोज गुण अनुकारि।
दीप्तं हृदि स्फुरति देवि ! वपुः त्वदीयं
ध्यायन्ति तान् इह समीहित सिद्ध साध्याः ।। २०।।

हे देवि ! आधार-मारुत-निरोध-वशेन सिन्दूर-रञ्जित-गुण-अनुकारि त्वदीयं दीप्तं वपुः येषां हृदि स्फुरति तान् इह समीहित-सिद्ध-साध्याः ध्यायन्ति ।। २०।।

शब्दार्थ

हे देवि ! = हे देवी !

आधार = मूलाधार चक्र में

मारुत = प्राणापान रूपी वायु के

निरोधवशेन = सुषुम्ना मार्ग में लय करने के फलस्वरूप

येषां हृदि = जिन भक्तों के हृदय में

सिन्दूर रञ्जित = सिन्दूर से रंगे हुए
सरोजगुण = कमल के फूल
अनुकारि = के समान
त्वदीयं दीप्तं वपुः = आपका प्रकाशमानस्वरूप
स्फुरति = विकसित होता है
तान् = उन भक्तों की
इह = इस संसार में
समीहित = चाहे हुए
सिद्ध = सिद्ध पुरुष
साध्याः = तथा साध्यदेवता
ध्यायन्ति = ध्यान करते हैं।

अनुवाद

हे देवी ! मूलाधार-चक्र में प्राणापान रूपी वायु के, सुषुम्ना मार्ग में लय करने के फलस्वरूप जिन भक्तों के हृदय में सिन्दूर से रंगे हुए कमल-पुष्प के समान अत्यन्त प्रकाशमान् आपका स्वरूप विकसित होता है उन भक्तों की अभीष्ट प्राप्ति के लिए सिद्ध-पुरुष तथा साध्य-देवता (सदैव) ध्यान करते रहते हैं, अर्थात् उन भक्तों को वरदान देने में तत्पर बने रहते हैं।। २०।।

त्वामैन्दवीमिव कलामनुभालदेश-
मुद्भासिताम्बरतलामवलोकयन्तः।
सद्योभवानि ! सुधियः कवयो भवन्ति
त्वं भावनाऽऽहितधियां कुलकामधेनुः।। २१।।

पदच्छेद अन्वय सहित

त्वाम् ऐन्दवीम् इव कलाम् अनुभालदेशम्
उद्भासित अम्बरतलाम् अवलोकयन्तः।
सद्यः भवानि ! सुधियः कवयः भवन्ति
त्वम् भावना आहितधियां कुलकामधेनुः।। २१।।

हे भवानि ! उद्भासित-अम्बरतलाम् ऐन्दवीम् इव कलां त्वाम् अनुभालदेशम् अवलोकयन्तः सुधियः सद्यः कवयः भवन्ति। त्वं (हि) भावना-आहित-धियां कुलकाम-धेनुः (भवति) ।। २१।।

शब्दार्थ

हे भवानिः = हे पार्वती !
उद्भासित = उत्तेजित करने वाली
अम्बरतलां = चिदाकाश स्वरूप को
ऐन्दवीम् कलां इव = चन्द्रकला के सदृश
त्वां = आपके स्वरूप का
अनुभाल देशं = अपने मस्तक के स्थान पर

अवलोकयन्तः = साक्षात्कार करते हैं और फिर

सुधियः सद्यः कवयः भवन्ति = ज्ञानी बुद्धिमान् जन शीघ्र ही कवित्व शक्ति सम्पन्न होते हैं

त्वं हि = क्योंकि आप

भावना आहितधियां = समाधि में आरूढ़ बुद्धिमानों के लिए आप ही

कुलकामधेनुः भवति = समस्त कामनाओं के देने में समर्थ हैं।

अनुवाद

हे जगन्माता ! चिदाकाश-स्वरूप को उत्तेजित करने वाली चन्द्र-कला के सदृश आपके स्वरूप का जो अपने मस्तक के स्थान पर साक्षात्कार करते हैं, वे साक्षात्कार करने के अनन्तर ही कवित्व-शक्ति-संपन्न अर्थात् सर्वज्ञ आदि गुणों से संयुक्त बनते हैं, यतः समाधि में आरूढ़ प्रज्ञा वालों के लिए आप ही समस्त कामनाओं को देने में समर्थ हैं।। २१।।

त्वां व्यापिनीति समना इति कुण्डलीति
त्वां कामिनीति कमलेति कलावतीति।
त्वां मालिनीति ललितेत्यपराजितेति
देवि ! स्तुवन्ति विजयेति जयेत्युमेति ।। २२।।

पदच्छेद अन्वय सहित

त्वां व्यापिनी इति समना इति कुण्डली इति
त्वां कामिनी इति कमला इति कलावती इति।
त्वां मालिनी इति ललिता इति अपराजिता इति
देवि ! स्तुवन्ति विजया इति जया इति उमा इति ।। २२।।

हे देवि ! (सद्भक्ताः) त्वां व्यापिनीति, समना इति, कुण्डलीति (स्तुवन्ति), त्वां कामिनीति, कमलेति, कलावतीति (स्तुवन्ति), त्वां (च) मालिनीति, ललितेति, अपराजितेति, विजयेति, जयेति, उमेति स्तुवन्ति।। २२।।

शब्दार्थ

हे देवि ! = हे माता !

(सद्भक्ताः = अच्छे भक्त)

त्वां = तुझे

व्यापिनी इति = सब में व्यापक ऐसे

समना इति = निर्मल चित्तरूप अन्तःकरणों वाली ऐसे

कुण्डली इति = कुण्डलिनी शक्तिरूपा ऐसे

(स्तुवन्ति = स्तुति करते हैं)

त्वं = तुझे

कामिनी इति = इच्छा शक्तिरूपा ऐसे

कमला इति = कमलरूप संकोच विकासमयी ऐसे
कलावती इति = 'अ' से 'क्ष' वर्ण तक वर्णरूपी कलाओं से युक्त ऐसे
(स्तुवन्ति = स्तुति करते हैं)
त्वां च = और तुझे
मालिनी इति = 'णकार' से 'फकार' तक वर्णमाला देवी ऐसे
ललिता इति = सुन्दर रूपवाली ऐसे
अपराजिता इति = सर्वोत्कृष्ट ऐसे
विजया इति = सब पर जय पाने वाली ऐसे
जया इति = जय प्रदान करने वाली ऐसे
उमा इति = उमा ऐसे
स्तुवन्ति = स्तुति करते हैं।

अनुवाद

हे देवी ! आप व्यापिनी-शक्ति हैं, समना हैं, कुण्डलिनी-भगवती हैं, आप कामिनी अर्थात् कामेश्वरी रूपा हैं, आप लक्ष्मी हैं तथा स्वातन्त्र्य-शक्ति हैं आप मालिनी, ललिता, अपराजिता, विजया, जया और उमा हैं—इस प्रकार सद्भक्त आपकी स्तुति करते हैं।। २२।।

विशेष—शिव प्रणव 'हूँ' है, शाक्त प्रणव 'ह्रीं' है और वैदिक प्रणव 'ओं' है।

शिव-प्रणव की दसवीं मात्रा को 'व्यापिनी' कहते हैं और ग्यारहवीं मात्रा को 'समना' का नामकरण दिया गया है। 'कुण्डली' शब्द में ऊर्ध्व कुण्डलिनी धाम की ओर संकेत है। कामिनी शब्द में सारी कामनाओं को देने वाली 'कामेश्वरी' भगवती की ओर संकेत है। 'कमला' उस शक्ति को कहते हैं जिस शक्ति ने अपने जन्म से दक्ष प्रजा पति को शोभित किया था। 'कलावती' भैरवनाथ की स्वातन्त्र्य शक्ति की ओर संकेत है। 'मालिनी' त्रिकसंप्रदाय में 'णकार' से 'फकार' तक वर्णमाला देवी मालिनी कही जाती है। चिदानन्दरसपूर्ण होने से पारमेश्वरी शक्ति 'ललिता' कही जाती है। शेष नाम सुगम ही है।

ये चिन्तयन्त्यरुणमण्डलमध्यवर्ति
रूपं तवाम्ब ! नवयावकपङ्कपिङ्गम्।
तेषां सदैव कुसुमायुधबाणभिन्न
वक्षस्थला मृगदृशो वशगा भवन्ति।। २३।।

पदच्छेद अन्वय सहित

ये चिन्तयन्ति अरुण मण्डल मध्यवर्ति
रूपं तव अम्ब ! नव यावक पङ्क पिङ्गम्।
तेषां सदा एव कुसुम आयुध बाण भिन्न
वक्ष स्थला मृगदृशः वशगा भवन्ति।। २३।।

हे अम्ब ! ये अरुण-मण्डल-मध्य-वर्ति तव रूपं नव-यावक पङ्क-पिङ्गं चिन्तयन्ति, कुसुमायुध-बाण-भिन्न वक्षःस्थला मृगदृशः तेषां वशगा सदैव भवन्ति ॥ २३॥

शब्दार्थ

हे अम्ब ! = हे माता !
ये = जो भक्त
अरुणमण्डलमध्य = सूर्य मण्डल में
वर्ति = ठहरे हुए तथा
नव = नवीन
यावक = लाक्षारस के समान
पिङ्गम् = लालिमा से युक्त
तवरूपं = आपके स्वरूप का
चिन्तयन्ति = ध्यान करते हैं
तेषां = उन्हें
कुसुमायुध = कामदेव के
बाण = बाणों से
भिन्न = बींधे हुए
वक्षःस्थला = हृदय वाली
मृगदृशः = सुन्दर युवतियां
सदैव = सदा के लिए
वशगाः = वशवर्तिनी
भवन्ति = बनती हैं।

अनुवाद

हे माता ! जो भक्त सूर्य-मण्डल में ठहरे हुए तथा नवीन लाक्षा-रस के समान लालिमा से युक्त आपके स्वरूप का ध्यान करते हैं, उन्हें कामदेव के बाणों से विद्ध-हृदय वाली सुन्दर-युवतियां सदा के लिए वश-वर्त्तिनी बनती हैं॥ २३॥

विशेषः- इस श्लोक में 'अरुण-मण्डल' शब्द में प्राणार्ककुण्डलिनी की ओर संकेत है, 'पिङ्' शब्द में महा प्रकाशरूपता की ओर संकेत है। भाव यह है कि पारमर्थिक दृष्टि से पारमेश्वरी शक्ति-महा प्रकाश संपन्ना प्राणार्क कुण्डलिनी ही कही जाती है। 'कामदेव' शब्द में इच्छा-स्वातंत्र्य की ओर संकेत है। भाव यह है कि पारमेश्वरी त्रिपुर सुन्दरी का साक्षात्कार करने पर साधक की सभी इन्द्रियां परिपूर्ण-इच्छा-स्वातंत्र्य से बिंधी जाती हैं और उसके फलस्वरूप वे इन्द्रियां अपनी विषय-वृत्तियों को तिलांजलि देकर सदा के लिए परिपूर्ण इच्छा-स्वातन्त्र्य में तल्लीन हो जाती हैं।

उत्तप्तहेमरुचिरे त्रिपुरे ! पुनीहि
चेतश्चिरन्तनमघौघवनं लुनीहि।
कारागृहे निगडबन्धनपीडितस्य
त्वत्संस्मृतौ झटिति मे निगडास्त्रुटन्तु॥ २४॥

पदच्छेद अन्वय सहित

उत्तप्त हेम रुचिरे त्रिपुरे ! पुनीहि
चेतः चिरन्तनम् अघौघ वनं लुनीहि।

कारागृहे निगडबन्धन पीडितस्य
त्वत् संस्मृतौ झटिति मे निगडाः त्रुटन्तु ॥ २४॥

हे उत्तप्तहेमरुचिरे ! हे त्रिपुरे ! (मम) चेतः पुनीहि। चिरन्तनम् अघौघवनं लुनीहि। कारागृहे निगडबन्धन-पीडितस्य मे त्वत्संस्मृतौ निगडाः झटिति त्रुटन्तु ॥ २४॥

शब्दार्थ

उत्तप्त हेम रुचिरे ! = हे तपाये हुए सोने की भांति (जाज्वल्यमान) दीप्ति वाली देवी
त्रिपुरे ! = हे शिव की अभिन्न शक्ति !
(मम = मेरे)
चेतः = मन को
पुनीहि = पवित्र कीजिये ।
चिरन्तनं = अनन्त काल से उपार्जित
अघ-ओघवनं = मेरे विषय-वासनात्मक पापरूपी जंगल
लुनीहि = काट दीजिये।(इसके अतिरिक्त)
कारागृहे = संसाररूपी बन्दीगृह (जेलखाने) में फंसे हुए
निगडबन्धन = विशेष अहं ममात्मक जंजीरों से
पीडितस्य = जकड़े हुए,
मे = मुझको
त्वत्संस्मृतौ = आपका ध्यान अच्छी-तरह करने से
निगडाः = ये सभी बन्धन (जंजीरें)
झटिति = तत्क्षण
त्रुटन्तु = कट जायें और मैं पारमार्थिक मोक्ष-धाम को प्राप्त करूँ।

अनुवाद

हे तपाये हुए स्वर्ण की भांति (जाज्वल्यमान) दीप्ति वाली देवी ! मेरे मन को पवित्र कीजिये अर्थात् आप अपनी उपासना करने के योग्य बना दीजिए। अनन्त काल से उपार्जित मेरे विषयवासनात्मक पाप रूपी जंगल काट दीजिए। इसके अतिरिक्त संसार रूपी बन्दीगृह (जेलखाने) में फंसे हुए और इसीलिए विशेषपूर्वक (अहं ममात्मक जञ्जीरों से) जकड़े हुए मुझको आप का सम्यक् ध्यान करने से ये सभी बन्धन कट जायें और मैं पारमार्थिक मोक्ष-धाम को प्राप्त करूं।। २४।।

विशेष–'अघौघवनं' से कार्ममल की ओर संकेत है। कार्ममल से उत्पन्न वासनात्मक संस्कार ही जन्म जन्मान्तरों में अनुसरण करके जीव को निगड बन्धनों से जकड़ते हैं।

शर्वाणि ! सर्वजनवन्दित पादपद्मे !
पद्मच्छदच्छविविडम्बितनेत्रलक्ष्मि !।
निष्पापमूर्ति जनमानसराजहंसि !
हंसि त्वमापदमनेकविधां जनस्य ॥ २५॥

पदच्छेद अन्वय सहित

शर्वाणि ! सर्वजन वन्दित पाद पद्मे।
पद्म चछद च्छवि विडम्बित नेत्र लक्ष्मि !
निष्पाप मूर्ति जन मानस राजहंसि !
हंसि त्वम् आपदम् अनेक विधां जनस्य ।। २५।।

हे शर्वाणि ! हे सर्वजनवन्दित पाद पद्मे ! हे पद्मच्छदच्छवि विडम्बितनेत्रलक्ष्मि ! हे निष्पाप मूर्ति जनमानसराजहंसि ! त्वम् अनेक विधाम् आपदं जनस्य हंसि।। २५।।

शब्दार्थ

हे शर्वाणि = हे अज्ञानरूपी अन्धकार को नष्ट करने वाली, हे

सर्वजनवन्दित पाद पद्मे = जन्म मृत्यु से पीड़ित सभी प्राणियों द्वारा वन्दित (प्रणाम किये गये) चरणकमलों वाली हे देवि !

हे पद्म-च्छद-विडम्बित-नेत्रलक्ष्मि = हे कमल पत्रों की शोभा के समान नेत्रों की कान्ति से युक्त बनी हुई माता !

हे निष्पाप मूर्ति-जन-मानस-राजहंसि = हे संकल्प-विकल्प रूपी मलिनता से रहित बने हुए साधकों के मनरूपी मानस सरोवर की राजहंसिनी !

त्वं = आप

जनस्य = अपने भक्तों पर आई हुई

अनेकविधां = नाना प्रकार की

आपदं = आपदाओं को भी

हंसि = नष्ट करती हैं।

अनुवाद

हे अज्ञान रूपी अन्धकार को नष्ट करने वाली ! जन्म-मृत्यु से पीड़ित सभी प्राणियों के द्वारा वन्दन की गई चरण-कमलोंवाली हे देवी ! हे कमल-पत्रों की शोभा के समान नेत्रों की कान्ति युक्त बनी हुई माता ! हे संकल्प-विकल्प-रूपी मालिन्य से रहित करने वाली राजहंसिनी ! आप अपने भक्तों पर आई हुई आपदाओं को नष्ट करती हैं, अतः मेरी आपदाओं का भी नाश कीजिए।। २५।।

त्वत्पादपङ्कजरजः प्रणिपात पूतैः
पुण्यैरनल्पमतिभिः कृतिभिः कवीन्द्रैः।
क्षीरक्षपाकरदुकूलहिमावदाता
कैरप्यवापि भुवनत्रितयेऽपि कीर्तिः।। २६।।

पदच्छेद अन्वय सहित

त्वत् पाद पङ्कजरजः प्रणिपात पूतैः
पुण्यैः अनल्प मतिभिः कृतिभिः कवि-इन्द्रैः।
क्षीर क्षपाकर दुकूल हिम अवदाता
कैः अपि अवापि भुवन त्रितये अपि कीर्तिः।। २६।।

त्वत्पादपंकजरजः प्रणिपात पूतैः पुण्यैः अनल्पमतिभिः कृतिभिः कैरपि कवीन्द्रैः भुवनत्रितये अपि क्षीर-क्षपाकर-दुकूल-हिम अवदाता कीर्तिः अवापि ।। २६।।

शब्दार्थ

हे देवी !, **त्वत्** = आपके
पाद पंकज = चरणकमलों की
रजः = धूलि को
प्रणिपात = प्रणाम करने के फलस्वरूप
पूतैः = पवित्र बने हुए
पुण्यैः = पुण्यवान् (पुण्यात्मा)
अनल्पमतिभिः = प्रकांड विद्वान् (बड़ी बुद्धि वाले)
कृतिभिः = कृतकृत्य
कैः अपि = किन्ही विरले अलौकिक
कवीन्द्रैः = महान् कवियों ने
भुवनत्रितये = तीनों लोकों में
अपि = भी
क्षीर = दूध
क्षपाकर = चन्द्रमा
दुकूल = रेशमी वस्त्र 'तथा'
हिम = बर्फ के समान
अवपात = सफेद अर्थात् कलंक रहित
कीर्तिः = यश को
अवापि = प्राप्त किया होता है।

अनुवाद

हे देवी ! आपके चरण-कमलों की धूलि को प्रणाम करने के फलस्वरूप पवित्र बने हुए, पुण्यात्मा, प्रकांड विद्वान्, कृतकृत्य किन्हीं अलौकिक महान् कवियों ने तीनों लोकों में ऐसी त्रिलोक-व्यापि कीर्ति को प्राप्त किया होता है, जो दूध, चन्द्रमा, रेशमी वस्त्र तथा बर्फ के समान श्वेत अर्थात् कलंक-रहित होती है।। २६।।

विशेषः- भाव यह है कि आपकी भक्ति करने वाले भक्त-जन आपके स्वरूप में समावेश प्राप्त करने से अनुपम विश्व-व्यापि कीर्ति प्राप्त करते हैं।।

त्वद्रूपैकनिरूपणप्रणयिताबन्धो दृशोस्त्वद्गुण-
ग्रामाकर्णनरागिता श्रवणयोस्त्वत्संस्मृतिश्चेतसि।

त्वत्पादार्चनचातुरी करयुगे त्वत्कीर्तनं वाचि मे
कुत्रापि त्वदुपासनव्यसनिता मे देवि ! मा शाम्यतु।। २७।।

पदच्छेद अन्वय सहित

त्वत् रूप एक निरूपण प्रणयिता बन्धः दृशः त्वत् गुण-
ग्राम आकर्णन रागिता श्रवणयोः त्वत् संस्मृतिः चेतसि।
त्वत् पाद अर्चन चातुरी करयुगे त्वत् कीर्तनं वाचि मे
कुत्र अपि त्वत् उपासन व्यसनिता मे देवि ! मा शाम्यतु।। २७।।

देवि ! मे द्दशोः त्वद्रूप-एक-निरूपण-प्रणयिता-बन्धः (भूयात्), मे श्रवणयोः त्वद गुण ग्राम आकर्णन रागिता भक्तु त्वत्संस्मृतिः मे चेतसि भूयात् त्वत्पाद अर्चन चातुरी करयुगे-(भवतु), (एवं) मे वाचि त्वत्कीर्तनं (भूयात्) (इत्येवं) मे त्वदुपासन- व्यसनिता कुत्रापि मा शाम्यतु।। २७।।

शब्दार्थ

देवि ! = हे देवी !
मे द्दशोः = मेरे नेत्रों में
एक = केवल
त्वतरूप = आपके रूप को
निरूपण-प्रणयिता = निर्णय करने के प्रेमभाव का निरन्तर
बन्धः = चाव (लगाव) भूयात् बना रहे
मे = मेरे
श्रवणयोः = कानों में
त्वद्गुण ग्राम = आपके गुणानुवाद
आकर्णन = सुनने में ही
रागिता = राग
(भूयात् = बना रहे)
त्वत् = आपका ही
संस्मृतिः = स्मरण
मे = मेरे
चेतसि = मन में
(भूयात् = बना रहे)
त्वत् = आपके
पाद = चरणों की
अर्चन = पूजा की
चातुरी = चतुरता प्राप्त हो
मे करयुगे = मेरे दोनों हाथों में
मे = मेरी
वाचि = वाणी
त्वत् = आपकी ही
कीर्तनं = गुण कीर्तना करती रहे।
इत्येवं = इस रीति से
मे = मेरी इन्द्रियों को
त्वदुपासन व्यसनिता = आपकी उपासना करने की आदत
कुत्रापि = कभी भी
मा शाम्यतु = कम न हो अर्थात् सदा बनी रहे।।

अनुवाद

हे देवी ! मेरे नेत्रों में केवल-मात्र आपके रूप का निर्णय करने का चाव बना रहे। मेरे कानों में आपके गुणानुवाद सुनने में ही राग अहर्निश प्राप्त हो। मेरे मन में केवल आपका ही स्मरण बना रहे। मेरे दोनों हाथों में आपके चरणों की पूजा करने की चतुरता प्राप्त हो जाये और मेरी वाणी आपकी गुण-कीर्तना ही करती रहे। इस रीति से मेरी इन्द्रियों को इस आपकी उपासना करने की टेंव (आदत) कभी भी कम न हो अर्थात् सदा बनी रहे। भाव यह है कि मैं अपने समस्त जीवन-काल में आपकी पूजा के अतिरिक्त अन्य कोई भी व्यवहार न करूं।। २७।।

उद्दामकामपरमार्थसरोजषण्ड-
चण्डद्युतिर्द्युतिमुपासितषट्प्रकाराम्।
मोहद्विपेन्द्रकदनोद्यतबोधसिंह-
लीलागुहां भगवतीं त्रिपुरां नमामि।। २८।।

पदच्छेद अन्वय सहित

उद्दाम काम परमार्थ सरोज षण्ड-
चण्डद्युतिः द्युतिम् उपासित षट् प्रकाराम्।
मोह द्विप इन्द्र कदन उद्यत बोधसिंह-
लीला गुहां भगवतीं त्रिपुरां नमामि।। २८।।

(अहम्) उद्दाम-काम-परमार्थ-सरोज-षण्ड-चण्डद्युतिः द्युतिम् उपासित-षट्-प्रकारां मोह-द्विपेन्द्र-कदन-उद्यत-बोधसिंह-लीला-गुहां भगवतीं त्रिपुरां नमामि।। २८।।

शब्दार्थ

उद्दाम = बड़ी (परिपूर्ण)
काम = इच्छा स्वातन्त्र्य (शक्ति) के
परमार्थ = पारमार्थिक (परमार्थ रूपी)
सरोजषण्ड = षट्चक्र सम्बन्धी कमलों के समूह को (खिलाने के लिए)
चण्डद्युतिः = सूर्य की जैसी चमक से
द्युतिं = चमचमाती हुई कुण्डलिनी स्वरूपा त्रिपुरा देवी जब
उपासित षट् प्रकाराम् = षट्चक्रों के भेदन करने के क्रम से उपासना की जाती है (तदनन्तर ही) वह जगन्माता
मोह = मोहरूपी
द्विपेन्द्र = मदमस्त हाथी को
कदन = नष्ट करने के लिए
उद्यत = तैयार
बोधसिंह = भैरवीय चित्प्रकाशरूपी सिंह का

लीलागुहां = विलास स्थान (क्रीडास्थान) (प्रकट करती है)
भगवतीं त्रिपुरां = ऐसी ही कुण्डलिनी रूप महात्रिपुरसुन्दरी को
(अहं = मैं)
नमामि = प्रणाम करता हूँ।

अनुवाद

कुण्डलिनी स्वरूपा त्रिपुरादेवी जब षट्चक्रों के भेदन करने के क्रम से उपासना की जाती है तो फिर वह त्रिपुरादेवी परिपूर्ण इच्छा-स्वातन्त्र्य के पारमार्थिक षट्चक्रसंबन्धी कमलों के समूह की चमक से चमचमाती हुई प्रकट होती है। तदनन्तर ही वह जगन्माता मोह रूपी मद-मस्त हाथी को नष्ट-भ्रष्ट करने के लिए मानो उद्यत भैरवीय चित्प्रकाश रूपी सिंह का विलासस्थान प्रकट करती है—ऐसी ही कुण्डलिनी रूप महात्रिपुरसुन्दरी को मैं प्रणाम करता हूँ।। २८।।

गणेशवटुकस्तुता रतिसहायकामान्विता
स्मरारिवरविष्टरा कुसुमबाणबाणैर्युता।
अनङ्गकुसुमादिभिः परिवृता च सिद्धैस्त्रिभिः
कदम्बवनमध्यगा त्रिपुरसुन्दरी पातु नः।। २९।।

पदच्छेद अन्वय सहित

गणेश वटुक स्तुता रति सहाय काम अन्विता
स्मर अरि वर विष्टरा कुसुम बाण बाणैः युता।
अनङ्ग कुसुम आदिभिः परिवृता च सिद्धैः त्रिभिः
कदम्ब वनमध्यगा त्रिपुरसुन्दरी पातु नः।। २९।।

गणेशवटुकस्तुता, रतिसहायकामान्विता, स्मरारिवरविष्टरा, कुसुम-बाणबाणैर्युता, अनङ्गकुसुमादिभिः त्रिभिः सिद्धैः च परिवृता कदम्ब-वनमध्यगा त्रिपुरसुन्दरी नः पातु।। २९।।

शब्दार्थ

(जो देवी) गणेश = गणेश
वटुकस्तुता = और वटुकनाथ के द्वारा स्तुति की गई है
रति-सहाय-काम-अन्विता = जो रति सहित कामदेव से युक्त बनी हुई है
स्मरारि-वर-विष्टरा = जो महादेवी रूपी उत्तम आसन पर विराजमान है
कुसुमबाण-बाणैर्-युता = कामदेव के पांच बाणों को जो धारण करती है

अनङ्ग कुसुमादिभिः = और जो अनङ्ग-निराकार, पांच चिदादि शक्तिरूपी फूलों से

त्रिभिः सिद्धैः = और ज्ञानसिद्धों, योग सिद्धों और चर्यासिद्धों से

परिवृता = घेरी हुई है, ऐसी ही

कदम्ब वनमध्यगा = कदम्ब वन में, अर्थात् नन्दन वन में विराजमान

त्रिपुरसुन्दरी = महात्रिपुरसुन्दरी, भगवती

नः = हमारी

पातु = रक्षा करें।

अनुवाद

जो देवी गणेश और वटुकनाथ के द्वारा स्तुति की गई है, अर्थात् प्रणापान के प्रसर-प्रवेशात्मक क्रम से जिसका परामर्श अर्थात् अनुसंधान किया जाता है, जो रति सहित कामदेव से युक्त बनी हुई है, अर्थात् जो जगन्माता सशक्तिक इच्छा-स्वातन्त्र्य से संपन्न बनी हुई है, जो महादेवरूपी उत्तम आसन पर विराजमान है, कामदेव के पांच बाणों को जो धारण करती है, अर्थात् जो अपनी इच्छा की स्वतंत्रता के फलस्वरूप चित्त, आनन्द, इच्छा, ज्ञान और क्रिया - इन पांच अनुपम शक्तियों से संपन्न बनी हुई है और जो अनङ्ग अर्थात् निराकार पांच चिदादि शक्ति रूपी फूलों से तथा ज्ञानसिद्धों, योगसिद्धों और चर्यासिद्धों से घेरी हुई है, ऐसी ही कदम्ब-वन में अर्थात् नन्दन वन में विराजमान महात्रिपुरसुन्दरी भगवती हमारी रक्षा करे।। २९।।

विशेष– गणेश–प्राण का प्रतीक है।

वटुक–अपान का प्रतीक है।

रति–बुद्धि का प्रतीक है।

अनंग कुसुम-चिद् आनन्द, इच्छा ज्ञान और क्रिया पांच शक्ति रूपी फूल हैं।

देखिये 'देहस्थदेवताचक्र' अभिनवगुप्तपादरचित–

प्राण-गणेश–असुरसुरवृन्दवन्दितं अभिमतवरवितरणे निरतम्।
दर्शन शताग्र्य पूज्यं प्राणतनुं गणपतिं वन्दे।।

अपान-वटुक–वरवीर योगिनी गण सिद्धावलि वन्दितांघ्रि युगलम्।
अभिमत विनयं जनार्तिं वटुकमपानाभिधं वन्दे।।

कदम्बवन माया प्रसर का प्रतीक है।

कुसुमबाण मन के संभ्रान्त संकल्पविकल्प लहरों का प्रतीक है।

यस्स्तोत्रमेतदनुवासरमीश्वरायाः
श्रेयस्करं पठति यः यदि वा शृणोति।

तस्येप्सितं फलति राजभिरीडचतेऽसौ
जायेत स प्रियतमो हरिणेक्षणानाम् ।। ३०।।

पदच्छेद अन्वय सहित

यः स्तोत्रम् एतत् अनुवासरम् ईश्वरायाः
श्रेयस् करं पठति यः यदि वा शृणोति।
तस्य ईप्सितं फलति राजभिः ईडचते असौ
जायेत स प्रियतमः हरिण ईक्षणानाम्।। ३०।।

ईश्वरायाः एतत् श्रेयस्करं स्तोत्रं यः अनुवासरं पठति यदि वा शृणोति, तस्य ईप्सितं फलति, असौ राजभिः ईडचते, (तथा) सः हरिणेक्षणानां प्रियतमः जायेत।। ३०।।

शब्दार्थ

ईश्वररायाः = परा पारमेश्वरी के
एतत् = इस
श्रेयस्करं-स्तोत्रं = कल्याणप्रद स्तोत्र का
यः = जो
अनुवासरं = प्रतिदिन
पठति = पाठ करता है
यदि वा = अथवा
शृणोति = सुनता है
तस्य = उसकी
ईप्सितं = सभी मनोवांछित कामनायें
फलति = सफल बनती हैं
असौ = यह
राजभिः = राजाओं के द्वारा
ईड्यते = पूजा जाता है
सः = और वह
हरिणः-ईक्षणानां = हिरणों के समान चंचल वृत्तिवाली इन्द्रियों का
प्रियतमो जायेत = अत्यन्त प्रिय बनता है।

अनुवाद

परा पारमेश्वरी के इस कल्याणप्रद स्तोत्र का जो प्रतिदिन पाठ करता है अथवा श्रवण करता है, उसकी सभी मनोवांछित कामनाएं सफल बनती हैं और वह हरिण के समान चंचल वृत्ति वाली इन्द्रियों का अत्यन्त प्रिय बनता है। भाव यह है कि उसे अपनी इन्द्रियां स्वात्मानुसंधान की ओर लगाकर पारमार्थिक लाभ पहुँचाती हैं।।३०।।

विशेषः- मदिरेक्षणानाम् पाठान्तर है हिरणेक्षणानाम् का।

ब्रह्मेन्द्ररुद्रहरिचन्द्रसहस्त्ररश्मि-
स्कन्दद्विपाननहुताशनवन्दितायै।
वागीश्वरि ! त्रिभुवनेश्वरि ! विश्वमात-
रन्तर्बहिश्च कृतसंस्थितये नमस्ते ।। ३१।।

पदच्छेद अन्वय सहित

ब्रह्मा इन्द्र रुद्र हरि चन्द्र सहस्र रश्मि-
स्कन्द द्विप आनन हुताशन वन्दितायै।
वाक् ईश्वरि ! त्रिभुवन ईश्वरि ! विश्वमातः !
अन्तः बहिः च कृतसंस्थितये नमः ते ।। ३१।।

वागीश्वरि! त्रिभुवनेश्वरि! विश्वमातः! ब्रह्मेन्द्ररुद्र-हरिचंद्रसहस्र-रश्मिस्कन्द-द्विपानन-हुताशनवन्दितायै अन्तर्बहिश्चकृत-संस्थितये ते नमः (अस्तु) ।। ३१।।

शब्दार्थ

वागीश्वरि ! = हे महासरस्वती देवी ! (परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी इन चारों वाणियों की ईश्वरी)
त्रिभुवनेश्वरी = हे जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति इन तीनों लोकों की स्वामिनी
विश्वमातः = हे जगन्माता आपके स्वरूप को
ब्रह्मा-इन्द्र-रुद्र-हरि-चन्द्र-सहस्त्ररश्मि-स्कन्द-द्विपानन-हुताशन वन्दितायै = ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, नारायण, चन्द्रमा, सूर्य भगवान्, कुमार जी, गणेश जी और अग्नि देवता प्रणाम करते हैं, आप
अन्तः = इस संसार के भीतर
बहिश्च = और बाहर
कृतसंस्थितये = ठहरी हुई हैं।
नमस्ते = आपको मेरा प्रणाम हो।

अनुवाद

हे महासरस्वती देवी की ईश्वरी ! हे जाग्रत-स्वप्न-सुषप्ति—इन तीन लोकों की स्वामिनी ! हे जगन्माता ! आपके स्वरूप को ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, नारायण, चन्द्रमा, सूर्यभगवान्, कुमार जी, गणेश जी और अग्निदेवता प्रणाम करते हैं। आप इस समस्त संसार के भीतर और बाहर ठहरी हुई हैं। आपको मेरा प्रणाम हो।।३१।।

विशेष—वागीश्वरी 'ऐं' बीज मंत्र का प्रतीक है। त्रिभुवनेश्वरी 'क्लीं' बीज मंत्र का प्रतीक है। विश्वमाता 'सौः' बीज मंत्र की प्रतीक है। संपूर्ण मंत्र—ऐं, क्लीं, सौः— क्रमशः ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति और इच्छाशक्ति के प्रतीक हैं।

इति श्रीधर्माचार्यकृतौ पञ्चस्तव्यां चर्चास्तवो द्वितीयः ।।

अथ धर्माचार्यकृतौ पञ्चस्तव्यां घटस्तवः तृतीयः।।

देवि ! त्र्यम्बकपत्नि ! पार्वति ! सति ! त्रैलोक्यमातः ! शिवे !
शर्वाणि ! त्रिपुरे ! मृडानि ! वरदे ! रुद्राणि ! कात्यायनि !।
भीमे ! भैरवि ! चण्डि ! शर्वरि ! कले ! कालक्षये ! शूलिनि !
त्वत्पादप्रणतानऽनन्यमनसः पर्याकुलान्पाहि नः ।। १।।

पदच्छेद अन्वय सहित

देवि ! त्र्यम्बकपत्नि ! पार्वति ! सति ! त्रैलोक्यमातः ! शिवे !
शर्वाणि ! त्रिपुरे ! मृडानि ! वरदे ! रुद्राणि ! कात्यायनि !
भीमे ! भैरवि ! चण्डि ! शर्वरि ! कले ! कालक्षये ! शूलिनि !
त्वत्पादप्रणतान् अनन्यमनसः पर्याकुलान् पाहि नः ।। १।।

हे देवि ! त्र्यम्बकपत्नि ! पार्वति ! सति ! त्रैलोक्यमातः ! शिवे ! शर्वाणि ! त्रिपुरे ! मृडानि ! वरदे ! रुद्राणि ! कात्यायनि ! भीमे ! भैरवि ! चण्डि ! शर्वरि ! कले ! कालक्षये ! शूलिनि ! त्वत्पादप्रणतान् अनन्यमनसः पर्याकुलान् पाहि नः ।। १।।

शब्दार्थ

देवि ! = हे विश्व उल्लासनादि क्रीडा करने वाली देवी !
त्र्यम्बकपत्नि = हे महादेव की पत्नि !
पार्वति = हे पार्वती !
सति = हे सती !
त्रैलोक्यमातः = हे तीनों लोकों की माता !
शिवे = हे कल्याण करने वाली !
शर्वाणि = हे दुष्टों को नष्ट करने वाली
त्रिपुरे = हे तीनों लोकों को पूर्ण करने वाली
मृडानि = हे पारमार्थिक सुख देने वाली !
वरदे = हे भक्तों को अभीष्ट वर देने वाली !
रुद्राणि = हे स्वरूप-गोपन और स्वरूप-विकास करने वाली !
कात्यायनि = हे कत्य ऋषि की कन्या !
भीमे = हे भयंकर स्वरूप को धारण करने वाली !
भैरवि = हे भैरवनाथ की अर्धाङ्गिनी !
चण्डि = हे चण्डिका का स्वरूप धारण करने वाली
शर्वरि = हे कालरात्री भगवती !
कले = हे सर्वत्र स्वतन्त्र रूप वाली !
कालक्षये = हे काल को नष्ट करने वाली देवी!

शूलिनि = हे त्रिशूल को धारण करने वाली !
अनन्य मनसः = हम एकाग्र मन से युक्त बने हुए
त्वत्पाद प्रणतान् = आपके चरण कमलों को प्रणाम करते हैं।
पर्याकुलान् = हम सब ओर से व्याकुल बने हुए हैं
नः पाहि = आप हमारी रक्षा कीजिये।

अनुवाद

हे विश्व-उल्लासनादि क्रीडा करने वाली देवी ! हे महादेव की पत्नी ! हे पार्वती! हे सती ! हे तीनों लोकों की माता ! हे कल्याण करने वाली ! हे दुष्टों को नष्ट करने वाली ! हे तीन लोकों को पूर्ण करने वाली ! हे पारमार्थिक सुख देने वाली! हे भक्तों को अभीष्ट वर देने वाली ! हे स्वरूप-गोपन और स्वरूप-विकास करने वाली! हे कत्य-ऋषि की कन्या ! हे भयंकर स्वरूप को धारण करने वाली! हे भैरवनाथ की अर्द्धांगिनी ! हे चण्डिका का स्वरूप धारण करने वाली ! हे कालरात्री भगवती ! हे सर्वत्र स्वतंत्र रूप वाली ! हे काल को नष्ट करने वाली देवी! हे त्रिशूल को धारण करने वाली ! हम एकाग्रमन से युक्त बने हुए आपके चरण-कमलों को प्रणाम करते हैं। हम सब ओर से व्याकुल बने हुए हैं। आप हमारी रक्षा कीजिए।। १।।

उन्मत्ता इव सग्रहा इव विषव्यासक्तमूर्च्छा इव
प्राप्तप्रौढमदा इवाति विरहग्रस्ता इवार्ता इव।
ये ध्यायन्ति हि शैलराजतनयां धन्यास्त एकाग्रत-
स्त्यक्तोपाधिविवृद्धरागमनसो ध्यायन्ति वामभ्रुवः।। २।।

पदच्छेद अन्वय सहित

उन्मत्ताः इव सग्रहाः इव विष व्यासक्तमूर्च्छा इव
प्राप्तप्रौढमदाः इव अतिविरहग्रस्ताः इव आर्ताः इव।
ये ध्यायन्ति हि शैलराजतनयां धन्याः ते एकाग्रतः
त्यक्त उपाधि विवृद्धरागमनसः ध्यायन्ति वामभ्रुवः ।। २।।

ये धन्याः उन्मत्ता इव, सग्रहा इव, विषव्यासक्तमूर्च्छा इव, प्राप्तप्रौढमदा इव, अतिविरहग्रस्ता इव, आर्ता इव शैलराजतनयां ध्यायन्ति, ते त्यक्तोपाधिविवृद्धरागमनसः वामभ्रुवः ध्यायन्तिः।। २।।

शब्दार्थ

ये धन्याः = जो भाग्यशाली जन
उन्मत्ता इव = मदान्ध व्यक्ति की भांति
सग्रहा इव = आविष्ट मनुष्य की तरह
विष-व्यासक्तमूर्च्छा इव = विष आसक्त मूर्च्छित जन की तरह
प्राप्तप्रौढमदा इव = प्राप्त किये गये हर्ष की भांति
अतिविरहग्रस्ता इव = अत्यन्त विरह से ग्रस्त विरही पुरुष की तरह
आर्ता इव = व्याकुल बने हुए मनुष्य की तरह
शैल राजतनयां = आप गिरिजा का ध्यान करते हैं (उनका ध्यान)
वामभ्रुवः = सुन्दर नेत्रों वाली योगिनियां
एकाग्रतः = एकाग्रतापूर्वक (करती रहती हैं)
त्यक्त-उपाधि = जो सारी उपाधियों से रहित होती हैं और
विवृद्धरागमनसः = जो उन्नत हृदयवाली होती हैं
ध्यायन्ति = ध्यान करती हैं।

अनुवाद

जो भाग्यशाली जन मदान्ध व्यक्ति की भांति, हठीले मनुष्य की तरह, विष-आसक्त मूर्च्छित-जन की तरह, प्राप्त किये हुए गंभीर हर्ष की भांति, अत्यन्त विरह से विरही पुरुष की तरह अथवा व्याकुल बने हुए मनुष्य की नाईं आप गिरिजा का ध्यान करते हैं, उनका ध्यान सुन्दर नेत्रों वाली योगिनियां एकाग्रतापूर्वक करती रहती हैं, जो समस्त उपाधियों से रहित होती हैं और जो उन्नत हृदय वाली होती हैं। भाव यह है कि उस साधक की सभी उपाधियों को तिलांजलि देकर उन्नत हृदय से वे योगिनियां उसके वशवर्ती बन जाती हैं।। २।।

देवि ! त्वां सकृदेव यः प्रणमति क्षोणीभृतस्तं नम-
न्त्याजन्म स्फुरदङ्घ्रिपीठविलुठत्कोटीरकोटिच्छटाः।
यस्त्वामर्चति सोऽर्च्यते सुरगणैर्यः स्तौति स स्तूयते
यस्त्वां ध्यायति तं स्मरार्तिविधुरा ध्यायन्ति वामभ्रुवः।। ३।।

पदच्छेद अन्वय सहित

देवि ! त्वां सकृत् एव यः प्रणमति क्षोणीभृतः तं नमन्ति
आजन्मस्फुरत् अङ्घ्रिपीठविलुठत् कोटीर कोटि छटाः।
यः त्वाम् अर्चति सः अर्च्यते सुरगणैः यः स्तौति सः स्तूयते
यः त्वां ध्यायति तं स्मर आर्तिविधुराः ध्यायन्ति वामभ्रुवः ।। ३।।

देवि ! यः त्वां सकृदेव प्रणमति, तं स्फुरदंघ्रिपीठविलुठत्-कोटीरकोटिच्छटाः क्षोणीभृतः आजन्म नमन्ति। यः त्वाम् अर्चति सः सुरगणैः अर्च्यते, यः (त्वां) स्तौति स स्तूयते, यः त्वां ध्यायति तं स्मरार्तिविधुरा वामभ्रुवः ध्यायन्ति।। ३।।

शब्दार्थ

देवि ! = हे द्योतनात्मिका देवी !
यः = जो भक्त, **त्वां** = आपको
सकृदेव = एक बार भी
प्रणमति = प्रणाम करता है
तं = उसके
आजन्म = जीवनपर्यन्त
क्षोणीभृतः = बड़े-बड़े सम्राट्
नमन्ति = झुकते रहते हैं, (जिन सम्राटों की)
अङ्घ्रिपीठ = चरणपादुकापर
विलुठत् = लुढ़कते हुए
कोटीर = मुकुटों के
कोटि = अग्रभाग की
छटाः = छटायें
स्फुरत् = लगी रहती हैं
यः = जो (हे देवि !)
त्वां = तुझे
अर्चति = (हृदय से) पूजा करता है
सः = वह
सुरगणैः = देवताओं के द्वारा
अर्च्यते = पूजा जाता है
यः = जो
स्तौति = स्तुति करता है
सः = वह (उसकी)
स्तूयते = स्तुति सारा जगत् करता रहता है
यः = जो
त्वां ध्यायति = आपका ध्यान करता है
तं = उसे
स्मरार्तिमधुरा = कामदेव की पीड़ा से चंचल बनी हुई
वामभ्रुवः = सुन्दर शक्तियां अर्थात् सभी इन्द्रिय वृत्तियां
ध्यायन्ति = ध्यान करती हैं।

अनुवाद

हे द्योतनात्मिका देवि ! जो भक्त एक बार भी आपको प्रणाम करता है अर्थात् अपने जीवन में एक बार भी आप का साक्षात्कार करता है, उसके सम्मुख बड़े-बड़े सम्राट् जीवन-पर्यन्त झुकते रहते हैं। जिन सम्राटों की चरण-पादुका पर अनेकानेक गणराज्यों के मुकुटों के अग्रभाग की छटायें लगी रहती हैं, अर्थात् जिनके चरणों पर अनेक राजे झुके रहते हैं। हे देवी ! जो आपकी पूजा हृदय से करता है, वह देवताओं के द्वारा पूजित होता है, जो आपकी स्तुति करता है उसकी स्तुति सारा जगत् करता रहता है और जो आपका ध्यान करता है उसका ध्यान सभी इन्द्रिय-वृत्तियां करती रहती हैं अर्थात् उस साधक को एकाग्र बनाने में सहायक होती हैं।। ३।।

ध्यायन्ति ये क्षणमपि त्रिपुरे ! हृदि त्वां

लावण्ययौवनधनैरपि विप्रयुक्ताः।
ते विस्फुरन्ति ललितायतलोचनानां
चित्तैकभित्तिलिखितप्रतिमाः पुमांसः।। ४।।

पदच्छेद अन्वय सहित

ध्यायन्ति ये क्षणम् अपि त्रिपुरे ! हृदि त्वां
लावण्य यौवन धनैः अपि विप्रयुक्ताः।
ते विस्फुरन्ति ललित आयत लोचनानां
चित्त एक भित्ति लिखित प्रतिमाः पुमांसः।। ४।।

त्रिपुरे ! ये त्वां हृदि क्षणमपि ध्यायन्ति, ते पुमांसः लावण्य-यौवन-धनैः विप्रयुक्ता अपि ललितायतलोचनानां चित्तैकभित्ति-लिखितप्रतिमाः (भूत्वा) विस्फुरन्ति।। ४।।

शब्दार्थ

त्रिपुरे = हे त्रिपुरा भगवती !
ये = जो भक्तजन
त्वां = आपका
हृदि = अपने हृदय में
क्षणमपि = एकक्षण के लिए भी
ध्यायन्ति = ध्यान करते हैं
ते पुमांसः = वे पुरुष
लावण्य यौवन धनैरपि = भले ही सौन्दर्य, यौवन तथा धन से
विप्रयुक्ताः = रहित क्यों न हो, (पर)
ललित = सुन्दर
आयत = दीर्घ
लोचनानां = नेत्रों वाली योगिनियों के
चित्तैक भित्ति = हृदयरूपी भित्ति पर
लिखित = खिंची हुई
प्रतिमाः = मूर्तियां जैसे
विस्फुरन्ति = प्रकट होते हैं, अर्थात् योगिनियां उनको अपने हृदय में स्थान देती हैं।

अनुवाद

हे त्रिपुरा भगवती ! जो भक्त-जन अपने हृदय में आपका ध्यान एक क्षण के लिये भी करते हैं, वे भले ही सौन्दर्य, यौवन तथा धन से रहित क्यों न हों, वे पुरुष सुन्दर तथा दीर्घ नेत्रों वाली योगिनियों के हृदयरूपी भित्ति पर सदा के लिए अंकित बने रहते हैं, भाव यह है कि योगिनियां उनको अपने हृदय में स्थान देती हैं और वे महायोगिनी मेलाप का उच्चतर अधिकार प्राप्त करते हैं।। ४।।

विशेष—**पुमांसः** = परमेश्वरस्य शक्तिचक्रभागिनः **चित्तैक** = मात्रवृत्तिमान्।

एतं किंनुदृशा पिबाम्युत विशाम्यस्याङ्गमङ्गैर्निजैः
किं वाऽमुं निगलाम्यनेन सहसा किं वैकतामाश्रये।

तस्येत्थं विवशोविकल्पघटनाकूतेन योषिज्जनः
किं तद्यन्न करोति देवि ! हृदये यस्य त्वमावर्तसे ।। ५।।

पदच्छेद अन्वय सहित

एतं किं नु दृशा पिबामि उत विशामि अस्य अङ्गं अङ्गैः निजैः
किं वा अमुं निगलामि अनेन सहसा किं वा एकतां आश्रये।
तस्य इत्थं विवशः विकल्पघटनाआकूतेन योषित् जनः
किं तत् यत् न करोति देवि ! हृदये यस्य त्वम् आवर्तसे।। ५।।

एतं किं नु दृशा पिबामि, उत अस्य अङ्गं अङ्गैः निजैः विशामि, किं वा अमुं निगलामि, किं वा अनेन (सहसा एकताम् आश्रये-इत्थं विकल्प-घटनाकूतेन विवशः योषिज्जनः तस्य तत् किम् (अस्ति) यन्न करोति–हे देवि ! यस्य हृदयेत्वम् आवर्तसे।। ५।।

शब्दार्थ

देवि ! = हे देवी
यस्य हृदये = जिस भक्त के हृदय में
त्वं = आप
आवर्तसे = प्रकट होती है
तस्य = उसे
योषित्जनः = परमेश्वर का शक्ति चक्र (यही चाहता है) कि हम
एतं = इसे
किंनु = क्या निश्चय ही
दृशा = नेत्रों के द्वारा
पिबामि = पिये, **उत** = अथवा
निजैः-अङ्गैः = अपने अंगों से
अस्य = इसके
अङ्गं = अंगों में
विशामि = समा जायें
किं वा = अथवा
अमुं = इसे
निगलामि = एक बारगी ही, निगल लें
कि वा = अथवा
एकतामाश्रये = अपने साथ एक बनायें
इत्थं = इस भांति
विकल्प-घटनाकूतेन = अनेक कल्पनाओं या विचारों की रचना के अभिप्राय से
योषित् जनः = परमेश्वर की शक्तियां
विवशः = बेबस हो जाती हैं
तत् किं = फिर वह कौन सा कार्य है
यत् न करोति = जो कार्य उस भक्त के लिए ये शक्तियां सिद्ध नहीं करती हैं।

अनुवाद

हे देवी ! जिस भक्त के हृदय में आप प्रकट होती हैं, उसे (योषित्-जन) परमेश्वर का शक्ति-चक्र यही चाहता है कि "हम इसे देखते ही अर्थात् नेत्रों के द्वारा ही पियें, अपने नेत्रों का स्थान बनायें, अथवा इसके अंगों में अपने सभी अंग समायें, अर्थात्

इसकी परिमित प्रमातृता को समाप्त करके अपनी अपरिमित स्वात्मस्थिति प्रदान करें, या इसे हम एकबारगी ही निगल लें और अपने साथ इसको एक बनायें।'' इस भांति अनेकानेक कल्पनाओं के वशवर्त्ती बनकर भिन्न-भिन्न प्रणालियों से वे परमेश्वर की शक्तियां इसके साथ-साथ ही रहने की इच्छा करती हैं। सच तो यह है कि भक्त के हृदय में आपका प्रविष्ट होना ही अनेकानेक कार्यों की सिद्धि का परिचायक है।। ५।।

विश्वव्यापिनि यद्वदीश्वर इति स्थाणावनन्याश्रयः
शब्दः शक्तिरिति त्रिलोकजननि ! त्वय्येव तथ्यस्थितिः।
इत्थं सत्यपि शक्नुवन्ति यदिमाः क्षुद्रा रुजो बाधितुं
त्वद्भक्तानपि न क्षिणोषि च रुषा तद्देवि ! चित्रं महत्।। ६।।

पदच्छेद अन्वय सहित

विश्वव्यापिनि यत् वत् ईश्वरः इति स्थाणौ अनन्याश्रयः
शब्दः शक्ति इति त्रिलोकजननि ! त्वयि एव तथ्यस्थितिः।
इत्थं सति अपि शक्नुवन्ति यत् इमाः क्षुद्राः रुजः बाधितुं
त्वत् भक्तान् अपि न क्षिणोषि च रुषा तत् देवि ! चित्रं महत्।। ६।।

हे त्रिलोकजननि ! हे देवि ! यद्वत् ईश्वर इति शब्दः विश्वव्यापिनि स्थाणौ अनन्याश्रयः, (तद्वत्) शक्तिरिति (शब्दः) त्वयि एव तथ्यस्थितिः। इत्थं सत्यपि यदिमाः क्षुद्राः रुजः त्वद्भक्तानपि बाधितुं शक्नुवन्ति, (परन्तु त्वं) रुषा (तान्) न क्षिणोषि, तत् महत् चित्रम्।। ६।।

शब्दार्थ

हे त्रिलोकजननि = हे तीनों लोकों को उत्पन्न करने वाली देवि !
यत् वत् = जिस भांति
ईश्वर इति शब्दः = ईश्वर यह शब्द
विश्वव्यापिनि = जगत् में व्यापक
स्थाणौ = महादेव में
अनन्याश्रयः = दूसरे के आश्रय की अपेक्षा न करने वाला (लागू होता है)
तत् वत् = उसी तरह
शक्तिः इति शब्दः = शक्ति यह शब्द भी
तथ्यस्थिति = वास्तविकरूप से
त्वय्येव = आपका परिचायक है
इत्थं सत्यपि = इतना होने पर अर्थात् सर्व समर्थ होने पर भी
यत् इमाः = जो ये
क्षुद्रा रुजः = तुच्छ रोग आदि
त्वत् भक्तानपि = आपके भक्तों को भी
बाधितुं शक्नुवन्ति = बाधा डालते ही रहते हैं
(परन्तु त्वं = तू)
तान् रुषा = उन रोग आदि आपदाओं को अपने क्रोध से

न क्षिणोषि = नष्ट नहीं करती हैं

तत् महत् चित्रं = यह तो बड़ा आश्चर्य है।

अनुवाद

हे तीनों लोकों को उत्पन्न करने वाली देवि ! जिस भांति 'ईश्वर'—यह शब्द महादेव में लागू होता है, उसी भांति 'शक्ति'— यह शब्द भी तथ्य रूप से आपका परिचायक है। इतना होने पर अर्थात् सर्व-समर्थ होने पर भी आपके भक्तों को तुच्छ रोगादि, बाधा डालते ही रहते हैं और आप उन रोग आदि आपदाओं को अपने क्रोध से नष्ट नहीं करती हैं—यह तो बड़ा आश्चर्य है।। ६।।

इन्दोर्मध्यगतां मृगाङ्कसदृशच्छायां मनोहारिणीं
पाण्डूत्फुल्लसरोरुहासनगतां स्निग्धप्रदीपच्छविम्।
वर्षन्तीममृतं भवानि ! भवतीं ध्यायन्ति ये देहिन-
स्ते निर्मुक्तरुजो भवन्ति विपदः प्रोज्झन्ति तान्दूरतः।। ७।।

पदच्छेद अन्वय सहित

इन्दोः मध्यगतां मृग-अङ्कसदृशच्छायां मनोहारिणीम्
पाण्डु-उत्फुल्ल सरोरुह आसन गतां स्निग्ध प्रदीपच्छविम्।
वर्षन्तीम् अमृतं भवानि ! भवतीं ध्यायन्ति ये देहिनः
ते निर्मुक्तरुजः भवन्ति विपदः प्रोज्झन्ति तान् दूरतः।। ७।।

हे भवानि ! इन्दोर्मध्यगतां मनोहारिणीं मृगांकसदृशच्छायां पाण्डु-उत्फुल्ल-सरोरुह-आसन-गतां स्निग्धप्रदीपच्छविं, अमृतं वर्षन्तीं भवतीं ये देहिनः ध्यायन्ति, ते निर्मुक्तरुजः भवन्ति, (एवं) तान् विपदः दूरतः प्रोज्झन्ति।। ७।।

शब्दार्थ

भवानि ! = हे देवी
ये देहिनः = जो शरीरधारी
भवती = आपके स्वरूप का
इन्दोः = चन्द्रमा में
मध्यगतां = अवस्थित (बीच में स्थित)
मनोहारिणीं = मन को हरने वाली
मृगाङ्क = मृग (हिरण) है लांछन (चिह्न) जिसका अर्थात् चन्द्रमा के
सदृश = समान
छायां = सुन्दर
पाण्डु = सफेद (श्वेत)
उत्फुल्ल-सरोरुह = प्रफुल्लित (विकसित) कमल रूपी
आसनगतां = आसन में विराजमान हैं।
स्निग्ध = तेल से प्रपूरित (भरे हुए)
प्रदीप = दीपक की

छवि = चमक की भांति (हैं)
अमृतं वर्षन्तीं = आप सदा अमृत की वर्षा करती रहती हैं
ते = वे
निर्मुक्तरुजः भवति = सदा के लिए रोगों से मुक्त होते हैं (एवं)
तान् = उन्हें
विपदः = सारी आपदायें
दूरतः प्रोज्झन्ति = अपने से दूर रखती हैं।

अनुवाद

हे पार्वती देवि ! आप चन्द्रमा में अवस्थित मृगलांछन के समान सुन्दर और प्रफुल्लित श्वेत कमल रूपी आसन में विराजमान हैं। आप तेल से प्रपूरित दीपक की चमक की भांति सर्वतः प्रकाश-पूर्ण हैं। आप सदा अमृत की वर्षा करती रहती हैं–इस प्रकार जो आपके स्वरूप का ध्यान करते हैं, वे सदा के लिए रोगों से मुक्त होते हैं और समस्त आपदायें उन्हें अपने से दूर रखती हैं। भाव यह है कि दुःख उनके सामने नहीं फटकने पाते।। ७।।

पूर्णेन्दोः शकलैरिवातिबहलैः पीयूषपूरैरिव
क्षीराब्धेर्लहरीभरैरिव सुधापङ्कस्य पिण्डैरिव।
प्रालेयैरिव निर्मितं तव वपुर्ध्यायन्ति ये श्रद्धया
चित्तान्तर्निहतार्तितापविपदस्ते सम्पदं बिभ्रति।। ८।।

पदच्छेद अन्वय सहित

पूर्ण-इन्दोः शकलैः इव अति बहलैः पीयूषपूरैः इव
क्षीर अब्धेः लहरीभरैः इव सुधापङ्कस्य पिण्डैः इव।
प्रालेयैः इव निर्मितं तव वपुः ध्यायन्ति ये श्रद्धया
चित्त अन्तर् निहत आर्ति ताप विपदः ते सम्पदं बिभ्रति ।। ८।।

पूर्णेन्दोः शकलैरिव, अतिबहलैः पीयूषपूरैरिव, क्षीराब्धेः लहरीभरैरिव, सुधापंकस्य पिण्डैरिव, (एवं) प्रालेयैरिव निर्मितं तव वपुः ये श्रद्धया ध्यायन्ति, ते चित्तान्तर्निहत-आर्तितापविपदः संपदं बिभ्रति।। ८।।

शब्दार्थ

पूर्णेन्दोः शकलैरिव = पूनम के चमकते हुए चन्द्रमा के (गोल आकार के) समान
अतिबहलैः = अधिक मात्रा में बहते हुए
पीयूषपूरैः इव = अमृत के झरनों की भांति
क्षीराब्धेः = क्षीर सागर के
लहरीभरैः इव = अधिकाधिक लहरों की भांति
सुधापंकस्य = अमृतरूपी मिट्टी के
पिण्डैः इव = गोलों की भांति

प्रालेयैः इव = हिम की नाईं
निर्मितं = बना हुआ
तव वपुः = आपके श्वेत स्वरूप का
ये = जो
श्रद्धया = श्रद्धापूर्वक
ध्यायन्ति = ध्यान करते हैं
ते = वे
चित्त अन्तः = अपने हृदय में ही
निहत = नष्ट करके
आर्ति = पीड़ा
ताप = दयनीयता को
विपदः = आपदाओं को
संपदं = मोक्षरूपिणी सम्पदा अर्थात् मोक्षलक्ष्मी को
बिभ्रति = धारण करते हैं।

अनुवाद

पूनम के चमकते हुए चन्द्रमा की नाईं, अधिक मात्रा में बहते हुए अमृत के झरनों की भांति, क्षीर-समुद्र के अधिकाधिक लहरों की भांति, अमृतरूपी मिट्टी के गोलों की तरह या हिम की नाईं निर्मित आपका श्वेत स्वरूप का ध्यान जो श्रद्धा-पूर्वक करते हैं, वे अपने हृदय में ही पीड़ा आपदाओं तथा दयनीयता को नष्ट करके मोक्ष-रूपिणी संपदा अर्थात् मोक्षलक्ष्मी को धारण करते हैं।। ८।।

विशेष–पूर्ण चन्द्रमा को चित् और आनन्द शक्ति का, अमृत प्रवाह को इच्छा शक्ति का, लहरी भर को ज्ञान शक्ति का, सुधापंकापिण्डों को क्रिया शक्ति का प्रतीक माना है।

ये संस्मरन्ति तरलां सहसोल्लसन्तीं
त्वां ग्रन्थिपञ्चकभिदं तरुणार्कशोणाम्।
रागार्णवे बहलरागिणि मज्जयन्तीं
कृत्स्नं जगद्दधति चेतसि तान्मृगाक्ष्यः।। ९।।

पदच्छेद अन्वय सहित

ये संस्मरन्ति तरलां सहसा उल्लसन्तीं
त्वां ग्रन्थि पञ्चक भिदं तरुण अर्क शोणाम्।
राग अर्णवे बहलरागिणि मज्जयन्तीं
कृत्स्नं जगत् दधति चेतसि तान् मृग अक्ष्यः।। ९।।

ये तरलां, सहसा उल्लसन्तीं ग्रन्थिपंचकभिदं तरुणार्कशोणां बहलरागिणि रागार्णवे कृत्स्नं जगत् मज्जयन्तीं त्वां संस्मरन्ति-तान् मृगाक्ष्यः चेतसि दधति।। ९।।

शब्दार्थ

ये = जो भक्त
तरलां = चंचलरूप वाली
सहसा = अपनी इच्छाशक्ति से ही
उल्लसन्तीं = प्रकट होने वाली
ग्रन्थि पंचकभिदं = पांच ग्रन्थियों (मूलाधार, नाभि, हृदय, कण्ठ और भ्रूमध्य) का भेदन करने वाली
तरुणार्कशोणां = बालसूर्य के समान लाल वर्णवाली
बहलरागिणि = लालिमापूर्ण
राग अर्णवे = भक्ति सागर में
कृत्स्नं जगत् = समस्त जगत् को
मज्जन्तीं = डुबो देने वाली
त्वां = आप जगदीश्वरी का
संस्मरन्ति = भलीभांति ध्यान करते हैं
तान् = उनको
मृगाक्ष्यः = हिरण के समान चंचल नेत्रों वाली करणेश्वरी देवियां
चेतसि = अपने हृदय में
दधति = धारण करती हैं।

अनुवाद

अकस्मात् अपनी इच्छा शक्ति से ही प्रकट होने वाली, मत्स्योदरी की भांति सर्वदा स्पन्दन-शील, पांच ग्रन्थियों (मूलाधार, नाभि, हृदय, कण्ठ और भ्रूमध्य) का भेदन करने वाली, बाल-सूर्य के समान रक्त-वर्ण वाली तथा समस्त जगत को लालिमा-पूर्ण भक्ति-सागर में डुबो देनेवाली आप जगदीश्वरी का ध्यान जो भक्त, भली भांति करते हैं, उन्हें हिरण के समान चंचल नेत्रों वाली करणेश्वरी देवियां अपने हृदय में सदा के लिये स्थान देती हैं अर्थात् उन्हें इन्द्रिय-वृत्तियों के व्यवहार-दशा में ही स्वरूप-लाभ-संपन्न बनाती हैं।। ९।।

लाक्षारसस्नपित पङ्कजतन्तुतन्वी-
मन्तः स्मरत्यनुदिनं भवतीं भवानि !
यस्तं स्मरप्रतिममप्रतिमस्वरूपा
नेत्रोत्पलैमृगदृशः भृशमर्चयन्ति।। १०।।

पदच्छेद अन्वय सहित

लाक्षारसस्नपित पङ्कज तन्तु तन्वीम्
अन्तः स्मरति अनुदिनं भवतीं भवानि !
यः तं स्मरप्रतिमं अप्रतिम स्वरूपाः
नेत्र-उत्पलैः मृगदृशः भृशम् अर्चयन्ति।। १०।।

हे भवानि ! यः लाक्षारसस्नपित पंकजतन्तुतन्वीं भवतीम् अनुदिनमन्तः स्मरति, तं स्मरप्रतिमम् अप्रतिमस्वरूपा मृगदृशः नेत्रोत्पलैः भृशम् अर्चयन्ति।। १०।।

शब्दार्थ

भवानि = हे माता !
यः = जो भक्त
लाक्षारस = लाख के रस में
स्नपित = भिगोये हुए
पंकज तन्तु = कमल के सूत के समान
तन्वीं = अत्यन्त सूक्ष्म
भवतीं = आपके स्वरूप का
अनुदितं = प्रतिदिन
अन्तः = अपने हृदय में
स्मरति = स्मरण करता है
तं = उसे
स्मरप्रतिमम् = कामदेव के समान सुन्दर मानकर
अप्रतिमस्वरूपा = अत्यन्त अद्वितीय सौन्दर्यवाली, और
मृगदृशः = हिरण के समान सुन्दर नेत्रों वाली युवतियां
नेत्रोत्पलैः = अपने नेत्ररूपी कमलों के द्वारा
भृशं = बहुत
अर्चयन्ति = उपासना करती है।

अनुवाद

हे भवानि ! जो भक्त, लाख के रस में भिगोये हुए कमल के सूत के समान अत्यन्त सूक्ष्म और लालिमा से युक्त आपके स्वरूप का स्मरण अपने हृदय में प्रतिदिन करता है, उसे कामदेव के समान सुन्दर मानकर अत्यन्त अद्वितीय सौन्दर्य वाली और हिरण के समान सुन्दर नेत्रों वाली युवतियां अपने नेत्र रूपी कमलों के द्वारा उपासना करती हैं। भाव यह है कि उस भक्त की सभी करणेश्वरी शक्तियां उसे प्रथमाभास-धाम में ही स्थित करती हैं, जिसके फलस्वरूप वह भक्त, सदा के लिए आपके चिदानन्द-स्वरूप में लय हो जाता है।। १०।।

विशेष—मृगदृशः इति इन्द्रियशक्तयः याः करणेश्वरीरूपं धारयन्ति।

स्तुमस्त्वां वाचमव्यक्तां
हिमकुन्देन्दुरोचिषम् !।
कदम्बमालां बिभ्राणा-
मापादतललम्बिनीम्।। ११।।

पदच्छेद अन्वय सहित

स्तुमः त्वां वाचम् अव्यक्तां
हिम कुन्द इन्दु रोचिषम्!।
कदम्ब मालां बिभ्राणाम्
आपादतल लम्बिनीम् ।।११।।

वयं हिमकुन्देन्दुरोचिषं (एवं) आपादतललम्बिनीं कदम्बमालां बिभ्राणां त्वाम् अव्यक्तां वाचं स्तुमः।। ११।।

शब्दार्थ

(वयं) = हम
हिम = बर्फ
कुन्द = कुन्दफूल
इन्दु = चन्द्रमा की नाईं
रोचिषम् = श्वेत तथा निर्मल प्रकाश से युक्त बनी हुई
आपादतल = चरणों तक
लम्बिनीं = लटकती हुई
कदम्बमालां = कदम्ब पुष्पों की माला को
बिभ्राणां = धारण करने वाली
त्वां = आप
अव्यक्तां वाचं = अव्यक्त परावाणी की
स्तुमः = स्तुति करते हैं।

अनुवाद

बर्फ, कुन्द-पुष्प और चन्द्रमा की नाईं श्वेत तथा निर्मल प्रकाश से युक्त बनी हुई तथा चरणों तक लटकती हुई कदम्ब-पुष्पों की माला को धारण करने वाली आप, अव्यक्त परावाणी की हम स्तुति करते हैं।। ११।।

विशेषः- वास्तव में वाणियां चार हैं—वैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती और परा। इनमें पहिली दो वाणियां व्यक्त अर्थात् स्थूल हैं। तीसरी वाणी (पश्यन्ती) व्यक्ताव्यक्त-वाणी है और चौथी (परा वाणी) अव्यक्त वाणी है। इसी अव्यक्त वाणी की ओर इस श्लोक में संकेत किया गया है। कदम्बमाला शब्द में परा कुण्डलिनी की ओर संकेत है। तत्त्वदृष्टि से जगन्माता का वास्तविक स्वरूप परावाणी ही है जिस वाणी को अव्यक्त नाम से विभूषित किया गया है और यहीं पर वाणी पराकुण्डलिनी कही जाती है।

मूर्धीन्दोः सितपङ्कजासनगतां प्रालेयपाण्डुत्विषं
वर्षन्तीममृतं सरोरुहभुवो वक्त्रेऽपि रन्ध्रेऽपि च।
अच्छिन्ना च मनोहरा च ललिता चातिप्रसन्नाऽपि च
त्वामेव स्मरतां स्मरारिदयिते ! वाक् सर्वतो वल्गति ।। १२।।

पदच्छेद अन्वय सहित

मूर्धि इन्दोः सितपङ्कज आसनगतां प्रालेयपाण्डुत्विषं
वर्षन्तीम् अमृतं सरोरुहभुवः वक्त्रे अपि रन्ध्रे अपि च।
अच्छिन्ना च मनोहरा च ललिता च अति प्रसन्ना अपि च
त्वाम् एव स्मरतां स्मर अरिदयिते ! वाक् सर्वतो वल्गति ।। १२।।

हे स्मरारिदयिते ! मूर्धीन्दोः सितपंकजासनगतां, प्रालेयपाण्डुत्विषं, सरोरुहभुवः वक्त्रेऽपिच रन्ध्रेऽपिच त्वामेव स्मरतां (भक्तानां) अच्छिन्ना च, मनोहरा च, ललिता च, अतिप्रसन्ना च (सती) वाक् सर्वतः वल्गति।। १२।।

शब्दार्थ

स्मर-अरि-दयिते ! = हे महादेव की शक्ति देवी ! (आप)
मूर्धीन्दोः = शिवरूपी
सितपङ्कजासगतां = अत्यन्त श्वेत कमल स्वरूप आसन पर विराजमान हैं।
प्रालेय = बर्फ जैसी
पाण्डु = सफेद
त्विषः = दीप्ति वाली है
सरोरुहभुवः = ब्रह्मस्थान के
वक्त्रे = अधोमुख में (मूलाधार)
अपि च = और
रन्ध्रे = ऊर्ध्वमुख में (ब्रह्मरन्ध्र)
अमृतं वर्षन्ती = अमृत की वर्षा करती है, (इस प्रकार जो भक्तजन)
त्वामेव = आपका
स्मरता = ध्यान करते हैं उनकी
वाक् = वाणी
अच्छिन्ना = निरन्तर रूप से
मनोहरा = सुन्दर
ललिता = सभी दोषों से रहित, होने के फलस्वरूप
अतिप्रसन्ना (सती) = निर्मल बनी हुई
सर्वतः = सब ओर से
वल्गति = प्रसारित होती है।

अनुवाद

हे महादेव की शक्ति देवी ! आप भगवान् शिवरूपी अत्यन्त श्वेत कमल-स्वरूप आसन पर विराजमान हैं। आप बर्फ जैसी श्वेत दीप्ति वाली हैं। आप ब्रह्मस्थान के अधोवक्त्र मूलाधार में और ऊर्ध्ववक्त्र ब्रह्मरन्ध्र में परमानन्द रूपी अमृत की वर्षा करती हैं। इस प्रकार जो भक्त-जन, आपका ध्यान करते हैं, उनकी वाणी निरन्तर रूप से मनोहर, सुन्दर तथा (सभी दोषों से रहित होने के फलस्वरूप) निर्मल बनी हुई सब ओर प्रसारित होती हैं अर्थात् वे भक्त उच्चकोटि की कवित्वशक्ति प्राप्त करते हैं।

ददातीष्टान्भोगान्क्षपयति रिपून्हन्ति विपदो
दहत्याधीन्व्याधीञ्छमयति सुखानि प्रतनुते।
हठादन्तर्दुःखं दलयति पिनष्टीष्टविरहं
सकृद्ध्याता देवी किमिव निरवद्यं न कुरुते।। १३।।

पदच्छेद अन्वय सहित

ददाति इष्टान् भोगान् क्षपयति रिपून् हन्ति विपदः
दहति आधीन् व्याधीन् शमयति सुखानि प्रतनुते।
हठात् अंतर्दुःखं दलयति पिनष्टि इष्टविरहम्
सकृत् ध्याता देवी किम् इव निर वद्यं न कुरुते।। १३।।

देवी सकृद्ध्याता इष्टान्भोगान् ददाति, रिपून् क्षपयति, विपदः हन्ति, आधीन् दहति, व्याधीन् शमयति, सुखानि प्रतनुते, अन्तर्दुःखं हठात् दलयति (एवं) इष्ट-विरहं पिनष्टि (इत्येवं) तत्किमस्ति (यत्) निरवद्यं न कुरुते।। १३।।

शब्दार्थ

देवी सकृत्ध्याता = देवी यदि एक बार भी (भक्त के द्वारा)
ध्यातासि = ध्यान की गई हो, तो वह उस भक्त के
इष्टान् भोगान् = अभिलषित भोगों को
ददाति = देती है
रिपून = शत्रुओं को
क्षपयति = नष्ट करती है
विपदः = विपदाओं को
हन्ति = मार भगाती है
आधीन् = मानसिक पीड़ाओं को
दहति = जला देती है
व्याधीन् = शारीरिक रोगों का
शमयति = शमन करती है
सुखानि = सुखों को
प्रतुनते = बढ़ाती है
अन्तर्दुःखं = आन्तरिक दुःखों को
हठात् = हठपूर्वक
दलयति = नष्ट करती है
इष्टविरहं = अभीष्ट की अप्राप्ति को
पिनष्टि = पीस डालती है
एवं = इस प्रकार
किमिवनिरवद्यं = अपने भक्त की कौन सी चाही हुई इच्छा
न कुरुते = पूरी नहीं करती ।।

अनुवाद

देवी यदि एक बार भी (भक्त के द्वारा) ध्यान की गई हो तो वह उस भक्त को अभिलषित भोगों को देती है। शत्रुओं को नष्ट करती है। विपदाओं को मार भगाती है। मानसिक पीड़ाओं को जला देती है। शारीरिक रोगों का शमन करती है। सुखों को बढ़ाती है अर्थात् सुख ही सुख देती है। आन्तरिक दुःखों को हठ-पूर्वक नष्ट करती है और अभीष्ट की अप्राप्ति को पीस डालती है। इस प्रकार अपने भक्त की कौन-सी चाही हुई इच्छा को पूरा नहीं करती।। १३।।

यस्त्वां ध्यायति वेत्ति विन्दति जपत्यालोकते चिन्तय-
त्यन्वेति प्रतिपद्यते कलयति स्तौत्याश्रयत्यर्चति।
यश्च त्र्यम्बकवल्लभे ! तव गुणानाकर्णयत्यादरा-
त्तस्य श्रीर्न गृहादपैति विजयस्तस्याग्रतो धावति ।। १४।।

पदच्छेद अन्वय सहित

यः त्वां ध्यायति वेत्ति विन्दति जपति आलोकते चिन्तयति
अन्वेति प्रतिपद्यते कलयति स्तौति आश्रयति अर्चति।
यः च त्र्यम्बकवल्लभे ! तव गुणान् आकर्णयति आदरात्
तस्य श्रीः न गृहात् अपैति विजयः तस्य अग्रतः धावति।। १४।।

हे त्र्यम्बकवल्लभे ! यस्त्वां ध्यायति, वेत्ति, विन्दति, जपति, आलोकते, चिन्तयति, अन्वेति, प्रतिपद्यते, कलयति, स्तौति, आश्रयति, अर्चति। यश्च तव गुणान् आदरात् आकर्णयति, तस्य श्रीः गृहात् न अपैति, विजयः तस्य अग्रतः धावति।। १४।।

शब्दार्थ

हे त्र्यम्बक वल्लभे ! = हे महादेव की प्रिया भगवती !
यः = जो भक्त
त्वां = आपका
ध्यायति = ध्यान करे
वेत्ति = आपको भलीभांति जाने
विन्दति = आपको प्राप्त करे
जपति = आपका जप करे
आलोकते = आपका साक्षात्कार करे
चिन्तयति = आपका चिन्तन करे
अन्वेति = आपका अनुसरण करे
प्रतिपद्यते = आपकी शरण में आये
कलयति = आपके स्वरूपानुसंधान करने में तत्पर रहे (आपका विमर्श करे)
स्तौति = आपकी स्तुति करे
आश्रयति = आपका आश्रय ग्रहण करे
अर्चति = आपकी पूजा करे
यश्च = जो
तव गुणान् = तुम्हारे गुणों का
आदरात् = बड़े आदर से
आकर्णयति = श्रवण करे
तस्य = उसके
गृहात् = घर से
श्रीः = मोक्षप्रदा लक्ष्मी
न अपैति = कभी नहीं भागती और
विजयः = विजय लक्ष्मी
अग्रतः = उस भक्त के आगे-आगे
धावति = दौड़ती रहती है।

अनुवाद

हे महादेव की प्रिय भगवती ! जो भक्त आपका ध्यान करे, आपको भली भांति जाने, आपको प्राप्त करे, आपका जप करे और आपका साक्षात्कार करे, एवं आपका

चिन्तन करे, आपके स्वरूपानुसंधान करने में तत्पर रहे, आपकी स्तुति करे या आपका आश्रय ग्रहण करे, आपकी पूजा करे अथवा बड़े आदर से आपके गुणों का श्रवण करे, उसके घर से सांसारिक और मोक्षप्रदा लक्ष्मी कभी नहीं भागती और विजय-लक्ष्मी उस भक्त के आगे-आगे दौड़ती रहती है॥ १४॥

किं किं दुःखं दनुजदलिनि ! क्षीयते न स्मृतायां
का का कीर्तिः कुलकमलिनि ! ख्याप्यते न स्तुतायाम्
का का सिद्धिः सुरवरनुते ! प्राप्यते नार्चितायां
कं कं योगं त्वयि न चिनुते चित्तमालम्बितायाम्॥ १५॥

पदच्छेद अन्वय सहित

किं किं दुःखं दनुज-दलिनि ! क्षीयते न स्मृतायाम्
का का कीर्तिः कुलकमलिनि ! ख्याप्यते न स्तुतायाम्
का का सिद्धिः सुरवरनुते ! प्राप्यते न अर्चितायाम्
कं कं योगं त्वयि न चिनुते चित्तम् आलम्बितायाम्॥ १५॥

हे दनुजदलिनि ! (त्वयि) स्मृतायां किं किं दुःखं न क्षीयते। हे कुल कमलिनि ! (त्वयि) स्तुतायां का का कीर्तिः न ख्याप्यते हे सुरवरनुते (त्वयि) अर्चितायां का का सिद्धिः न प्राप्यते। (एवं) त्वयि चित्तमालम्बितायां कं कं योगं न चिनुते॥ १५॥

शब्दार्थ

दनुजदलिनि ! = हे राक्षसों की संहार करने वाली !
(त्वयि = आपका)
स्मृतायां = स्मरण करने पर
किं किं दुःखं = कौन-कौन से दुःख
न क्षीयते = नष्ट नहीं होते
कुल कमलिनि ! = हे जगत् रूपी कुल में क़मल के समान आह्लाद देने वाली
(त्वयि = आपके)
स्तुतायां = स्तुति करने पर
का का कीर्तिः = कौन कौन सी कीर्ति
न ख्याप्यते = प्राप्त नहीं होती है
सुरवरनुते ! = हे देववर इन्द्र के द्वारा स्तुति की गई भगवती
(त्वयि = आपकी)
अर्चितायां = अर्चना करने पर
का का सिद्धिः = कौन-कौन सी सिद्धि
न प्राप्यते = प्रकट नहीं होती
(एवं = और)
त्वयि = आपको, (जिस भक्त ने)
चित्तं = अपने हृदय में
आलम्बितायां = स्थान दिया हो
कं कं योगं = तो उसे कौन-कौन सा योग
न = नहीं
चिनुते = प्राप्त होता।

अनुवाद

हे राक्षसों को मारने वाली ! आपका स्मरण करने पर कौन से दुःख नष्ट नहीं होते। हे जगत रूपी कुल में कमल के समान आह्लाद देने वाली ! आपकी स्तुति करने पर कौन-सी कीर्ति प्राप्त नहीं होती। हे देववर इन्द्र के द्वारा स्तुति की गई भगवती ! आपकी अर्चना करने पर कौन-सी सिद्धि प्रकट नहीं होती और जिस भक्त ने अपने हृदय में आपको स्थान दिया हो तो उसे कौनसा योग प्राप्त नहीं होता, अर्थात् वह भक्त योग की सभी सिद्धियों को प्राप्त कर लेता है। यह है आपकी नाम-स्मरण की महिमा।। १५।।

विशेष—राक्षस असत् विचारों के प्रतीक हैं।

ये देवि ! दुर्धरकृतान्तमुखान्तरस्थाः
ये कालि ! कालघनपाशनितान्त बद्धाः।
ये चण्डि ! चण्डगुरुकल्मषसिन्धुमग्ना-
स्तान्पासि मोचयसि तारयसि स्मृतैव।। १६।।

पदच्छेद अन्वय सहित

ये देवि ! दुर्धर कृतान्त मुख अन्तरस्थाः
ये कालि ! कालघनपाश नितान्त बद्धाः।
ये चण्डि ! चण्ड गुरु कल्मष सिन्धुमग्नाः
तान् पासि मोचयसि तारयसि स्मृता एव।। १६।।

हे देवि ! ये दुर्धरकृतान्तमुखान्तरस्थाः, हे कालि ! ये कालघनपाश-नितान्तबद्धाः, हे चण्डि ! ये चण्डगुरु-कल्मषसिन्धुमग्नाः, तैः स्मृता त्वं तान्पासि, मोचयसि तथा तारयसि।। १६।।

शब्दार्थ

देवि ! = हे देवी !
ये = जो जन
दुर्धर = भयंकर
कृतान्त = काल के
मुखान्तरस्थाः = मुख में प्रविष्ट हुए हों
कालि ! = हे काली!
ये = जो जन
काल = महाकाल के
घन = घने तथा दृढ़
पाश = फण-पांश में
नितान्त = भली भांति
बद्धाः = बान्धे गये हों

चण्डि = हे चण्डी!
ये = जो जन
चण्ड = भयंकर
गुरु कल्मष = भारी पाप रूपी
सिन्धु = सागर में
मग्नाः = डूब गये हों
(तैः = उनसे)
स्मृता = याद की गई
(त्वं = आप)
तान् = उन्हें
पासि = महाकाल के मुख में जाने से रक्षा करती हो
मोचयसि = मृत्यु की जंजीरों से छुटकारा दिलाती हो
(तथा = और)
तारयसि = पाप रूपी समुद्र से पार करती हो।

अनुवाद

हे देंवी ! जो जन भयंकर काल के मुख में प्रविष्ट हुए हों, हे काली ! जो महाकाल के घने तथा दृढ़ फण-पाश में भली भांति बान्धे गये हों, और हे चण्डी! जो भयंकर पाप रूपी समुद्र में डूब गये हों, वे यदि वैसी आपत्तियों में आपका स्मरण करें तो आप (क्रम-पूर्वक) उन्हें महाकाल के मुख में जाने से रक्षा करती हैं, मृत्यु की जंजीरों से छुटकारा दिलाती हैं और पाप रूपी समुद्र से पार ले जाती हैं।। १६।।

लक्ष्मीवशीकरणचूर्णसहोदराणि
त्वत्पादपङ्कजरजांसि चिरं जयन्ति।
यानि प्रणाममिलितानि नृणां ललाटे
लुम्पन्ति दैवलिखितानि दुरक्षराणि।। १७।।

पदच्छेद अन्वय सहित

लक्ष्मी वशीकरणचूर्ण सह उदराणि
त्वत् पादपङ्कजरजांसि चिरं जयन्ति।
यानि प्रणाममिलितानि नृणां ललाटे
लुम्पन्ति दैव लिखितानि दुर्-अक्षराणि।। १७।।

(हे देवि !) लक्ष्मीवशीकरण चूर्णसहोदराणि त्वत्पादपंकजरजांसि चिरं जयन्ति। यानि नृणां ललाटे प्रणाममिलितानि दैवलिखितानि दुरक्षराणि लुंपन्ति।। १७।।

शब्दार्थ

देवि ! = हे देवी !
त्वत् = आपके
पादपंकज = चरणकमलों की
रजांसि = धूलि

लक्ष्मीवशीकरण = लक्ष्मी को वश करने रूपी
चूर्ण = चूर्ण (औषधी) की
सहोदराणि = सगी बहिन है, (अतः वह धूलि)
चिरं जयन्ति = अनन्त समय के लिए विजयिनी है।
यानि = वही धूलि के कण, (आपको)
प्रणाम = प्रणाम करने के समय
नृणां = मनुष्यों के
ललाटे = मस्तक में
मिलितानि = केवल लगने से ही
दैवलिखितानि = भाग्य में लिखित
दुरक्षराणि = बुरे अक्षरों को
लुम्पन्ति = एक क्षण में मिटा देती है।

अनुवाद

हे देवी ! आपके चरण-कमलों की धूलि लक्ष्मी-वशीकरण-रूपी चूर्ण की सगी बहिन है, अतः वह धूलि अनन्त समय के लिए विजयिनी है। वही धूलि के कण आपको प्रणाम करने के समय मनुष्यों के मस्तक में केवल लगने से ही भाग्य में लिखित बुरे अक्षरों को एक क्षण में मिटा देती है। भाव यह है कि आपके चरणों में नतमस्तक होकर मस्तक में लिखे हुए बुरे अक्षर एक बारगी मिट जाते हैं।। १७।।

रे मूढाः ! किमयं वृथैव तपसा कायः परिक्लिश्यते
यज्ञैर्वा बहुदक्षिणैः किमितरे रिक्तीक्रियन्ते गृहाः।
भक्तिश्चेदविनाशिनी भगवतीपादद्वयी सेव्यता-
मुन्निद्राम्बुरुहातपत्रसुभगा लक्ष्मीः पुरोधावति।। १८।।

पदच्छेद अन्वय सहित

रे मूढाः ! किं अयं वृथा एव तपसा कायः परिक्लिश्यते ?
यज्ञैः वा बहुदक्षिणैः किं इतरे रिक्ती क्रियन्ते गृहाः ?
भक्तिः चेत् अविनाशिनी भगवती पादद्वयी सेव्यताम्
उन्निद्र अम्बुरुह आतपत्रसुभगा लक्ष्मीः पुरः धावति।। १८।।

रे मूढाः ! अयं कायः तपसा किं वृथैव परिक्लिश्यते, अथवा बहुदक्षिणैर्यज्ञैः इतरे गृहाः किं रिक्तीक्रियन्ते, चेत् अविनाशिनी भक्तिः (अस्ति) (तार्हि) भगवतीपादद्वयी सेव्यताम्, (इत्येवं) उन्निद्राम्बुरुहातपत्रसुभगा लक्ष्मीः पुरः धावति।। १८।।

शब्दार्थ

रे मूढाः = हे मूर्ख पुरुषो !
अयं = इस
कायः = शरीर को
तपसा = तपस्या करके

किं = भला क्यों
वृथैव = व्यर्थ ही
परिक्लिश्यते = दुःख देते हो ?
यज्ञैः = यज्ञादिकों में
बहुदक्षिणैः = (ब्राह्मणों को) बहुत दक्षिणा देकर, (अथवा)
इतरे = अन्यान्य (दूसरे-दूसरे दानादिकों को देकर)
गृहाः = अपने घरों को
रिक्तीक्रियन्ते = संपत्ति रहित बना देते हो ?
चेत् = यदि, (तुममें)
अविनाशिनी भक्तिः = नाशरहित भक्ति है तो
भगवती = माता के
पादद्वयी = चरण कमलों का
सेव्यतां = सेवन कीजिये
(**इत्येवं** = ऐसा करने से)
उन्निद्र = प्रफुल्लित
अम्बुरुह = कमल
आतपत्र = पत्रों की तरह
सुभगा = सुन्दर बनी हुई
लक्ष्मीः = मोक्षलक्ष्मी
पुरः = आगे-आगे
धावति = दौड़ेगी अर्थात् तुम उस मोक्षलक्ष्मी को प्राप्त करोगे।

अनुवाद

हे मूर्ख पुरुषो ! तुम व्यर्थ ही तपस्या करके भला क्यों अपने शरीर को दुःख देते हो ? यज्ञादिकों में ब्राह्मणों को बहुत दक्षिणा देकर अथवा अन्यान्य (दानादिकों) को देकर अपने घरों को क्यों संपत्ति-रहित बना देते हो? यदि तुम में नाश रहित भक्ति है और तुम भगवती के चरणों का सेवन करोगे तो प्रफुल्लित कमल-पत्रों की तरह सुन्दर बनी हुई मोक्षलक्ष्मी तुम्हारे आगे-आगे दौड़ेगी, अर्थात् तुम उस मोक्षलक्ष्मी को प्राप्त करोगे।। १८।।

विशेष—मूढाः शब्द द्वैत, भ्रम और मोह पंक में फंसे हुए लोगों का वाचक है।

याचे न कंचन न कंचन वञ्चयामि
सेवे न कंचन निरस्तसमस्तदैन्यः।
श्लक्ष्णं वसे मधुरमद्मि भजे वरस्त्रीं-
देवी हृदि स्फुरति मे कुलकामधेनुः।। १९।।

पदच्छेद अन्वय सहित

याचे न कंचन न कंचन वञ्चयामि
सेवे न कंचन निरस्त समस्त दैन्यः।
श्लक्ष्णं वसे मधुरं अद्मि भजे वरस्त्रीं
देवी हृदि स्फुरति मे कुलकामधेनुः।। १९।।

(अहं) न कंचन याचे, न कंचन वञ्चयामि, न कंचन सेवे। (अहं) निरस्तसमस्तदैन्यः। (तथापि अहं) श्लक्ष्णं वसे, मधुरम् अद्मि, वरस्त्रीं (च) भजे। (तत्त्वदृष्टया) मे हृदि कुलकाम-धेनुः देवी स्फुरति।। १९।।

शब्दार्थ

(अहं = मैं)
न = न तो
कंचन = किसी से
याचे = कोई वस्तु मांगता ही हूँ
न कंचन = न किसी को
वञ्चयामि = धोखा देकर (धन प्राप्त करता हूँ)
न कंचन = न किसी की
सेवे = दासवृत्ति ही करता हूँ, (अतः मैंने)
निरस्तसमस्त दैन्यः = सभी दीनता दूर की है
(तथापि अहं = किन्तु आश्चर्य यह है कि न मांगने पर भी मैं)
श्लक्ष्णं = रेशमी आदि कोमल वस्त्र ही
सेवे = पहनता हूँ
मधुरं = मधुरस्वादिष्ट भोजन हीं
अद्मि = खाता हूँ
वरस्त्रीं = सर्वोच्च पराशक्ति का ही
भजे = सेवन करता हूँ। हे देवि ! वस्तुतः यह (सभी प्रभाव मुझे तभी प्राप्त है जबकि)
देवी = आप देवी
मे = मेरे
हृदि = हृदय में
कुल कामधेनु = स्वार्गिक कामधेनु की भांति
स्फुरति = विराजमान रहती हैं।

अनुवाद

मैं किसी से न तो कोई वस्तु मांगता ही हूं, न किसी को धोखा देकर धन प्राप्त करता हूं और न किसी की दास-वृत्ति ही करता हूं, अतः मैंने सभी दीनता दूर की है। किन्तु आश्चर्य यह है कि न मांगने पर भी मैं रेशमी आदि कोमल वस्त्र ही पहनता हूं, मधुर स्वादिष्ट भोजन ही खाता हूं और सर्वोत्तर पराशक्ति का ही सेवन करता हूं। हे देवि ! वस्तुतः यह सभी प्रभाव मुझे तभी प्राप्त है जबकि आप मेरे हृदय में विकसित होकर स्वार्गिक कामधेनु की भांति विराजमान रहती हैं।। १९।।

शब्दब्रह्ममयि ! स्वच्छे देवि त्रिपुरसुन्दरि !
यथाशक्ति जपं पूजां गृहाण परमेश्वरि।। २०।।

पदच्छेद अन्वय सहित

शब्दब्रह्ममयि ! स्वच्छे ! देवि ! त्रिपुरसुन्दरि !
यथाशक्ति जपं पूजां गृहाण परमेश्वरि ! ।। २०।।

हे शब्दब्रह्ममयि ! हे स्वच्छे देवि ! त्रिपुरसुन्दरि ! परमेश्वरि ! यथाशक्ति जपं पूजां गृहाण।। २०।।

शब्दार्थ

शब्दब्रह्ममयि ! = हे शब्दब्रह्मस्वरूपा परादेवी!
स्वच्छे = हे निर्मल चित्स्वरूपा
देवि = सृष्टि स्थिति रूप पंचकृत्य क्रीडा करने वाली
त्रिपुरसुन्दरि = हे तीनों लोकों में व्यापिनी
परमेश्वरि = हे परमेश्वर की स्वातन्त्र्य शक्ति!
यथाशक्ति = अपनी शक्ति के अनुसार (जो कोई) जो भी,
पूजां = पूजा (अथवा)
जपं = जप करता है (उसे आप)
गृहाण = (सहर्ष) स्वीकार कीजिये।

अनुवाद

हे शब्दब्रह्म-स्वरूपा परा देवी ! हे निर्मल त्रिपुरा देवी ! हे परमेश्वरी ! मैं अपनी शक्ति के अनुसार जो भी पूजा अथवा जप करता हूं, उसे आप (सहर्ष) स्वीकार कीजिए।। २०।।

विशेष–परमेश्वरी परावाक् की प्रतीक है। शब्द ब्रह्ममयी पश्यन्ती वाक् की प्रतीक है 'स्वच्छे' मध्यमा वाक् की प्रतीक है। 'त्रिपुरसुन्दरि वैरवरी से सम्बद्ध है। शैव मत में परमशिव तत्त्वातीत है, शाक्तमत में वही स्थान त्रिपुर-सुन्दरी का है। त्रिपुरा के उपासक चन्द्ररूप से उपासना करते हैं। चन्द्रमा की षोडशीकला 'अमा' है जिसका उदयास्त नहीं होता है। इसे नित्यषोडशिका कहते हैं। इसी को अखण्डा, अमृतस्वरूपा महात्रिपुरसुन्दरी कहते हैं।

शब्दब्रह्म = शब्दजातं अशेषं तु धत्ते शर्वस्य वल्लभा।
अर्थस्वरूपं अखिलं धत्ते मुग्धेन्दुशेखरः।।

अर्थात् शब्दजाल वाहिका महात्रिपुरसुन्दरी है और समस्त अर्थ स्वरूप का वाहक चन्द्रशेखर है। इस प्रकार दोनों का यामल रूप शब्दब्रह्म है।

नन्दन्तु साधकाः सर्वे विनश्यन्तु विदूषकाः।
अवस्था शाम्भवी मेऽस्तु प्रसन्नोऽस्तु गुरुः सदा।। २१।।

पदच्छेद अन्वय सहित

नन्दन्तु साधकाः सर्वे विनश्यन्तु विदूषकाः।
अवस्था शाम्भवी मे अस्तु प्रसन्नः अस्तु गुरुः सदा।। २१।।

सर्वे साधकाः नन्दन्तु ! सर्वे विदूषकाः नश्यन्तु ! मे शाम्भवी अवस्था अस्तु ! (तथा) गुरुः सदा प्रसन्नोऽस्तु।। २१।।

शब्दार्थ

सर्वे साधकाः = सभी भक्तजन-साधकजन
नन्दन्तु = प्रसन्न रहें अर्थात् स्वरूप लाभ के

इच्छुक सदा स्वस्थ रहें
सर्वे विदूषकाः = सारे विघ्न अर्थात् स्वरूप समावेश के व्याघात
विनश्यन्तु = नष्ट होवें
मे = मुझे
शाम्भवी अवस्था = शाम्भवी परा अवस्था
अस्तु = प्राप्त हो
प्रसन्नोऽस्तु = प्रसन्न रहे
गुरुः = गुरुदेव
सदा = हमेशा (मुझ पर)।

अनुवाद

सभी साधक-जन अर्थात् भक्त-जन प्रसन्न रहें ! सारे विघ्न नष्ट हो जायें। शाम्भवी परा अवस्था मुझे प्राप्त हो और गुरु-देव मुझ पर सदा प्रसन्नरहें ! (यही अभिलाषा है)।। २१।।

दर्शनात्पापशमनी जपान्मृत्युविनाशिनी।
पूजिता दुःखदौर्भाग्यहरा त्रिपुरसुन्दरी।। २२।।

पदच्छेद अन्वय सहित

दर्शनात् पापशमनी जपात् मृत्यु-विनाशिनी।
पूजिता दुःख-दौर्भाग्यहरा त्रिपुरसुन्दरी।। २२।।

(भगवती) त्रिपुरसुन्दरी दर्शनात् पापशमनी, जपात् मृत्यु-विनाशिनी, (तथा) पूजिता (सती) दुःखदौर्भाग्यहरा (भवति)।। २२।।

शब्दार्थ

त्रिपुरसुन्दरी = जगदम्बा भगवती
दर्शनात् = दर्शनमात्र से ही
पापशमनी = पापों को नष्ट करती हैं
जपात् = जप करने से
मृत्यु विनाशिनी = मृत्यु का नाश करती हैं
पूजिता = पूजा करने से
दुःखदौर्भाग्यहरा = सारे दुःखों तथा दुर्भाग्यों को दूर करती हैं।

अनुवाद

आप जगदम्बा त्रिपुरसुन्दरी भगवती दर्शन-मात्र से ही सभी पापों को नष्ट करती हैं, जप करने से मृत्यु का नाश करती हैं अर्थात् मुक्त बना देती हैं और पूजा करने से समस्त दुःखों तथा कुभाग्यों को दूर करती हैं।। २२।।

विशेष—पूजिता - स्वात्मस्वरूप बोधभैरव का साक्षात्कार ही भक्तों की पूजा है। अनाहतनादमय स्वरूप का बार-बार परामर्श करना ही जप है।

नमामि यामिनीनाथलेखालङ्कृतकुन्तलाम्।

भवानीं भवसन्तापनिर्वापणसुधानदीम्।। २३।।

अन्वय पदच्छेद-सहित

नमामि यामिनी नाथ लेखा अलंकृत कुन्तलाम्।
भवानीं भवसन्ताप निर्वापण सुधानदीम्।। २३।।

(अहं) यामिनीनाथलेखालङ्कृतकुन्तलां भवसन्तापनिर्वापण-सुधानदीं भवानीं नमामि।। २३।।

शब्दार्थ

नमामि = प्रणाम करता हूँ
यामिनी नाथ = चन्द्रमा की
लेखा = कला से
अलंकृत = सुशोभित बनाये हुए
कुन्तलां = केशों अर्थात् शक्ति चक्रों से युक्त बनी हुई
भव = संसार के सन्ताप-दुःखों को
निर्वापण = हटाने में
सुधानदी = अमृत की नदी के समान सुख देने वाली
भवानीं = माता पार्वती को।

अनुवाद

मैं चन्द्र-लेखा से सुशोभित बनाये हुए केशों अर्थात् शक्ति-चक्रों से युक्त बनी हुई पार्वती भगवती को नमस्कार करता हूं जो संसार के दुःखों को हटाने में अमृत की नदी के समान सुख देने वाली है।। २३।।

मन्त्रहीनं क्रियाहीनं विधिहीनं च यदगतम्।
त्वया तत्क्षम्यतां देवि ! कृपया परमेश्वरि ! ।। २४।।

पदच्छेद अन्वय सहित

मन्त्रहीनं क्रियाहीनं विधिहीनं च यत् गतम्।
त्वया तत् क्षम्यतां देवि ! कृपया परमेश्वरि ! ।। २४।।

हे देवि ! यत् मन्त्रहीनं, क्रियाहीनं, च विधिहीनं गतम्, तत् त्वया क्षम्यतां कृपया, हे परमेश्वरि ! ।। २४।।

शब्दार्थ

देवि ! = हे देवी !
यत् = जो
मन्त्रहीनं = मन्त्र रहित
क्रियाहीनं = क्रिया रहित
च = और
विधिहीनं = विधि रहित

गतं = जो कुछ भी मुझसे हुआ है
परमेश्वरि = हे माता !
कृपया = कृपा करके
तत् = उस सब कुछ के लिए
क्षम्यतां = क्षमा कीजिये।।

अनुवाद

हे परमेश्वरी देवी ! मन्त्र-रहित, क्रिया-रहित अथवा विधि-रहित जो कुछ भी मुझसे हुआ है, हे माता ! आप उस सब कुछ के लिए कृपा करके मुझे क्षमा कीजिए।। २४।।

इति श्री पञ्चस्तव्यां घटस्तवः तृतीयः समाप्तः।।

अथ पञ्चस्तव्यामऽम्बास्तवश्चतुर्थः

उों यामामनन्ति मुनयः प्रकृतिं पुराणीं
विद्येति यां श्रुतिरहस्यविदोवदन्ति।
तामर्धपल्लवितशङ्कररूपमुद्रां
देवीमनन्यशरणः शरणं प्रपद्ये।। १।।

पदच्छेद अन्वय सहित

याम् आमनन्ति मुनयः प्रकृतिं पुराणीम्
विद्या इति यां श्रुतिरहस्य विदः वदन्ति।
तां अर्ध पल्लवित शङ्कररूप मुद्रां
देवीम् अनन्य शरणः शरणं प्रपद्ये।। १।।

यां मुनयः पुराणीं प्रकृतिम् आमनन्ति, यां च श्रुतिरहस्यविदः विद्या-इति वदन्ति ताम् अर्धपल्लवितशंकररूपमुद्रां देवीम् (अहम्) अनन्यशरणः शरणं प्रपद्ये।। १।।

शब्दार्थ

याम् = जिसे
मुनयः = मुनिजन
पुराणीं = आद्य
प्रकृतिं = पराप्रकृति
आमनन्ति = कहते हैं
यां च = और जिसे
श्रुतिरहस्य = वेदों और शास्त्रों के रहस्य को
विदः = जानने वाला आचार्य वर्ग
विद्या इति वदन्ति = विद्या नाम से विभूषित करता है, 'जिसने'
अर्ध पल्लवित = अपने अर्ध शरीर के (स्वरूप के) संपर्क से प्रफुल्लित बने हुए
शंकररूप मुद्रां = शंकर के स्वरूप को आनन्द प्रदान किया है
तां = उसी, देवी को (मैं)
अनन्यशरणः = जिसका उस भगवती के बिना कोई सहारा नहीं है
शरणं प्रपद्ये = प्रणाम करता हूँ।

अनुवाद

जिसे सभी मुनि-जन आद्य परा प्रकृति कहते हैं, जिसे वेदान्त-विद आचार्य-वर्ग विद्या नाम से विभूषित करते हैं और जिसने अपने अर्ध-शरीर के संपर्क से प्रफुल्लित बने हुए शंकर के स्वरूप को आनन्द प्रदान किया है उसी भगवती उमा

देवी को मैं (अनन्य-शरण) जिसका उस भगवती के बिना कोई सहारा नहीं, प्रणाम करता हूँ।। १।।

विशेषः- जिसने अपना आधा स्वरूप शिव को अर्पण करके (उसे चैतन्यरूप बना कर) शक्तिमान बनाया है और उसके स्वरूप में अपनी शक्ति की मुद्रा स्थापित की है।

अम्ब ! स्तवेषु तव तावदकर्तृकाणि
कुण्ठीभवन्ति वचसामपि गुम्फनानि।
डिम्बस्य मे स्तुतिरसावऽसमञ्जसापि
वात्सल्यनिघ्नहृदयां भवतीं धिनोति।। २।।

पदच्छेद अन्वय सहित

अम्ब ! स्तवेषु तव तावत् अकर्तृकाणि
कुण्ठीभवन्ति वचसाम् अपि गुम्फनानि।
डिम्बस्य मे स्तुतिः असौ असमञ्जसापि
वात्सल्य निघ्नहृदयां भवतीं धिनोति ।। २।।

अम्ब ! अकर्तृकाणि वचसां गुम्फनानि अपि तावत् तव स्तवेषु कुण्ठीभवन्ति। मे डिम्बस्य असौ स्तुतिः असमञ्जसापि वात्सल्यनिघ्नहृदयां भवतीं धिनोति।। २।।

शब्दार्थ

हे अम्ब ! = हे माता !
अकर्तृकाणि = अपौरुषेय अर्थात् जिनका परमेश्वर के बिना कोई करने वाला नहीं है
वचसां गुम्फनानि अपि = ऐसी वेदों की सुन्दर रचनायें भी
तावत् तवस्तवेषु = तुम्हारी स्तुति करने में
कुण्ठीभवन्ति = कुण्ठित हो जाती हैं
मे डिम्बस्य = मुझ मूर्ख बालक की
असौ स्तुतिः = यह प्रस्तुत स्तुति
असमञ्जसापि = असमीचीन होने पर भी
भवतीं = आपको
धिनोति = अवश्य आकर्षित और प्रसन्न करती ही है, क्योंकि
वात्सल्य निघ्न हृदयां = आपका हृदय भक्तों के प्रेमभाव से सदैव स्नेह से द्रवीभूत होता है। 'धिनोतु' पाठान्तर है।

अनुवाद

हे माता ! तुम्हारी स्तुति करने में अपौरुषेय अर्थात् जिनका परमेश्वर के बिना कोई करने वाला नहीं है ऐसी वेदों की सुन्दर रचनाएं भी कुण्ठित हो जाती हैं। मुझ मूर्ख बालक की यह प्रस्तुत, स्तुति असमीचीन होने पर भी आपको अवश्य

आकर्षित और प्रसन्न करती ही है, क्योंकि आप का हृदय भक्तों के प्रेमभाव से सदैव स्नेह से द्रवीभूत होता है।। २।।

व्योमेति बिन्दुरिति नाद इतीन्दुलेखा-
रूपेति वाग्भवतनूरिति मातृकेति।
निःष्यन्दमानसुखबोधसुधास्वरूपा
विद्योतसे मनसि भाग्यवतां जनानाम्।। ३।।

पदच्छेद अन्वय सहित

व्योम इति बिन्दुः इति नादः इति इन्दुलेखा-
रूपा इति वाक् भवतनूः इति मातृका इति।
निःष्यन्दमान सुखबोध सुधा स्वरूपा
विद्योतसे मनसि भाग्यवतां जनानाम् ।। ३।।

भाग्यवतां जनानां मनसि निःष्यन्दमानसुखबोधसुधास्वरूपा (त्वम्) व्योम इति, बिन्दुरिति, नाद इति, इन्दुलेखारूपा इति, वाग्भवतनूरिति, मातृका-इति च विद्योतसे ।।३।।

शब्दार्थ

हे माता ! (त्वं = आप)
भाग्यवतां जनानां = भाग्यशाली भक्तजनों के
मनसि = हृदय में
सुख बोध सुधा स्वरूपा = परमानन्द और ज्ञानरूप अमृत के स्वरूप से
निष्यन्दमान = प्रवाहित होती हुई
व्योम इति = परमाकाश रूप से
बिन्दुः इति = प्रकाश रूपता से
नाद इति = विमर्शरूपता से
इन्दुलेखारूपा इति = चन्द्रकला रूपता से
वाक्-भव-तनूः इति = सरस्वती के रूप से
मातृका इति च = और पूर्णाहन्तारूप मातृका के स्वरूप से
विद्योतसे = विकसित होती है।

अनुवाद

हे देवी ! आप भाग्यशाली भक्त-जनों के हृदय में, अपने परमानन्द-बोध स्वरूप से प्रवाहित होती हुई-परमाकाश रूप से, प्रकाश-रूपता से, विमर्श-रूपता से, चन्द्र-कला-रूपता से, सरस्वती के रूप से तथा पूर्णाहन्ता रूप मातृका के स्वरूप से विकसित होती हैं।। ३।।

विशेष–व्योम–बोध गगन चिदाकाश अनच्क कला है। भूताकाश या बाह्य आकाश यहां अभिप्रेत नहीं है। विज्ञानभैरवतन्त्र में भी कहा है–

"व्योमाकारं स्वमात्मानं भावयेत् दिग्भिरनावृतम्।"

बिन्दुः इति = परप्रमाता या प्रकाशरूपता को बतलाता है, (The supreme knower not knowable by any means) बृहदारण्यक उपनिषद् में भी कहा है कि 'विज्ञातारमरे केन विजानीयात्' अर्थात् परप्रमाता को किस अन्य से जाना जा सकता है।

नाद इति = अहं विमर्श का द्योतक है। जब बिन्दुः प्रकाश है तो नाद विमर्श है। बिन्दुः शिव है तो नाद शक्ति है।

इन्दु लेखा रूपा इति–अमाकला को जतलाती है।

वाग्भवतनूः इति = सर्वश्रेष्ठ ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती का द्योतक है। अर्थात् परा पश्यन्ती मध्यमा वैखरी की उत्पत्ति रूपा है।

मातृका इति = आदिक्षान्ता मातृका– 'अ' से 'क्ष' तक के समूचे वर्ण समुदाय को मातृका कहते हैं जो क्रिया शक्ति से आवृत्त है तथा जो पूर्णाहन्ता अवस्था है। अच्छी तरह ज्ञात न होने पर यही मातृका जीव को बन्धन में डालती है और यही सम्यक् ज्ञाता (अच्छी-तरह अनुभव की हुई) मुक्तिदायिका बनती है।।

आविर्भवत्पुलकसन्ततिभिः शरीरै-
र्निःष्यन्दमानसलिलैर्नयनैश्च नित्यम्।
वाग्भिश्च गद्गद्पदाभिरुपासते ये
पादौ तवाम्ब ! हृदयेषु ते एव धन्याः।। ४।।

पदच्छेद अन्वय सहित

आविर्भवत् पुलकसन्ततिभिः शरीरैः
निःष्यन्दमान सलिलैः नयनैः च नित्यम्।
वाग्भिः च गद्गद्पदाभिः उपासते ये
पादौ तव अम्ब ! हृदयेषु ते एव धन्याः।। ४।।

हे अम्ब ! आविर्भवत्पुलकसन्ततिभिः शरीरैः, निष्यन्दमान-सलिलैर्नयनैश्च गद्गद्पदाभिर्वाग्भिः ये तव पादौ नित्यम् उपासते, ते एव भुवनेषु धन्याः।। ४।।

शब्दार्थ

हे अम्ब = हे माता !
ये = जो भक्त जन
आविर्भवत् = प्रकट बने हुए
पुलक-सन्ततिभिः = रोमांचों की पंक्तियों से युक्त अर्थात् हर्ष के कारण रोमांचित बने हुए

शरीरैः = शरीरों से
निःष्यन्दमान = बहते हुए
सलिलैः = प्रेमाश्रुओं से युक्त
नयनैः = नेत्रों से, तथा
गद्गद् पदाभिः = गद्गद् भरी
वाग्भिः = वाणियों से
तव = आपके
पादौ = चरणों की
नित्यं = सदा
उपासते = उपासना करते रहते हैं
ते एव = वे ही
भुवनेषु = तीनों भुवनों में
धन्याः = पूर्णरूप से भाग्यशाली हैं।

अनुवाद

हे माता ! जो भक्त-जन, हर्ष के कारण रोमांचित बने हुए शरीरों से बहते हुए प्रेमाश्रुओं से युक्त नेत्रों से तथा गद्गद् भरी वाणियों से आपके चरणों की उपासना सदा करते रहते हैं, वे ही तीनों भुवनों में पूर्णरूपेण भाग्यशाली हैं। भाव यह है कि ऐसे भक्तों का जन्म प्रशंसनीय है।। ४।।

विशेष–'भुवनेषु' के स्थान पर 'हृदयेषु' पाठान्तर है। पादौ = दो चरण अर्थात् ज्ञान शक्ति और क्रिया शक्ति ही दो चरण हैं। स्वरूप साक्षात्कार के समय इन दो शक्तियों के विकास का अनुभव होता है और अमृत रस की प्राप्ति होती है, भक्तजन ही इसका आस्वाद लेते हैं।

वक्त्रं यदुद्यतमभिष्टुतये भवत्या-
स्तुभ्यं नमो यदपि देवि ! शिरः करोति।
चेतश्च यत्त्वयि परायणमम्ब ! तानि
कस्यापि कैरपि भवन्ति तपोविशेषैः ।। ५।।

पदच्छेद अन्वय सहित

वक्त्रं यत् उद्यतम् अभिष्टुतये भवत्याः
तुभ्यम् नमः यत् अपि देवि ! शिरः करोति।
चेतः च यत् त्वयि परायणम् अम्ब ! तानि
कस्य अपि कैः अपि भवन्ति तपः विशेषैः।। ५।।

हे देवि ! यद्वक्त्रं भवत्याः अभिष्टुतये उद्यतम्। यदपि शिरः तुभ्यं नमः करोति। हे अम्ब ! यत् चेतः त्वयि परायणम्। तानि कस्यापि कैरपि तपोविशेषैः भवन्ति।। ५।।

शब्दार्थ

हे देवि ! = हे माता!
यत् वक्त्रं = जो मुख
भवत्याः = आपकी
अभिष्टुतये = स्तुति करने में

उद्यतं = लगा हो
यदपि शिरः = जो सिर
तुभ्यं नमः = आपको भक्ति से नमस्कार
करोति = करता हो
हे अम्बः ! = हे मां !
यत् हृदयं = जो हृदय
त्वयि परायणं =आपके ध्यान में तत्पर बना हो
तानि = वे मुख सिर तथा हृदय
कस्यापि = किसी भाग्यशाली व्यक्ति को
कैः अपि = किन्हीं
तपोविशेषैः = अलौकिक विशेष तपस्याओं के फलस्वरूप
भवन्ति = प्राप्त होते हैं।

अनुवाद

हे देवी ! जो मुख आपकी स्तुति करने में लगा हो, जो शिर आपको भक्ति से नमस्कार करता हो और हे माता ! जो हृदय आपके ध्यान में तत्पर बना हो, वे मुख, सिर तथा हृदय किसी ही भाग्यशाली व्यक्ति को किन्हीं अलौकिक विशेष तपस्याओं के फल-स्वरूप प्राप्त होते हैं।। ५।।

विशेष–श्रीमद्भगवद्गीता में भी कहते हैं कि–

"मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चित् यतति सिद्धये।"

अर्थात् – हजारों प्राणियों में कोई एक विरला ही होता है जो विशेष सिद्धि के लिए प्रयत्न करता है।।

मूलालवालकुहरादुदिता भवानि !
निर्भिद्य षट्सरसिजानि तडिल्लतेव।
भूयोऽपि तत्र विशसि ध्रुवमण्डलेन्दु-
निःष्यन्दमानपरमामृततोयरूपा।। ६।।

पदच्छेद अन्वय सहित

मूल आलवाल कुहरात् उदिता भवानि !
निर्भिद्य षट् सरसिजानि तडित् लता इव।
भूयः अपि तत्र विशसि ध्रुवमण्डल इन्दु-
निःष्यन्दमान परम अमृत तोयरूपा।। ६।।

हे भवानि ! मूलालवालकुहरात् तडिल्लतेव उदिता (त्वं) षट् सरसिजानि निर्भिद्य ध्रुवमण्डलेन्दुनिःष्यन्दमानपरमामृततोयरूपा (सती) तत्र भूयोऽपि विशसि।। ६।।

शब्दार्थ

हे भवानि ! = हे भवानी !
(**त्वं** = आप)
मूल = मूलाधार के
आलवाल = (वृक्षों की जड़ के पास, जल-सिंचन के लिए बनाया हुआ) गोलाकार स्थान रूपी
कुहरात् = अर्थात् रन्ध्र से
तडित् लतेव = बिजली की रेखा की भांति
उदिता = उदित होकर
षट् सरसिजानि = षट्चक्र रूपी कमलों को
निर्भिद्य = फाड़कर
भूयः अपि = फिर मुड़कर
विशसि = उसी मूलाधार में प्रवेश करती है
ध्रुवमण्डलेन्दु = ब्रह्मरन्ध्र मण्डल के सहस्रार चक्र में अवस्थित अमाकलारूपी
निःष्यन्दमान = परमानन्द से प्रवाहित
परमामृत तोयरूपा = उत्कृष्ट अमृत जल से समस्त शरीर को अमृतमय बना देती है।

अनुवाद

हे भवानी ! आप मूलाधार के आलवाल (वृक्षों की जड़ के पास जल-सिंचन के लिए बनाया हुआ गोलाकार स्थान) रूपी कुहर अर्थात् रन्ध्र से बिजली की रेखा की भांति उदित होकर षट्चक्ररूपी कमलों का भेदन करती हैं तदनन्तर पुनः उसी मूलाधार में प्रवेश करती हैं। इस भांति ब्रह्म-रन्ध्र मण्डल के सहस्रारचक्र में अवस्थित अमाकला रूपी परमानन्द से प्रवाहित उत्कृष्ट अमृत-जल से समस्त शरीर को अमृतमय बना देती हैं। तात्पर्य यह है कि जब कुण्डलिनी शक्ति का उदय साधक के शरीर में होता है तो उसका समस्त शरीर परमामृत-रस से सींचा जाता है।। ६।।

दग्धं यदा मदनमेकमनेकधा ते
मुग्धः कटाक्षविधिरङ्कुरयांचकार।
धत्ते तदा प्रभृति देवि ! ललाटनेत्रं
सत्यं ह्रियेव मुकुलीकृतमिन्दुमौलिः।। ७।।

पदच्छेद अन्वय सहित

दग्धं यदा मदनम् एकम् अनेकधा ते
मुग्धः कटाक्ष विधिः अङ्कुरयांचकार।
धत्ते तदा प्रभृति देवि ! ललाटनेत्रम्
सत्यं ह्रिया इव मुकुली कृतम् इन्दुमौलिः।। ७।।

हे देवि ! यदा एकं मदनं दग्धं, (तदा) ते मुग्धः कटाक्षविधिः अनेकधा (तम्)

अंकुरयाञ्चकार। सत्यम् (एतत् यत्) तदा प्रभृति इन्दुमौलिः ललाटनेत्रं ह्रिया इव मुकुलीकृतं धत्ते।। ७।।

शब्दार्थ

हे देवि ! = हे देवी
यदा = जब
एकं मदनं दग्धं = शिव ने एक कामदेव को अपने तीसरे नेत्र से जला दिया (तो)
ते मुग्धः = आपकी मोहित करने वाली
कटाक्ष विधिः = तिरछी चितवन ने फिर से
(तम्) = उस कामदेव रूपी कली को
अनेकधा = अनेकानेक
अंकुरयांचकार = दम्पति वर्ग में जन्म दिया।
सत्यं (एतत् यत्) = यह सच है कि
तदा प्रभृति = तभी से
इन्दुमौलिः = चन्द्र कलाधारी शंकर ने
ह्रिया इव = मानो लज्जा के मारे
ललाट नेत्रं = इस तीसरे ललाट- नेत्र को
मुकुलीकृतं धत्ते = कुछ खुले और कुछ बन्द रूप से अर्धनिमीलित दशा में (बन्द किये हुए) रखा है।।

अनुवाद

हे देवी ! जब महादेव जी ने कामदेव को अपने तीसरे नेत्र से जला दिया तो आपकी मोहित करने वाली तिरछी चितवन ने पुनः इस कामदेव रूपी कली को अनेकानेक दम्पति-वर्ग में जन्म दिया। अनुमान किया जाता है कि सत्यतः तभी से चन्द्र-कला-धारी शंकर ने लज्जा-वश इस तीसरे ललाट-नेत्र को कुछ खुले और कुछ बन्द रूप से अर्धनिमीलित दशा में रखा है।। ७।।

अज्ञातसम्भवमनाकलितान्ववायं
भिक्षुं कपालिनमवाससमद्बितीयम्
पूर्वं करग्रहणमङ्गलतो भवत्याः
शम्भुं क एव बुबुधे गिरिराजकन्ये।। ८।।

पदच्छेद अन्वय सहित

अज्ञातसम्भवम् अनाकलित अन्ववायं
भिक्षुं कपालिनम् अवाससम् अद्बितीयम्।
पूर्वं करग्रहणमङ्गलतः भवत्याः
शम्भुं कः एव बुबुधे गिरिराजकन्ये ! ।। ८।।

हे गिरिराजकन्ये ! अज्ञातसंभवम्, अनाकलितान्ववायम्, भिक्षुं, कपालिनम्, अवाससम् अद्बितीयं च शंभुं भवत्याः करग्रहणमंगलतः पूर्वं क एव बुबुधे।। ८।।

शब्दार्थ

हे गिरिराजकन्ये = हे हिमालय पर्वतराज की पुत्री !
अज्ञात संभवम् = जिस शिव का जन्म अज्ञात है
अनाकलित = कोई नहीं जानता
अन्ववायं = जिनके वंश को
भिक्षुं = भिक्षा ग्रहण करते हैं (खप्पर में)
कपालिनं = कपालधारी
अवाससं = जिनको पहनने के लिए कोई वस्त्र नहीं है
अद्वितीयं = जिसके समान कोई दूसरा नहीं
च = और
शंभुं = भगवान् शंकर को
भवत्याः = आपके
मंगलतः = मंगलात्मक
करग्रहण = पाणिग्रहण करने से
पूर्वं = पहले
कः एवं बुबुधे = भला कौन जानता था, कोई भी तो नहीं।।

अनुवाद

हे हिमालय पर्वतराज की पुत्री ! जिन महादेव जी का जन्म अज्ञात है, जिनके वंश को कोई भी नहीं जानता, जो खप्पर में भिक्षा ग्रहण करते हैं, (जिनका निवासस्थान कोई नहीं है) जिनको पहनने के लिए कोई वस्त्र नहीं है–ऐसे अनिकेत अद्वितीय भगवान् शंकर को, आपके मंगलात्मक पाणिग्रहण करने से पूर्व भला कौन जानता था, कोई भी तो नहीं।। ८।।

विशेषः- भाव यह है कि शिव के साथ शक्ति का समावेश होता है तभी शिव का साक्षात्कार हो सकता है। इत्यतः शक्ति ही शिव-साक्षात्कार का एक मात्र साधन है। कहा भी है–

"शैवी मुखमिहोच्यते"।

अर्थात् शक्ति ही शिव की प्राप्ति का एकमात्र उपाय है।

चर्माम्बरं च शवभस्मविलेपनं च
भिक्षाऽटनं च नटनं च परेतभूमौ।
वेतालसंहतिपरिग्रहता च शम्भोः
शोभां बिभर्ति गिरिजे ! तव साहचर्यात् ।। ९।।

पदच्छेद अन्वय सहित

चर्म अम्बरं च शवभस्म विलेपनं च
भिक्षा अटनं च नटनं च परेत भूमौ।
वेताल संहति परिग्रहता च शम्भोः
शोभां बिभर्ति गिरिजे ! तव साहचर्यात्।। ९।।

हे गिरिजे ! शम्भोः चर्माम्बरं च, शवभस्मविलेपनं च, भिक्षाटनं च, परेतभूमौ नटनं च, वेतालसंहतिपरिग्रहता च तव साहचर्यात् शोभां बिभर्ति ।। ९।।

शब्दार्थ

हे गिरिजे = हे पर्वतराज की पुत्री।
चर्माम्बरं = वस्त्रों के बदले मृगछाला का धारण करना
शवभस्मविलेपनं = मुंर्दों की राख सारे शरीर में मलना
भिक्षाटनं = इधर-उधर भिक्षा के लिए मारे-मारे घूमना
परेत भूमौ = प्रेत भूमि में
नटनं = नाचना
च = और
वेताल संहति परिग्रहता = वेताल भैरव आदि के समूह का ग्रहण करना
शम्भोः = शिव को
तव = आपके साथ
साहचर्यात् = चलने से ही
शोभां = शोभा को
बिभर्ति = धारण करता है।

अनुवाद

हे पर्वतराज की पुत्री ! वस्त्रों के बदले मृगछाला का धारण करना, मुर्दों की राख समस्त शरीर में मलना, इधर-उधर भिक्षा के लिए मारे-मारे घूमना, प्रेत-भूमि में नाचना और वेताल-भैरव आदि के समूह का ग्रहण करना शिव को, आपके साथ चलने से ही शोभा को बढ़ाता है।। ९।।

विशेषः– चर्माम्बरं प्रतीक है शिव के अहंकार राहित्य का।

शवभस्मविलेपनं प्रतीक है राग राहित्य का।

भिक्षाटनं प्रतीक है संकल्प राहित्य का।

नटनं परेतभूमौ प्रतीक है नियति राहित्य का।

वेताल संहति प्रतीक है शिव के द्वैतभाव राहित्य तथा स्वात्म अहं परामर्श प्राधान्य का, तथा इस बात को भी सूचित करता है कि सारी नकारात्मक शक्तियों का वह संहारक है।

कल्पोपसंहरणकेलिषु पण्डितानि
चण्डानि खण्डपरशोरपि ताण्डवानि।
आलोकनेन तव कोमलितानि मात-
र्लास्यात्मना परिणमन्ति जगद्विभूत्यै।। १०।।

पदच्छेद अन्वय सहित

कल्प उपसंहरण केलिषु पण्डितानि

चण्डानि खण्डपरशोः अपि ताण्डवानि।
आलोकनेन तव कोमलितानि मातः
लास्यात्मना परिणमन्ति जगत् विभूत्यै।। १०।।

हे मातः ! कल्पोपसंहरणकेलिषु खण्डपरशोः पण्डितानि चण्डानि ताण्डवानि तव लास्यात्मना आलोकनेन कोमलितानि (भूत्वा) जगद्विभूत्यै परिणमन्ति।। १०।।

शब्दार्थ

हे मातः = हे माता !
कल्प = युगों की
उपसंहरण केलिषु = संहरण क्रीड़ा में
खण्ड- परशु = टूटा कुल्हाड़ा जिसका आयुध है ऐसे शंकर जी का
चण्डानि = भयंकर
ताण्डवानि = ताण्डवनृत्य, (वह भी)
तव = आपके
लास्यात्मना = लास्यात्मक
आलोकनेन = नृत्यरूपता के देखने के फलस्वरूप
कोमलितानि = अत्यन्त कोमल होकर
जगत् विभूत्यै = जगत् को फिर से सुखपूर्वक स्थापित करने में
परिणमन्ति = परिणत हो जाता है।

अनुवाद

हे माता ! खण्डपरशो टूटा कुल्हाड़ा जिसका आयुध है ऐसे शंकर जी का भयंकर ताण्डव-नृत्य जो युगों की संहरण-क्रीड़ा में दक्ष है, वह भी आपके लास्यात्मक नृत्य-रूपता को देखने के फलस्वरूप अपनी चण्डरूपता अर्थात् भयंकर रूपता को छोड़कर अत्यन्त कोमल होकर जगत् को पुनः सुखपूर्वक स्थापित करने में परिणत हो जाता है।। १०।।

विशेष–खण्डपरशुः प्रतीक है द्वैत इन्धन दाहकता का। शिव का ताण्डवनृत्य (ताण्डवानि) ही संहार मुद्रा को सूचित करता है। शक्ति का लास्य-नृत्य स्थिति मुद्रा का सूचक है।

भाव यह है कि भगवान् शंकर जिस समय ताण्डव-नृत्य द्वारा समस्त भूमण्डल का नाश करने के लिए तुले होते हैं, उसी समय भगवती ज्योंही लास्य-नृत्य करती हुई आपकी ओर देखने लगती है, तो समस्त भू-मण्डल जो नाश के सन्मुख था, फिर से सुखपूर्वक स्थापित होने लगता है। इस भांति शिव की सर्व-संहरणात्मक प्रवृत्ति, शक्ति के प्रभाव से सृष्टिरूपता में प्रवृत्त होती है।।१०।।

जन्तोरपश्चिमतनोः सति कर्मसाम्ये
निःशेषपाशपटलच्छिदुरा निमेषात्।

कल्याणि ! दैशिककटाक्षसमाश्रयेण
कारुण्यतो भवसि शाम्भववेधदीक्षा।। ११।।

पदच्छेद अन्वय सहित

जन्तोः अपश्चिमतनोः सति कर्मसाम्ये
निःशेष पाशपटलच्छिदुरा निमेषात्।
कल्याणि ! दैशिक कटाक्षसम् आश्रयेण
कारुण्यतः भवसि शाम्भव वेधदीक्षा।। ११।।

हे कल्याणि! अपश्चिमतनोः जन्तोः कर्मसाम्ये सति (त्वम्) दैशिक- कटाक्षसमाश्रयेण कारुण्यतः निमेषात् निःशेषपाशपटलच्छिदुरा (सती) शाम्भववेधदीक्षा भवसि।। ११।।

शब्दार्थ

कल्याणि ! = हे कल्याणमयी माता !
अपश्चिमतनोः = जिसका फिर से जन्म होने वाला नहीं है
जन्तोः = उस पुरुष के
निःशेष = सभी
पाशपटल = आणव, मायीय और कार्म ये तीनों मल
(त्वं = आप)
करुण्यतः = अपनी अनुग्राहिका शक्ति से
दैशिक कटाक्ष समाश्रयेण = सद्गुरु की अनुकम्पा (अनुग्रह) की दृष्टि का आश्रय लेने से
निमेषात् = क्षणमात्र में ही
च्छिदुरा = काट देती है
शाम्भववेधदीक्षा भवसि = और इस प्रकार शाम्भवरूपी वेधदीक्षा उसकी सिद्ध हो जाती है।

अनुवाद

हे कल्याणमयी माता ! जिसका फिर से जन्म होने वाला नहीं है, अर्थात् जिस व्यक्ति को मोक्ष होने वाला है उस पुरुष के सभी पाश-पटल अर्थात् आणव, मायीय और कार्म–ये तीनों मल आप अपनी अनुग्राहिका-शक्ति से गुरुदेव की अनुकम्पा का आश्रय लेकर निमेष-मात्र में काट देती हैं और इस प्रकार शाम्भव रूपी वेधदीक्षा उसकी सिद्ध हो जाती है।। ११।।

विशेष–शाम्भववेधदीक्षा = आचार्य के अनुग्रहमात्र से ही यह शाम्भवीवेध दीक्षा प्राप्य होती है।

अपश्चिम तनुः = जीवन्मुक्तावस्था का सूचक है।

कर्मसाम्ये = पुण्य, पाप और मिश्रित कर्मों में दैव वश कभी-कभार साम्यावस्था का उदय होता है। गहरे आध्यात्मिक ज्ञान के फलस्वरूप इन कर्मों का निश्चित स्वप्रभाव जब क्षीणप्राय हो उठता है तो साम्यावस्था कर्मों की स्थिर होती है। आणव, मायीय और कार्म मलों का अन्त निमेषमात्र में होता है। विशेष दैवीशक्तिपात के परिणाम स्वरूप ही इस अवस्था का उदय होता है

मुक्ताविभूषणवती नवविद्रुमाभा
यच्चेतसि स्फुरसि तारकितेव सन्ध्या।
एकः स एव भुवनत्रय सुन्दरीणां
कन्दर्पतां व्रजति पञ्चशरीं विनापि।। १२।।

पदच्छेद अन्वय सहित

मुक्ता विभूषणवती नवविद्रुम आभा-
यत् चेतसि स्फुरसि तारकिता इव सन्ध्या।
एकः स एव भुवनत्रय सुन्दरीणां
कन्दर्पतां व्रजति पञ्चशरीं विना अपि।। १२।।

देवि ! मुक्ताविभूषणवती नवविद्रुमाभा (त्वं) यच्चेतसि तारकिता सन्ध्या इव स्फुरसि, स एकः एव पंचशरीं विनापि भुवनत्रयसुन्दरीणां कन्दर्पतां व्रजति।। १२।।

शब्दार्थ

देविः ! = हे देवी !
मुक्ताविभूषणवती = मोतियों के भूषणों से सुसज्जित
नव = नये
विद्रुम = मूंगे की तरह
आभा = लाल दीप्ति वाली, (आप)
यत् = जिस
चेतसि = भक्त के हृदय में
तारकिता = तारा मण्डल से पूर्ण
सन्ध्या इव = सन्ध्या जैसी
स्फुरसि = विकसित होती है
स एकः एव = केवल वही एक भक्त
भुवनत्रय = त्रिभुवन का अर्थात् जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीन अवस्थाओं में शासन करने वाली
सुन्दरीणां = इन्द्रिय शक्तियां
पंचशरीं विनापिं = पांच बाणों अर्थात् रूप, रस, आदि पांच विषयों का सेवन किये बिना ही
कन्दर्पतां = कन्दर्प रूपता को
व्रजति = प्राप्त होता है।

अनुवाद

हे देवी! मोतियों के भूषणों से सुसज्जित, नये विद्रुमों की तरह लाल दीप्ति वाली (आप) जिस भक्त के हृदय में तारामण्डल से संयुक्त संध्या जैसी विकसित होती है, केवल वही एक भक्त, त्रिभुवन का (अर्थात् जाग्रत-स्वप्न और सुषुप्ति) इन तीन अवस्थाओं में शासन करने वाली (मनुष्य को नचाने वाली) इन्द्रिय-शक्तियां पांचबाणों अर्थात् रूपादि पांच विषयों का सेवन किए बिना ही कन्दर्प-रूपता को प्राप्त होता है, अर्थात् समस्त करणेश्वरी-चक्र का वह ईश्वर बन जाता है।। १२।।

विशेष—सुन्दरीणां से करणेश्वरी देवियां अभिप्रेत हैं। कन्दर्पता से तात्पर्य है एकीभाव की सर्वोच्च कामना, जिसमें सारी कामनायें स्वतः सिद्ध ही परिपूर्ण होती हैं।

पंचशरीं = पांच पुष्प बाणों को धारण करने वाला कामदेव। पर यहां पांच ज्ञानेन्द्रिय वृत्तियां अभिप्रेत है।

भुवनत्रय = जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति। जाग्रत और स्वप्नावस्था में अपरा शक्ति का साम्राज्य होता है। परापराशक्ति का आधिपत्य सुषुप्ति में पाया जाता है। पराशक्ति का आधिपत्य तुर्यावस्था में। अपराशक्ति = सामान्य शक्ति मानी जाती है, परापराशक्ति मध्यम शक्ति और पराशक्ति सर्वोच्च शक्ति मानी जाती हैं।

जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति में प्राणी को अपने वश में करने वाली इन्द्रिय शक्तियां होती हैं।

ये भावयन्त्यमृतवाहिभिरंशुजालै-
राप्यायमानभुवनाममृतेश्वरीं त्वाम्।
ते लङ्घयन्ति ननु मातरऽलङ्घनीयां
ब्रह्मादिभिः सुरवरैरपि कालकक्ष्याम्।। १३।।

पदच्छेद अन्वय सहित

ये भावयन्ति अमृत वाहिभिः अंशुजालैः
आप्यायमान भुवनाम् अमृत ईश्वरीम् त्वाम्।
ते लङ्घयन्ति ननु मातः! अलङ्घनीयाम्
ब्रह्मादिभिः सुरवरैः अपि कालकक्ष्याम्।। १३।।

हे मातः! अमृतवाहिभिरंशुजालैः आप्यायमानभुवनां त्वाम् अमृतेश्वरीं ये भावयन्ति, ननु ते ब्रह्मादिभिः सुरवरैपि अलंघनीयां कालकक्ष्यां लंघयन्ति।। १३।।

शब्दार्थ

हे मातः ! = हे माता !
अमृत वाहिभिः = अमृत बहाने वाली
अंशुजालैः = अपनी किरणों के समूह से
आप्यायमानभुवनां = तीनों लोकों को आप्यायन करने वाली (सिंचन करने वाली)
त्वां = आप
अमृतेश्वरीं = अमृतेश्वरी का
ये = जो
भावयन्ति = ध्यान करते हैं
ननु = निश्चित रूप से
ते = वे
ब्रह्मादिभिः = ब्रह्मा आदि
सुरवरैः अपि = श्रेष्ठदेवताओं से
अलंघनीयां = पार न किये जाने वाली
कालकक्ष्यां = (भूत, भविष्यत और वर्तमान इस) कालकलना को
लंघयन्ति = पार कर जाते हैं।।

अनुवाद

हे माता ! अमृत बहाने वाली अपनी किरणों के समूह से तीनों लोकों को आप्यायन करने वाली आप अमृतेश्वरी का जो ध्यान करते हैं, निश्चित रूप से वे ब्रह्मा आदि श्रेष्ठ देवताओं से अलंघनीय अर्थात् पार न किये जाने वाले (भूत, भविष्यत और वर्तमान इस) काल-कलना को पार कर जाते हैं।। १३।।

यः स्फाटिकाक्षगुणपुस्तककुण्डिकाढ्यां
व्याख्यासमुद्यतकरां शरदिन्दुशुभ्राम्।
पद्मासनां च हृदये भवतीमुपास्ते
मातः ! स विश्वकवितार्किकचक्रवर्ती।। १४।।

पदच्छेद अन्वय सहित

यः स्फाटिक अक्ष गुण पुस्तक कुण्डिका आढ्यां
व्याख्या सम् उद्यत करां शरत् इन्दु शुभ्राम्।
पद्म आसनां च हृदये भवतीम् उपास्ते
मातः ! स विश्व कवि तार्किक चक्रवर्ती।। १४।।

हे मातः ! यः स्फाटिकाक्षगुणपुस्तककुण्डिकाढ्यां व्याख्या-समुद्यतकरां शरदिन्दुशुभ्रां पद्मासनां च भवतीं हृदये उपास्ते, स विश्व कवितार्किकचक्रवर्ती (भवति)।। १४।।

शब्दार्थ

हे मातः = हे माता !
यः = जो भक्तजन
हृदये = अपने हृदय में
भवतीं = आपका
स्फाटिक = स्फाटिक मणि की
अक्षगुण = अक्षमाला
पुस्तक = पुस्तक
कुण्डिका = कमण्डल से
आढ्यां = शोभित तथा
व्याख्यासमुद्यतकरां = उपदेश करने के लिए उठाये हुए हाथों वाली
शरत् इन्दुशुभ्रां = शरत् ऋतु के चन्द्रमा जैसी, अत्यन्त श्वेत वर्ण में चमकती हुई
उपास्ते = ध्यान करते हैं
सः = वह
विश्व = संसार के
कवि = कवियों
तार्किक = और तार्किक आचार्यवरों का
चक्रवर्ती = चक्रवर्ती राजा
(भवती) = बनता है।।

अनुवाद

हे माता ! (आप अपने चार हाथों में) स्फाटिकमणि की जपमाला, पुस्तक, कमण्डल और उपदेश करने के लिए उठाए हुए हाथों वाली हैं। आप पद्मासन पर विराजमान और शरद्-ऋतु के चन्द्रमा जैसी अत्यन्त श्वेतवर्ण में चमकती हुई हैं। इस प्रकार जो भक्त, आपका ध्यान अपने हृदय में करता है, वह सारे संसार के कवियों और तार्किक आचार्यवरों का चक्रवर्ती राजा बनता है।। १४।।

बर्हावतंसयुतबर्बरकेशपाशां
गुञ्जावलीकृतघनस्तनहारशोभाम्।
श्यामां प्रवालवदनां सुकुमारहस्तां
त्वामेव नौमि शवरीं शवरस्य जायाम्।। १५।।

पदच्छेद अन्वय सहित

बर्ह अवतंस युत बर्बर केश पाशाम्
गुञ्जा अवली कृत घन स्तन हार शोभाम्।
श्यामां प्रवालवदनां सुकुमार हस्ताम्
त्वां एव नौमि शवरीं शवरस्य जायाम्।। १५।।

बर्हावतंसयुतबर्बरकेशपाशां गुञ्जावलीकृतघनस्तनहारशोभां श्यामां प्रवालवदनां सुकुमारहस्तां शवरस्य जायां त्वां शवरीम् एव नौमि।। १५।।

शब्दार्थ

(हे पार्वती जी !) **बर्हावतंसयुत** = आप मोर पंखों के मुकुट को धारण करती हुई

बर्बरकेशपाशां = सुनहरे रंग के जटा जूट से युक्त है।

गुञ्जावली = घुंघचियों की पहनी हुई माला

कृतघनस्तनहारशोभां = आपके स्तनों की शोभा बढ़ाती है

श्यामां = (आप) श्यामा रूप को धारण करती हुई

प्रवालवदनां = मूंगे जैसे (लाल) मुख वाली (और)

सुकुमार हस्तां = कोमल हाथों से युक्त है, (इस प्रकार)

शवरस्य = शिकारी का रूप धारण करने वाले शंकर जी की

जायां = पत्नी

शवरीं = शिकारिण का रूप धारण करने वाली

त्वां एव = आप भगवती की ही, (मैं)

नौमि = स्तुति करता हूँ।। १५।।

अनुवाद

(हे पार्वती जी !) आप मोर पंखों के मुकुट को धारण करती हुई भूरे अर्थात् सुनहरी रंग के जटा-जूट से युक्त हैं। घुंघचियों की पहनी हुई माला आपके स्तनों की शोभा बढ़ाती है। आप श्यामा रूप को धारण करती हुई सुन्दर मुखाकृति और कोमल हाथों से युक्त हैं। इस प्रकार शिकारी का रूप धारण करने वाले शंकर जी की पत्नी शिकारिण का रूप धारण करने वाली आप भगवती की मैं स्तुति करता हूं।। १५।।

विशेषः- भक्त अर्जुन को युद्ध करते समय पाशुपत अस्त्र की आवश्यकता पड़ी। अतः इस अस्त्र को प्राप्त करने के लिए उसने भगवान् शंकर की आराधना की। समय आने पर उसकी आराधना सफल हुई और भगवान् शंकर ने शिकारी के रूप में उसको दर्शन दिया। भगवान् शंकर के पीछे-पीछे पार्वती भी शिकारिन के रूप में आईं। पार्वती जी के इसी रूप की ओर इस श्लोक में संकेत है।।

अर्धेन किं नवलताललितेन मुग्धे !
क्रीतं विभोः परुषमर्धमिदं त्वयेति।
आलीजनस्य परिहासवचांसि मन्ये
मन्दस्मितेन तव देवि ! जडी भवन्ति।। १६।।

पदच्छेद अन्वय सहित

अर्धेन किं नवलताललितेन मुग्धे !
क्रीतं विभोः परुषम् अर्धं इदं त्वया इति।

आली जनस्य परिहास वचांसि मन्ये
मन्द स्मितेन तव देवि ! जडी भवन्ति।। १६।।

हे मुग्धे देवि ! त्वया नवलताललितेन अर्धेन (सह) विभोः इदं पुरुषम् अर्धं किं क्रीतम् ? आलीजनस्य इति परिहासवचांसि तव मन्दस्मितेन जडी भवन्ति-इति अहं मन्ये।। १६।।

शब्दार्थ

मुग्धे = हे मोहित करने वाली देवी।
त्वया = आपने
नवलताललितेन = नई लता के समान सुन्दर अपने
अर्धेन = आधे शरीर से
विभोः = शंकर जी का
इदं अर्धं पुरुषं = यह कठोर आधा भाग
किं क्रीतं = क्यों खरीदा ?
आलीजनस्य इति = इस भांति अपनी सहेलियों के
परिहास वचांसि = हास परिहास सहित वचनों के प्रति
तव मन्दस्मितेन = आप अपने मन्द मुस्कान से ही
जडीभवन्ति = उनके इन परिहास वचनों (हंसी मखौल की बातें) को टाल देती हैं
इति अहं मन्ये = ऐसा मैं समझता हूँ।।

अनुवाद

हे मोहित करने वाली देवी ! तुम्हारा शरीर नवीन लता के समान सुन्दर है, ऐसे किसलय-सदृश शरीर को शंकर जी को देकर और बदले में उनका कठोर तथा फूहड़ आधा भाग क्यों खरीदा—इस भांति सखियों के हास-परिहास युक्त वचनों के प्रति आप केवल अपने मन्द मुस्कान से ही उनके इन परिहास-वचनों को टाल देती हैं। आपके ऐसा करने पर ही वे सखियां मूक बन जाती हैं और फिर से उन्हें ऐसा बोलने का साहस नहीं होता ।। १६।।

ब्रह्माण्ड बुद्बुदकदम्बकसंकुलोऽयं
मायोदधिर्विविधदुःखतरङ्गमालः।
आश्चर्यमम्ब ! झटिति प्रलयं प्रयाति
त्वद्ध्यानसन्ततिमहावडवामुखाग्नौ।। १७।।

पदच्छेद अन्वय सहित

ब्रह्माण्ड बुद्बुद कदम्बक सङ्कुलः अयम्

माया उदधिः विविध दुःख तरङ्ग मालः।
आश्चर्यं अम्ब ! झटिति प्रलयं प्रयाति
त्वत् ध्यान सन्तति महा वडवा मुख अग्नौ।। १७।।

हे अम्ब ! ब्रह्माण्डबुद्बुदकदम्बकसंकुलः विविधदुःखतरङ्गमालः अयं मायोदधिः त्वद्ध्यानसंततिमहावडवामुखाग्नौ झटिति प्रलयं प्रयाति (इति) आश्चर्यम्।। १७।।

शब्दार्थ

अम्ब = हे मां !
अयं मायोदधिः = यह मायारूपी संसार एक अथाह सागर है इसमें
विविध = अनेक विचित्र
दुःखतरंगमालः = दुःखात्मक तरंगों की मालायें विद्यमान हैं
ब्रह्माण्ड बुद्बुद = ब्रह्माण्डरूपी बुलबुलों का
कदम्बक = समूह
संकुलः = (इस सागर में) पाया जाता है।
आश्चर्यं = आश्चर्य है कि (जब भी इस ऐसे भयंकर सागर में कोई व्यक्ति)
त्वद् ध्यान संतति = आपका ध्यान अनथक रूप से करता है (तब मानो कि आपका यह ध्यान भी)
महावडवामुखाग्नौ = महान् वडवाग्नि बन जाता है (और यह ऊपर वर्णित बुलबुलों से तथा भिन्न-भिन्न प्रकार के दुःख रूपी तरंगों सहित संसार रूपी सागर)
झटिति = क्षणमात्र में
प्रलयं प्रयाति = लय हो जाता है और संसार-समुद्र का नाम सदा के लिए मिट जाता है।

अनुवाद

हे माता ! यह माया रूपी संसार एक अथाह समुद्र है। इसमें अनेक विचित्र दुःखात्मक तरंगों की मालाएं विद्यमान हैं। अनेक ब्रह्माण्ड रूपी बुलबुलों का समूह इस सागर में पाया जाता है। आश्चर्य है कि जब भी इस ऐसे भयंकर सागर में कोई व्यक्ति आप का ध्यान, अनथक रूप से करता है, तब मानो कि आपका यह ध्यान भी महान वडवाग्नि बन जाता है और ये ऊपर वर्णित बुलबुलों से तथा भिन्न-भिन्न प्रकार के दुःख रूपी तरंगों सहित संसार रूपी समुद्र, क्षण-मात्र में लय हो जाता है और संसार-समुद्र का नाम सदा के लिए मिट जाता है।। १७।।

विशेषः- सागर की आग को वाडवाग्नि कहते हैं और जंगल की आग को दावाग्नि कहते हैं।

दाक्षायणीति कुटिलेति गुहारणीति
कात्यायनीति कमलेति कलावतीति।

एका सती भगवती परमार्थतोऽपि
संदृश्यसे बहुविधा ननु नर्तकीव।। १८।।

पदच्छेद अन्वय सहित

दाक्षायणी इति कुटिला इति गुहारणी इति
कात्यायनी इति कमला इति कलावती इति।
एका सती भगवती परमार्थतः अपि
संदृश्यसे बहुविधा ननु नर्तकी इव।। १८।।

हे मातः ! परमार्थतोऽपि एका अपि त्वं भगवती सती, दाक्षायणीति, कुटिला इति, गुहारणीति, कात्यायनीति कमला इति कलावतीति च नर्तकी इव बहुविधा संदृश्यसे।।१८।।

शब्दार्थ

हे मातः ! = हे माता ! (यद्यपि)
परमार्थतः अपि = पारमार्थिक दृष्टि से
त्वं = आप
भगवती एका सती = भगवती एक ही स्वरूप वाली हो, (तथापि)
दाक्षायणी इति = दक्षप्रजापति की कन्या होने से दाक्षायणी नाम से
कुटिला इति = साढ़े तीन बार मुड़ी होने से कुण्डलिनी स्वरूपा कुटिला नाम से
गुहारणी इति = हृदय रूपी गुफा में ठहरने के फलस्वरूप गुहारणी नाम से
कात्यायनी इति = कत्य ऋषि की कन्या होने से कात्यायनी नाम से
कमला इति = संकोच विकासात्मक धर्मयुक्त होने से कमला नाम से
कलावती इति = सृष्टि आदि पांच कर्मों के करने से कलावती नाम से
नर्तकी इव = नाचने वाली की तरह
बहुविधा = अनेक स्वरूपों को धारण करती हुई
संदृश्यसे = दिखाई देती हो।।

अनुवाद

हे माता ! यद्यपि पारमार्थिक दृष्टि से आप भगवती एक ही स्वरूप वाली हो तथापि दक्षप्रजापति की कन्या होने से दाक्षायणी नाम से, साढ़े तीनबार मुड़ी होने से कुण्डलिनी-स्वरूप कुटिला नाम से, हृदय रूपी गुफा में ठहरने के फलस्वरूप गुहारणी नाम से, कत्य-ऋषि की कन्या होने से कात्यायनी नाम से, संकोचविकासात्मक धर्म-युक्त होने से कमला नाम से तथा सृष्टि आदि पांच कृत्यों के करने से कलावती नाम से नर्तकी की तरह अनेक स्वरूपों को धारण करती हुए दिखाई देती हो।।१८।।

आनन्दलक्षणमनाहतनाम्नि देशे

नादात्मना परिणतं तव रूपमीशे।
प्रत्यङ्मुखेन मनसा परिचीयमानं
शंसन्ति नेत्रसलिलैः पुलकैश्च धन्याः।। १९।।

पदच्छेद अन्वय सहित

आनन्दलक्षणम् अनाहतनाम्नि देशे
नाद आत्मना परिणतं तव रूपम् ईशे !
प्रत्यङ्मुखेन मनसा परिचीयमानं
शंसन्ति नेत्र सलिलैः पुलकैः च धन्याः।। १९।।

ईशे ! आनन्दलक्षणम् नादात्मना परिणतं अनाहतनाम्नि देशे प्रत्यङ्मुखेन मनसा परिचीयमानं तव रूपम् धन्याः नेत्रसलिलैः पुलकैश्च शंसन्ति।। १९।।

शब्दार्थ

ईशे = हे शासन करने वाली देवी !
आनन्द लक्षणं = आनन्दस्वरूप
नादात्मना = अहं परामर्शरूपी नाद से
परिणतं = परिणत बना हुआ
अनाहतनाम्नि देशे = अनाहतस्वरूप वाले सहस्रार चक्र में
प्रत्यङ्मुखेन = जब अन्तर्मुख
मनसा = मन से
परिचीयमानं = बड़ायाहुआ
तव रूपं = आपका स्वरूप देखते हैं, (तो उस समय)
धन्याः = वे भाग्यशाली योगी जन, (शब्दों से नहीं) अपितु
नेत्र सलिलैः = नेत्र अश्रुओं से
पुलकैः च = और पुलकित भाव से ही
शंसन्ति = उस आपके स्वरूप को जतलाते हैं।

अनुवाद

हे शासन करने वाली देवी ! आनन्द-स्वरूप तथा अहंपरामर्श रूपी नाद से परिणत बना हुआ, अनाहतस्वरूप वाले सहस्रार-चक्र में जब अन्तर्मुख मन से आपका स्वरूप देखते हैं तो उस समय वे भाग्यशाली योगी-जन शब्दों से नहीं वरन् नेत्र-अश्रुओं से और पुलकित-भाव से ही उस आपके स्वरूप को जतलाते हैं।। १९।।

विशेषः- भाव यह है कि जब भक्त योगी आपके स्वरूप का साक्षात्कार करता है तो उस समय उसे सहज ही नेत्रों से अश्रु-धाराएं बहती हैं और उसका सारा शरीर पुलकित हो जाता है अर्थात् रोम-हर्ष से व्याप्त होता है। स्वरूप साक्षात्कार होने की यही पहिचान है।

विशेष–आनन्द लक्षणं = आनन्द शक्तिः, आचार्य अभिनवगुप्त ने तन्त्रालोक में कहा है कि–

अकुलस्यादिदेवस्य कुलप्रथनशालिनी।
कौलिकी सा परा शक्तिरवियुक्तो यया प्रभुः।।
तयोर्यत् यामलं रूपं संघट्ट इति स्मृतः।
'आनन्दशक्तिः' सैव प्रोक्ता यतो विश्वं विसृज्यते।।

अनाहत – मध्यमा वाक् से अभिप्रेत है।

नादात्मना– इससे परमशिव के दो रूप अभिप्रेत हैं– प्रकाश और विमर्श या नाद और बिन्दु।

प्रत्यङ्मुख–

ध्यातृध्याने परित्यज्य क्रमात् ध्येयैकगोचरम्।
निवात दीपवत् चित्तं प्रत्यङ्मुखं निगद्यते।।

त्वं चन्द्रिका शशिनि तिग्मरुचौ रुचिस्त्वं
त्वं चेतनासि पुरुषे पवने बलं त्वम्।
त्वं स्वादुतासि सलिले शिखिनि त्वमूष्मा
निःसारमेव निखिलं त्वदृते यदि स्यात्।। २०।।

पदच्छेद अन्वय सहित

त्वं चन्द्रिका शशिनि तिग्मरुचौ रुचिः त्वं
त्वं चेतना असि पुरुषे पवने बलं त्वं।
त्वं स्वादुता असि सलिले शिखिनि त्वं ऊष्मा
निःसारम् एव निखिलं त्वत् ऋते यदि स्यात्।। २०।।

शशिनि त्वं चन्द्रिका (असि) तिग्मरुचौ त्वं रुचिः, पुरुषे त्वं चेतना असि, पवने त्वं बलम् (असि), सलिले त्वं स्वादुता, (एवं) शिखिनि त्वम् ऊष्मा। (यत् किंचित्) त्वदृते स्यात् तत् निखिलं निःसारमेव।। २०।।

शब्दार्थ

हे जगन्माता !, त्वं = आप
शशिनि = चन्द्रमा में
चन्द्रिका = चांदनी है
तिग्मरुचौ = सूर्य देवता में
त्वं = आप
रुचिः = प्रकाश है
पुरुषे = पुरुष में
त्वं = आप
चेतना असि = चेतना हैं
पवने = वायु में

त्वं = आप
बलं = वेग हैं
सलिले = जल में
त्वं = आप
स्वादुता = मिठास
असि = हैं
शिखिनि = अग्नि में
त्वं = आप
ऊष्मा = ऊष्णता हैं
(**यत् किंचित्** = जो कुछ)
त्वत् ऋते स्यात् = आपकी सत्ता से हीन हो, अर्थात् आपकी सत्ता संसार के पदार्थों में यदि न होती तो
तत् = वह
निखिल = सारा संसार
निःसारमेव = तुच्छ या सत्ता रहित ही होता।।

अनुवाद

हे जगन्माता ! आप चन्द्रमा में चान्दनी हैं। सूर्यदेवता में प्रकाश हैं। पुरुष में चेतना हैं। वायु में बल अर्थात् वेग हैं। जल में मिठास हैं और अग्नि में ऊष्णता हैं अर्थात् आप ही समस्त भावाभावात्मक यानी दिखाई देने वाले और न दिखाई देने वाले जगत् का सार हैं। सच तो यह है कि यदि आपकी सत्ता जागतिक पदार्थों में न हो तो ये सभी पदार्थ सत्ता-विहीन अर्थात् फीके हैं। भाव यह है कि आपकी विश्व-व्यापिनी शक्ति से ही सारा संसार अपनी स्वरूप-सत्ता से युक्त दृष्टिगोचर होता है।। २०।।

विशेष–आचार्य उत्पलदेव ने भी श्रीशिवस्तोत्रावली में इसी आशय में कहा है कि–

(१) त्वत्प्रकाशवपुषो न विभिन्नं किंचन प्रभवति प्रतिभातुं।
तत्सदैव भगवन् परिलब्धोऽसीश्वर प्रकृतितोऽपि विदूरः।।

(२) त्वं चन्द्रिका शशिनि .... इत्यादि।

इस श्लोक में प्रकाश और विमर्श रूप कश्मीर शैव दर्शन के सिद्धांत को सरल शब्दों में प्रकट किया है जिसे कि यदि हम
चन्द्रमा को प्रकाश मानें तो चांदनी विमर्श है;
सूर्य को प्रकाश मानें तो दीप्ति विमर्श है;
पुरुष को प्रकाश मानें तो चेतना विमर्श है;
वायु को प्रकाश मानें तो वेग (बल) विमर्श है;
जल को प्रकाश मानें तो मिठास विमर्श है;
अग्नि को प्रकाश मानें तो ऊष्मा (गर्मी) विमर्श है।
इस प्रकार यह श्लोक प्रकाश विमर्श का यामलरूप है।

ज्योतींषि यद्दिवि चरन्ति यदन्तरिक्षं
सूते पयांसि यदहिर्धरणीं च धत्ते।

यद्वाति वायुरनलोयदुदर्चिरास्ते
तत्सर्वमम्ब ! तव केवलमाज्ञयैव।। २१।।

पदच्छेद अन्वय सहित

ज्योतींषि यत् दिवि चरन्ति यत् अंतरिक्षं
सूते पयांसि यत् अहिः धरणीं च धत्ते।
यत् वाति वायुः अनलः यत् उदर्चिः आस्ते
तत् सर्वम् अम्ब ! तव केवलम् आज्ञया एव ।। २१।।

अम्ब ! यत् ज्योतींषि दिवि चरन्ति, यत् अन्तरिक्षं पयांसिसूते, यत् च अहिः धरणीं धत्ते, यत् वायुः वाति यत् (च) अनलः उदर्चिः आस्ते - तत्सर्वं तव आज्ञयैव (स्यात्)।। २१।।

शब्दार्थ

अम्ब ! = हे माता !
यत् = जो ये
ज्योतींषि = सितारे
दिवि = आकाश मार्ग में, **चरन्ति** = इधर-उधर घूमते फिरते हैं
यत् = जो यह
अन्तरिक्ष = आकाश
पयांसि = जल या वर्षा
सूते = बहा देता है
यत् च = और जो यह
अहिः = शेषनाग
धरणीं = सारी धरती को
धत्ते = धारण करता है
यत् =जो यह
वायुः = हवा
वाति = इधर-उधर चलता रहता है
यत् च = और जो यह
अनलः = अग्नि
उदर्चिः आस्ते = ऊपर की ओर जाती हुई दिखाई देती है
तत्सर्वं = यह सभी कुछ तो
तव = आपकी
आज्ञयैव स्यात् = आज्ञा से ही होता है।।

अनुवाद

हे माता ! ये जो सितारे आकाश-मार्ग में इधर-उधर घूमते फिरते हैं, जो यह अन्तरिक्ष-तल वर्षा बहा देता है, जो यह शेषनाग इस समस्त पृथ्वी को धारण किए हुए है, जो यह वायु इधर-उधर चलता रहता है और जो यह अग्नि ऊर्ध्व-मार्ग से चलती हुई दिखाई देती है– यह सभी कुछ तो आप की आज्ञा से ही होता है।। २१।।

विशेष–'अन्तरिक्षं सूते पयांसि', यह इस सिद्धांत की पुष्टि करता है जो निम्नलिखित श्लोक में बताया गया है–

अग्नौ प्रस्ताहुतिः सम्यक् आदित्यमुपतिष्टते।
आदित्यात् जायते वृष्टिः, ततोऽन्नं ततः प्रजा।।

सङ्कोचमिच्छसि यदा गिरिजे ! तदानीं
वाक्तर्कयोस्त्वमसि भूमिरनामरूपा।
यद्वा विकासमुपयासि यदा तदानीं
त्वन्नामरूपगणनाः सुकरीभवन्ति।। २२।।

पदच्छेद अन्वय सहित

संङ्कोचं इच्छसि यदा गिरिजे ! तदानीं
वाक् तर्कयोः त्वम् असि भूमिः अनामरूपा।
यत् वा विकासम् उपयासि यदा तदानीम्
त्वत् नामरूपगणनाः सुकरी भवन्ति।। २२।।

गिरिजे ! यदा (त्वं) संकोचमिच्छसि, तदानीं वाक्तर्कयोः अनामरूपा भूमिः असि। यद्वा यदा त्वं विकासमुपयासि तदानीं त्वन्नामरूपगणना सुकरी भवति।। २२।।

शब्दार्थ

गिरिजे ! = हे पार्वती
यदा = जब
(त्वं = आप)
संकोचं इच्छसि = अपने स्वरूप का संकोच करना चाहती है
तदानीं = तब (आपका स्वरूप)
वाक् तर्कयोः = वाणी और विचार में
अनामरूपा = नाम-रूप की कलना से अतीत बनकर
भूमिः असि = उल्लेख करने के आयोग्य बन जाता है
यत् वा = अथवा
यदा = जब
त्वं = आप
विकासं उपयासि = अपनी स्वरूप विकासात्मक अवस्था को ग्रहण करती हो
तदानीं = तो उस दशा में
त्वत् = आपके
नामरूप = नाम और रूपों की
गणना = गिनती
सुकरी भवन्ति = सरल बन जाती है अर्थात् ध्यान करने से ही भक्त-जन आपके स्वरूप को सहज ही प्राप्त करते हैं।।

अनुवाद

हे पार्वती ! जब आप अपने स्वरूप का संकोच करना चाहती हैं, तब आपका स्वरूप नाम-रूप की कलना से अतीत बन कर अनुलेख्य हो जाता है। साथ ही वह

स्वरूप वाणी तथा मन का विषय बनकर उससे दूर बहुत दूर चला जाता है। इसके उलट जब आप अपनी स्वरूप-विकासात्मक अवस्था को ग्रहण करती हैं, तो उस दशा में ध्यान करने से भक्त-जन आप के स्वरूप को सहज ही प्राप्त करते हैं।। २२।।

विशेष:- आपकी स्वरूप-संकोचात्मिका दशा निराकाररूपता कहलाती है और आपकी स्वरूप-विकास-रूप दशा साकाररूपता कही जाती है।

भोगाय देवि भवतीं कृतिनः प्रणम्य
भ्रूकिङ्करीकृतसरोजगृहा सहस्राः।
चिन्तामणिप्रचयकल्पितकेलिशैले
कल्पद्रुमोपवन एव चिरं रमन्ते।। २३।।

पदच्छेद अन्वय सहित

भोगाय देवि ! भवतीं कृतिनः प्रणम्य
भ्रू किङ्करीकृत सरोजगृहा सहस्राः।
चिन्तामणि प्रचय कल्पित केलिशैले
कल्पद्रुम उपवन एव चिरं रमन्ते।। २३।।

देवि ! कृतिनः भवतीं भोगाय प्रणम्य भ्रूकिंकरीकृतसरोज-गृहाः सहस्राः (सन्तः) चिन्तामणि प्रचयकल्पितकेलिशैले कल्पद्रुम-उपवने एव चिरं रमन्ते।। २३।।

शब्दार्थ

देवि ! = हे देवी !
कृतिनः = जो भाग्यशाली जन
भोगाय = सांसारिक ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए ही
प्रणम्य = आपको प्रणाम करते हैं
(ते = वे) फलतः
भ्रू = अपने नेत्रों के इशारों से ही
किंकरीकृत = अपनी दासियां बना देते हैं
सहस्राः = हजारों लक्ष्मियों को, (इसके अतिरिक्त)
चिन्तामणि = चिन्तामणि रत्नों की
प्रचय = ढ़ेर से
कल्पित = बनाये गये
केलि शैले = पर्वतपर जो उनके लिए क्रीड़ास्थल के रूप में बना हुआ होता है, (वे ऐसी ही)
कल्पद्रुम उपवने = कल्प वृक्षों से भरी हुई वनस्थली में
चिरं = अनन्त समय के लिए
रमन्ते = रमण करते हैं अर्थात् वहीं रहते हैं।

अनुवाद

जो भाग्यशाली जन, भोग अर्थात् सांसारिक ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए ही आपको प्रणाम करते हैं वे फलतः हजारों लक्ष्मियों को अपने नेत्रों के इशारों से ही अपनी दासियां बना देते हैं। इसके अतिरिक्त चिन्तामणि-रत्नों की ढेर से बनाये हुए पर्वत पर, जो उनके लिए क्रीड़ास्थल के रूप में निर्मित हुआ होता है, वे ऐसे ही पर्वत के कल्प-वृक्षों से प्रपूरित वनस्थली में अनन्त समय के लिए रमण करते हैं अर्थात् वहीं रहते हैं। भाव यह है कि जो भक्त सांसारिक ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए भी आपकी उपासना करते हैं उन्हें भी आप अपने असाधारण एवं अलौकिक ऐश्वर्य को प्रदान करती हैं।। २३।।

विशेषः- अर्थात् एक ही नहीं अनन्त लक्ष्मियां (भोग लक्ष्मी, मोक्ष लक्ष्मी, भक्ति लक्ष्मी इत्यादि) और ऐश्वर्य उनके वश में हो जाते हैं, यह सब लक्ष्मियां उस पुरुष के आंखों के इशारों पर नाचती हैं।

हन्तुं त्वमेव भवसि त्वदधीनमीशे
संसारतापमखिलं दयया पशूनाम्।
वैकर्तनीकिरणसंहतिरेव शक्ता
घर्मं निजं शमयितुं निजयैव वृष्ट्या।। २४।।

पदच्छेद अन्वय सहित

हन्तुं त्वम् एव भवसि त्वत् अधीनं ईशे !
संसार तापम् अखिलं दयया पशूनाम्।
वैकर्तनी किरण संहतिः एव शक्ता
घर्मं निजं शमयितुं निजया एव वृष्ट्या ।। २४।।

ईशे ! पशूनाम् अखिलं संसार-तापं त्वदधीनम् (अस्ति) (अत एव तं) दयया हन्तुम् (अपि) त्वमेव (समर्था) भवसि (यथा) वैकर्तनी-किरणसंहतिरेव निजं घर्मं शमयितुं निजया एव वृष्ट्या शक्ता (भवति)।। २४।।

शब्दार्थ

ईशे ! = हे जगत् का शासन करने वाली देवी!
पशूनां अखिलं संसारतापम् = सांसारिक मनुष्यों के सभी सन्ताप
त्वत् = आपके ही
अधीनं = अधीन हैं,

(अत एव तं = इसलिए उस ताप को भी)
सांसारिक व्यक्तियों (पर)
दयया = दया करके
हन्तुं = वे दुःख नष्ट करने में
त्वमेव = आप ही (समर्थ)
भवसि = हो
(यथा = जैसे)
वैकर्तनी = सूर्यभगवान् की
किरण संहति = किरणों का समूह ही
निजं धर्मं = अपनी गर्मी को (उत्पन्न करता है)
फिर
शमयितुं = शान्त करने के लिए
निजया एव = अपनी ही
वृष्ट्या = वर्षा से
शक्ता भवति = समर्थ होता है।

अनुवाद

हे जगत् का शासन करने वाली देवी ! सांसारिक मनुष्यों के सभी सन्ताप अर्थात् आधिदैविक, आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक दुःख आपके ही अधीन हैं अर्थात् आप ही उन दुःखों को उत्पन्न करती हैं—इत्यतः उन सांसारिक व्यक्तियों पर दया करके वे दुःख नष्ट करने में आप ही समर्थ हैं। जैसे सूर्य-भगवान् की किरणों का समूह गर्मी को उत्पन्न करता है और फिर से वर्षा-रूप में परिणत होकर एक बारगी उसे शान्त कर देता है।। २४।।

शक्तिः शरीरमधिदैवतमन्तरात्मा
ज्ञानं क्रिया करणमासनजालमिच्छा।
ऐश्वर्यमायतनमावरणानि च त्वं
किं तन्न यद्भवसि देवि ! शशाङ्कमौलेः।। २५।।

पदच्छेद अन्वय सहित

शक्तिः शरीरं अधिदैवतं अन्तर् आत्मा
ज्ञान क्रिया करणं आसन जालं इच्छा।
ऐश्वर्यं आयतनम् आवरणानि च त्वं
किं तत न यत् भवसि ? देवि ! शशाङ्कमौलेः।। २५।।

शशांकमौलेः देवि ! त्वं शक्तिः, शरीरम्, अधिदैवतम्, अन्तरात्मा, ज्ञानं, क्रिया, करणम्, आसनजालम्, इच्छा, ऐश्वर्यम्, आयतनम् च आवरणानि असि। तत्किं (अस्ति) यत् (त्वं) न भवसि।। २५।।

शब्दार्थ

शशांक मौलेः = चन्द्र कलाधारी भगवान् शंकर की
देवि = भगवती
त्वं = आप ही
शक्तिः = परा, परापरा और अपरा शक्ति हैं
शरीरं = स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर भी आप ही हैं,
अधिदैवतं = शरीर में ठहरा हुआ परमात्मा का स्वरूप
अन्तरात्मा = तथा उस शरीर में स्थित जीवात्मा का स्वरूप आप ही है
ज्ञानं = आप ही ज्ञान शक्ति
क्रिया = क्रियाशक्ति तथा
करणं = इन्द्रियों का समूह हैं
आसनजालं = परदशा में जो आपका आसन ईश्वर प्रेतरूपता में ठहरा हुआ है वह भी आप ही हैं
इच्छा = इच्छा शक्ति (स्वातन्त्र्य-शक्ति), ऐश्वर्यं = सर्व कर्तृता, सर्वज्ञता नित्यता आदि भाव भी आप ही हैं
आयतनं = परमेश्वर का निवास स्थान भी आप ही हैं
च आवरणानि = और स्वरूप को छिपाने वाले तीन आणवमल आदि भी आप ही हैं, (भाव यह है कि)
तत् किं अस्ति = वह कौन सी वस्तु है
यत् त्वं न भवसि = जो आप नहीं हैं।

अनुवाद

हे चन्द्रकलाधारी भगवान् शंकर की शक्ति भगवती ! आप ही परा, परापरा और अपरा शक्ति हैं। स्थूल, सूक्ष्म और कारण-शरीर भी आप ही हैं। अधिदैव अर्थात् शरीर में ठहरा हुआ परमात्मा का स्वरूप तथा उस शरीर में स्थित जीवात्मा का स्वरूप आप ही हैं। आप ही ज्ञानशक्ति, क्रिया-शक्ति, तथा इन्द्रियों का समूह भी हैं। परदशा में जो आपका आसन ईश्वर प्रेत-रूपता में ठहरा है, वह भी आप ही हैं। इच्छा-शक्ति, सर्वज्ञतादि ऐश्वर्य तथा तीन आणव-मल इत्यादि आवरण भी आप ही हैं, इसके अतिरिक्त आयतन परमेश्वर का निवास स्थान (मन्दिर) भी आप ही हैं। भाव यह है कि वह कौन सी वस्तु है जो आप नहीं हैं।। २५।।

भूमौ निवृत्तिरुदिता पयसि प्रतिष्ठा
विद्याऽनले मरुति शान्तिरतीतशान्तिः।
व्योम्नीति याः किल कलाः कलयन्ति विश्वं
तासां विदूरतरमम्ब ! पदं त्वदीयम्।। २६।।

पदच्छेद अन्वय सहित

भूमौ निवृत्तिः उदिता पयसि प्रतिष्ठा
विद्या अनले मरुति शान्तिः अतीतशान्तिः।
व्योम्नि इति याः किल कलाः कलयन्ति विश्वं
तासां विदूरतरम् अम्ब ! पदं त्वदीयम्।। २६।।

हे अम्ब ! भूमौ निवृत्तिरुदिता, पयसि प्रतिष्ठा, अनले विद्या, मरुति शान्तिः व्योम्नि अतीतशान्तिः। इत्येवम् याः किल कलाः विश्वं कलयन्ति, तासां विदूरतरम् (एव) त्वदीयं पदम्।। २६।।

शब्दार्थ

अम्ब ! = हे माता ! (आप)
भूमौ = पृथ्वी में
निवृत्तिः = निवृत्तिकला
पयसि = जलतत्त्व में
प्रतिष्ठा = प्रतिष्ठाकला
अनले = अग्नितत्त्व में
विद्या = विद्या कला
मरुति = वायु तत्त्व में
शान्तिः = शान्ता कला
व्योम्नि = आकाश तत्त्व में
अतीत शान्तिः = शान्तातीता कला
उदिता = उदित हुई है
(**इत्येवं** = इस प्रकार)
याः किल कलाः = जो ये पांच कलायें
विश्वं = छत्तीस तत्त्वरूप जगत् का
कलयन्ति = निर्माण करती हैं
तासां = उन सारी कलाओं से
विदूरतरं = सबसे दूर ही
त्वदीयं पदम् = आपका स्वरूप है।

अनुवाद

हे माता ! आप पृथ्वी में निवृत्ति-कला, जल-तत्त्व में प्रतिष्ठा-कला, अग्नि तत्त्व में विद्या-कला, वायु-तत्त्व में शान्ता-कला और आकाश-तत्त्व में शान्ता तीता कला उदित हुई हैं—इस प्रकार जो ये उपर्युक्त पांच कलाएं छत्तीस-तत्त्व रूप जगत् का निर्माण करती हैं, उन समस्त कलाओं से परे आपका स्वरूप है अर्थात् आपका स्थान सर्वोत्कृष्ट है।। २६।।

विशेषः– निवृत्ति कला आदि इन्हीं पांच कलाओं का नामान्तर त्रिकागम में धारिका कला, आप्यायनी कला, बोधिनी कला, उत्पायनीकला तथा अवकाशदा कला क्रमशः हैं और ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, सदाशिव और अनुत्तर इनके अधिष्ठातृ देव हैं। सृष्टि, स्थिति, संहार, पिधान और अनुग्रह इनकी कारण शक्तियां हैं।

तन्त्रालोक में इन कलाओं का प्रदर्शन इस रीति से किया है—

निवृत्तिः पृथ्वीतत्त्वे प्रतिष्ठाव्यक्तगोचरे।
विद्या निशान्ते शान्ता च शक्त्यन्तेऽण्डमिदं चतुः।
शान्तातीता शिवे तत्त्वे कलातीतः परः शिवः।।

यावत्पदं पदसरोजयुगं त्वदीयं
नाङ्गीकरोति हृदयेषु जगच्छरण्ये।
तावद्विकल्पजटिलाः कुटिलप्रकारा-
स्तर्कग्रहाः समयिनां प्रलयं न यान्ति।। २७।।

पदच्छेद अन्वय सहित

यावत् पदं पदसरोजयुगं त्वदीयं
न अङ्गीकरोति हृदयेषु जगत् शरण्ये !
तावत् विकल्प जटिलाः कुटिलप्रकाराः
तर्कग्रहाः समयिनां प्रलयं न यान्ति।। २७।।

जगच्छरण्ये ! यावत् त्वदीयं पदसरोजयुगं पदं हृदयेषु न अंगीकरोति, तावत् समयिनां विकल्पजटिलाः कुटिलप्रकाराः तर्कग्रहाः प्रलयं न यान्ति।। २७।।

शब्दार्थ

जगत् शरण्ये ! = हे जगत् को अपने स्वरूप में शरण देनेवाली माता !
यावत् = जब तक
त्वदीयं = आपके
पद सरोजयुगं = प्रकाश विमर्शात्मक चरण कमल युगल को
पदं हृदयेषु न अंगी करोति = अपने हृदय में स्थान नहीं दिया जाता है
तावत् = तब तक
समयिनां = समस्त मतवादी जन के
विकल्प जटिलाः = संकल्प विकल्प से कठिन बने हुए
कुटिल प्रकाराः = कुतर्क वितर्क से युक्त
तर्कग्रहाः = परस्पर वाद-विवाद करने की आदत
प्रलयं न यान्ति = समाप्त नहीं होती।

अनुवाद

हे जगत् को अपने स्वरूप में शरण देने वाली माता ! जब तक आपके प्रकाशविमर्शात्मक चरण-कमल-युगल को अपने हृदय में स्थान नहीं दिया जाता है तब तक समस्त मतवादी-जन के संकल्प-विकल्प से दुरुह, कठिन बने हुए तथा दुष्ट अर्थात् कुतर्क-वितर्क से युक्त परस्पर वाद-विवाद करने की टेंव (आदत) समाप्त

नहीं होती। भाव यह है कि जब तक साधक को स्वरूप-लाभात्मक आनन्द की प्राप्ति नहीं होती, तब तक वह वाद-विवाद के झमेले में पड़ा रहता है। जब साधक को साक्षात्कार का लाभ होता है तो फिर उसे मौन में ही प्रत्येक निधि छिपी रहती है।। २७।।

विशेष–वेदों में भी यही कहा है कि–
विजानन् विद्वान् भवति नातिवादी।

यद्देवयानपितृयानविहारमेके
कृत्वा मनः करणमण्डलसार्वभौमम्।
याने निवेश्य तव कारणपञ्चकस्य
पर्वाणि पार्वति नयन्ति निजासनत्वम्।। २८।।

पदच्छेद अन्वय सहित

यत् देवयान पितृयान विहारम् एके
कृत्वा मनः करण मण्डल सार्वभौमम्।
याने निवेश्य तव कारणपञ्चकस्य
पर्वाणि पार्वति ! नयन्ति निज-आसनत्वम्।। २८।।

पार्वति ! एके यत् = (यदा) देवयानपितृयानविहारं कृत्वा करणमण्डल सार्वभौमं मनः तव याने निवेश्य कारणपंचकस्य पर्वाणि निज-आसनत्वं नयन्ति।। २८।।

शब्दार्थ

पार्वती ! = हे माता !
एके = कई विरले भक्त
यत् देवयान = देवयान अर्थात् उत्तरायण रूपी अपान गति
तथा पितृयान = दक्षिणायण अर्थात् प्राणगति
विहारं कृत्वा = दोनों को काटकर
करणमण्डल = इन्द्रिय मण्डल के
सार्वभौमं = सम्राट् बने हुए
मनः = मन को
तव = आपके
याने = (गति विहीन सुषुम्ना धामरूप) मार्ग में
निवेश्य = लय करके।
कारण पंचकस्य = पांच कारणों अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर तथा सदाशिव के
पर्वाणि = मुकुटों को
निज आसनत्वं = अपना आसन
नयन्ति = बना देते हैं।

अनुवाद

हे पार्वती ! कई विरले भक्त-जन देवयान अर्थात् उत्तरायण रूपी अपान-गति तथा दक्षिणान अर्थात् प्राण-गति–दोनों को काटकर, इन्द्रिय-मण्डल के सम्राट बने हुए मन को आपके (गति-विहीन सुषुम्ना-धाम) रूप मार्ग में लय करते हैं। ऐसा करने पर वे पांच कारणों अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर तथा सदाशिव के मुकुटों को अपना आसन बना देते हैं। तात्पर्य यह है कि जो परमयोगी प्राणापान की गति को रोककर सुषुम्ना-मार्ग में प्रविष्ट होते हैं, वे ब्रह्मा आदि पांच कारणों के स्थान को भी तुच्छ समझते हैं और साथ ही सृष्ट्यादि पांच कृत्यों के नायक बन कर परमोत्कृष्ट शिवधाम को प्राप्त करते हैं।। २८।।

विशेष–पार्वती–

"चित् विमर्शरूपे उत्कृष्टतमे पर्वते निवसति या सा पार्वती"।

स्थूलासु मूर्तिषु महीप्रमुखासु मूर्तेः
कस्याश्चनापि तव वैभवमम्ब यस्याः।
पत्या गिरामपि न शक्यते एव वक्तुं
सासि स्तुता किल मयेति तितिक्षितव्यम्।। २९।।

पदच्छेद अन्वय सहित

स्थूलासु मूर्तिषु मही प्रमुखासु मूर्तेः
कस्याः चन अपि तव वैभवम् अम्ब ! यस्याः।
पत्या गिराम् अपि न शक्यते एव वक्तुं
सा असि स्तुता किल मया इति तितिक्षितव्यम्।। २९।।

अम्ब ! तव महीप्रमुखासु स्थूलासु मूर्तिषु (मध्यात्) यस्याः कस्याश्चनापि मूर्तेः वैभवं गिरामपि पत्या वक्तुं न शक्यते एव, सा (त्वं) मया स्तुता असि-इति तितिक्षितव्यम्।। २९।।

शब्दार्थ

अम्ब ! = हे माता !
मही प्रमुखासु = पृथ्वी आदि जो
तव = आपका
स्थूलासु मूर्तिषु = स्थूल स्वरूप है
यस्याः कस्याश्चन-अपि = उसमें से किसी एक
मूर्तेः = स्वरूप के
वैभवं = विभव का निर्णय
गिराम् अपि पत्या = बृहस्पति पाद भी
वक्तुं न शक्यते = कर नहीं सकता है

सा त्वं स्तुता = उसी आपके स्वरूप के ऐश्वर्य का गुणगान (मैं अल्पज्ञ मूर्ख) करने का साहस कर रहा हूँ

इति तितिक्षितव्यं = मेरी इस धृष्टता पर आप महानुभाव-स्वभाव वाली माता क्षमा करेंगी—यह मेरी आशा है।

अनुवाद

हे माता ! पृथ्वी इत्यादि जो आपका स्थूल स्वरूप है, उसमें से किसी एक स्वरूप के विभव का निर्णय बृहस्पति-पाद भी करने में असमर्थ हैं, उसी आप के स्वरूप के ऐश्वर्य का गुण-गान (मैं अल्पज्ञ मूर्ख) करने का साहस कर रहा हूं अर्थात् आपके पारमार्थिक स्वरूप की स्तुति कर रहा हूं - अतः इस मेरी धृष्टता पर आप महानुभाव-स्वभाव वाली माता क्षमा करेंगी—यह मेरी आशा है।। २९।।

विशेष—मही प्रमुखासु स्थूलासुमूर्तिषु—पृथ्वी अण्ड, प्रकृति अण्ड, माया अण्ड और शक्त्यण्ड—इन चार अण्डों की ओर इसमें संकेत है।

कालाग्निकोटिरुचिमम्ब षडध्वशुद्धौ
वाप्लावनेषु भवतीममृतौघवृष्टिम्।
श्यामां घनस्तनतटां सकलीकृतौ च
ध्यायन्तः एव जगतां गुरवो भवन्ति।। ३०।।

पदच्छेद अन्वय सहित

काल अग्निकोटिरुचिम् अम्ब ! षट् अध्वशुद्धौ
आप्लावनेषु भवतीम् अमृत-ओघ वृष्टिम्।
श्यामां घनस्तनतटां सकली कृतौ च
ध्यायन्तः एव जगतां गुरवः भवन्ति।। ३०।।

अम्ब ! षडध्वशुद्धौ कालाग्निकोटिरुचिम् (इव) षडध्वनः आप्लावनेषु अमृतौघ-वृष्टिमिव, च (षडध्वनः) सकलीकृतौ घनस्तनतटां श्यामां भवतीं ध्यायन्तः एव जगतां गुरवो भवन्ति।। ३०।।

शब्दार्थ

अम्ब ! = हे माता !

षट् अध्व शुद्धौ = कलाध्वा, तत्त्वाध्वा, भुवना ध्वा, वर्णाध्वा, मन्त्राध्वा और पदाध्वा—इन छः स्वरूपों वाले संसार को शुद्ध करने में अर्थात् स्वरूप विश्रान्त्यात्मक संहार करने में

कालाग्निकोटिरुचिं इव = करोड़ों कालाग्निरुद्रों के समान बना हुआ (जो भक्तजन आपका ध्यान) करते हैं, तथा (षडध्वनः)

आप्लावनेषु = समस्त संसार मण्डल का आप्लावन करने में

आपका स्वरूप अमृतौघवृष्टिं इव = अमृत

पूर्ण वर्षा की तरह देखते हैं
च = और (षडध्वनः)
सकलीकृतौ = इस जगत् मण्डल का सृजन करने में
भवती = आपके स्वरूप को
श्यामां = कृष्णवर्ण से युक्त
घनस्तनतटां = एवं बोझिल बने हुए स्तनों अर्थात् ज्ञान शक्ति और क्रिया शक्ति के विकास से युक्त बना हुआ
ध्यायन्तः = ध्यान करते हैं
जगतां गुरवो भवन्ति = वे भक्तजन तत्काल ही तीनों लोकों के गुरु बन जाते हैं।

अनुवाद

हे माता ! कलाध्वा, तत्त्वाध्वा, भुवनाध्वा, वर्णाध्वा, मन्त्राध्वा और पदाध्वा - इन छः-स्वरूप वाले संसार को शुद्ध करने में अर्थात् स्वरूपविश्रान्त्यात्मक संहार करने में जो भक्त-जन आपके स्वरूप का ध्यान करोड़ों कालाग्निरुद्रों के समान बना हुआ करते हैं तथा समस्त संसार-मण्डल का आप्लावन करने में आपका स्वरूप अमृत-पूर्ण वर्षा की तरह देखते हैं तथा इस जगत्-मण्डल का सृजन करने में आपके स्वरूप को कृष्ण-वर्ण से युक्त एवं बोझिल बने हुए स्तनों अर्थात् ज्ञान-क्रिया शक्ति के विकास से युक्त बना हुआ ध्यान करते हैं, वे जन तत्काल ही तीनों लोकों के गुरु बन जाते हैं अर्थात् तीनों लोकों पर विजय प्राप्त करते हैं।। ३०।।

विशेष–'कालाग्निकोटिरुचिं' कहने से यहां यह संकेत मिलता है कि कालाग्नि पृथ्वी अण्ड के क्षेत्र तक सीमित है पर मातृशक्ति की संहार शक्ति षडध्वा संसार के साथ अण्डचतुष्टय क्षेत्र को भी विनाश के दायरे में लाती है।

षडध्वा = कलाध्वा, तत्त्वाध्वा, भुवनाध्वा, वर्णाध्वा, पदाध्वा और मन्त्राध्वा ये छः अध्वा हैं "षडध्वा" से यही अभिप्रेत है। घनस्तनतट से अभिप्रेत है जगदम्बा के दो स्तन जो आणवोपाय क्रमसे प्राण और अपान हैं, शाक्तोपाय क्रम से ज्ञान और क्रिया हैं और शाम्भवोपाय क्रम से प्रकाश और विमर्श हैं।।

विद्यां परां कतिचिदम्बरमम्ब केचि-
दानन्दमेव कतिचित्कतिचिच्च मायाम्।
त्वां विश्वमाहुरपरे वयमामनाम
साक्षादपारकरुणां गुरुमूर्तिमेव।। ३१।।

पदच्छेद अन्वय सहित

विद्यां परां कतिचित् अम्बरम् अम्ब ! केचित्
आनन्दम् एव कतिचित् कतिचित् च मायाम्।
त्वां विश्वम् आहुः अपरे वयम् आमनाम

साक्षात् अपार करुणां गुरुमूर्तिम् एव।। ३१।।

हे अम्ब ! त्वां कतिचित् परां विद्यां केचित्, अम्बरम्, कतिचित् आनन्दमेव, कतिचित् माया, च अपरे विश्वम् आहुः। वयं (तु त्वां) अपारकरुणां साक्षात् गुरुमूर्तिमेव आमनाम।।३१।।

शब्दार्थ

अम्ब ! = हे माता !
त्वां = आपको
कतिचित् = कई
परां विद्यां = उत्कृष्ट ज्ञान का स्वरूप मानते हैं
केचित् = कई
अम्बरं एव = चिदाकाशरूप या शून्य स्वरूप मानते हैं
कतिचित् = कई
आनन्दमेव = आपको आनन्दस्वरूप ही मानते हैं
कतिचित् = कई
मायां = माया का स्वरूप मानते हैं
च अपरे = और कई जन
विश्वे = विश्वाकार
आहुः = आपको बतलाते हैं
वयं तु = हम तो आपके स्वरूप को
अपारकरुणां = अनन्त करुणापूर्ण
साक्षात् = प्रत्यक्ष
गुरुमूर्ति एव = सद्गुरु का स्वरूप ही
आमनाम = मानते हैं।

अनुवाद

हे माता ! कई तो आपको विद्या का स्वरूप मानते हैं। कई आकाश अर्थात् शून्य-स्वरूप मानते हैं। कुछ लोग आपको आनन्द-स्वरूप ही मानते हैं। कई माया का स्वरूप मानते हैं और कई जन आपको विश्वाकार बतलाते हैं। हम तो आपके स्वरूप को अनन्त-करुणा-पूर्ण साक्षात् गुरु-रूप ही मानते हैं।। ३१।।

विशेष—अपार करुणा से अभिप्रेत है अनन्त अनुग्रह।

गुरुमूर्तिमेव— तन्त्रालोक में कहा है कि—

गुरुर्वा पारमेश्वरी अनुग्राहि शक्तिः

अर्थात् सर्वोच्च अनुग्रहमयी पारमेश्वरी ही गुरु है। विद्या से अभिप्रेत है शुद्धविद्या।

श्री महेश्वरानन्द ने महार्थमञ्जरी में विद्या की परिभाषा इस प्रकार दी है—

ज्ञाता स आत्मा ज्ञेयस्वभावश्च लोकव्यवहारः।
एकरसां संसृष्टिं यत्रागतौ सा खलु निस्तुषा विद्या।।

अर्थात् आत्मा ज्ञाता है, सर्व लोक व्यवहार ज्ञेय स्वभाव का है, जब दोनों का प्रवाह समरस हो वही निर्मला विद्या कही जाती है।

कुवलयदलनीलं बर्बरस्निग्धकेशं
पृथुतरकुचभाराक्रान्तकान्तावलग्नम्।

किमिह बहुभिरुक्तैस्त्वत्स्वरूपं परं नः
सकलभुवनमातः सन्ततं सन्निधत्ताम् ।। ३२।।

पदच्छेद अन्वय सहित

कुवलय दल नीलं बर्बर स्निग्धकेशं
पृथुतर कुचभार आक्रान्त कान्त अवलग्नम्
किम् इह बहुभिः उक्तैः त्वत् स्वरूपं परं नः
सकल भुवन मातः ! सन्ततं सन्निधत्ताम्।। ३२।।

हे सकलभुवनमातः ! त्वत्-परं-स्वरूपं कुवलयदलनीलं, बर्बर-स्निग्ध-केशं, पृथुतर-कुचभार-आक्रान्त-कान्त अवलग्नम् (अस्ति)। इह बहुभिरुक्तैः किम् ? (त्वत्स्वरूपं) नः सन्ततं सन्निधत्ताम्।। ३२।।

शब्दार्थ

हे सकलभुवनमातः = हे समस्त भुवनों की माता !
त्वत्-परं-स्वरूपं = आपका श्रेष्ठ स्वरूप
कुवलय दल नीलं = कुवलय नामी फूलों के पत्ते के समान नीला
बर्बर स्निग्ध केशं = तथा भूरे चिकने केशों से युक्त (इसके अतिरिक्त)
पृथुतर कुचभार = ज्ञानक्रियारूपी स्तनों की फैलावट से युक्त
आक्रान्त = घेरे हुए
कान्तावलग्नं = सुन्दर वक्षस्थल से शोभायमान शरीरवाला
(**त्वत्स्वरूपं** = आपका यह स्वरूप)
नः = हमें
सन्ततं = सदा के लिए
सन्निधत्तां = प्रकट रहे
किमिह बहुभिः उक्तैः = ज्यादा कहने से इस समय क्या लाभ है।

अनुवाद

हे समस्त भुवनों की माता ! आपका (श्रेष्ठ) स्वरूप कुवलय नामी पुष्पों के पत्ते के समान नीला तथा भूरे चिकने केशों से युक्त है। इसके अतिरिक्त ज्ञान-क्रिया रूपी स्तनों की फैलावट से युक्त आपका सुन्दर वक्षस्थल से सुशोभित शरीर, महादेव के शरीर के साथ सदैव लगा रहता है। ज्यादा कहने से इस समय क्या लाभ है- आपका यह स्वरूप हमें सदा के लिए प्रकट रहे।। ३२।।

विशेषः- इस श्लोक में भुवन-शब्द में तीनों जाग्रदादि अवस्थाओं की ओर संकेत है। बर्बर-केशों से उस पराशक्ति की अनन्त शक्तियों की ओर संकेत है अर्थात् पराशक्ति सदैव अपने शक्तिचक्रों से युक्त रहती है।

इति अम्बास्तवः चतुर्थः समाप्तः।।

अथ सकलजननीस्तवः पञ्चमः

उों अजानन्तो यान्ति क्षयमवशमन्योन्यकलहै-
रमी मायाग्रन्थौ तव परिलुठन्तः समयिनः।
जगन्मातर्जन्मज्वरभयतमः कौमुदि ! वयं
नमस्ते कुर्वाणाः शरणमुपयामो भगवतीम्।। १।।

पदच्छेद अन्वय सहित

अजानन्तः यान्ति क्षयम् अवशम् अन्योन्य कलहैः
अमी माया ग्रन्थौ तव परिलुठन्तः समयिनः।
जगतः मातः ! जन्मज्वरभयतमः कौमुदि ! वयं
नमः ते कुर्वाणाः शरणम् उपयामः भगवतीम्।। १।।

हे जगन्मातः! हे जन्मज्वरभयतमः कौमुदि! (त्वत्स्वरूपम्) अजानन्तः अमी समयिनः अन्योन्यकलहैः अवशम् क्षयं यान्ति। (यतस्ते) तव मायाग्रन्थौ परिलुठन्तः। वयं तु ते भगवतीम् नमस्कुर्वाणाः शरणमुपयामः।। १।।

शब्दार्थ

हे जगत् माता = हे जगत् माता
हे जन्मज्वरभयतमः कौमुदि ! = आवागमन के भय आदि व्याधि के भय और अज्ञान रूपी अन्धकार को मिटाने में चन्द्रमा के प्रकाश के समान बनी हुई।
त्वत्स्वरूपं = आपके पारमार्थिक संवित् स्वरूप को
अजानन्तः = न जानते हुए
अमी समयिनः = ये वाद विवाद करने वाले व्यक्ति
अन्योन्यकल हैः = परस्पर वादविवाद रूपी, झगड़ों से
अवशं = अवश्य
क्षयं यान्ति = नष्ट हो जाते हैं अर्थात् भेदभावनात्मक बुद्धि से वे अपनेस्वरूप को जानने से वंचित रहते हैं।
(यतस्ते) = क्योंकि वे
तव = आपके
मायाग्रन्थौ = मायाग्रन्थि नामक जाल में (फंसकर)
परिलुठन्तः = (इधर-उधर) लुढ़कते रहते हैं।
वयंतु = हमतो (उस जाल में न फंसकर)
ते भगवतीं = आप भगवती को
नमस्कुर्वाणाः = (शरीर, वाणी और मन से) नमस्कार करते हैं और
शरणं उपयामः = आपके स्वरूप में सदा समाविष्ट होते हैं।

अनुवाद

जन्म-ज्वर-भय और अन्धकार को नष्ट करने में चन्द्रमा के प्रकाश के समान बनी हुई हे जगन्माता ! वाद-विवाद करने वाले जो व्यक्ति आपके पारमार्थिक संवित्स्वरूप को नहीं जानते, वे आपके 'माया-ग्रन्थि' नामक जाल में फंस कर (इधर-उधर) लुढ़कते रहते हैं। इस प्रकार के पारस्परिक (वाद-विवाद रूपी) झगड़े से वे अवश्य नष्ट हो जाते हैं, अर्थात् भेदभावनात्मक बुद्धि से वे अपने स्वरूप को प्राप्त करने से वंचित रहते हैं। हम तो उनके इस कलह-रूपी जाल में न फंस कर आप भगवती को (शरीर से, वाणी से और मन से) नमस्कार करते हैं और आपके स्वरूप में सदा के लिए समाविष्ट होते हैं।। १।।

वचस्तर्कागम्यस्वरसपरमानन्दविभव-
प्रबोधाकाराय द्युतिदलितनीलोत्पलरुचे।
शिवस्याराध्याय स्तनभरविनम्राय सततं
नमो यस्मै कस्मैचन भवतु मुग्धाय महसे।। २।।

पदच्छेद अन्वय सहित

वचः तर्क अगम्य स्वरस परम-आनन्द विभव-
प्रबोध आकाराय द्युति दलित नील उत्पल रुचे !
शिवस्य आराध्याय स्तन भर विनम्राय सततं
नमः यस्मै कस्मैचन भवतु मुग्धाय महसे।। २।।

वचस्तर्कागम्यस्वरसपरमानन्दविभवप्रबोधाकाराय द्युतिदलितनीलोत्पलरुचे स्तनभर-विनम्राय शिवस्य आराध्याय यस्मै कस्मैचन मुग्धाय महसे नमः।। २।।

शब्दार्थ

वचः = वाणी और
तर्क = **तर्क से**
अगम्य = जानने के अयोग्य
स्वरस = अपने अनुभव से जानने के योग्य
परमानन्द = परम आनन्द रूप
विभव = ऐश्वर्य को
प्रबोध = सजग बनाता है
आकाराय = जिसका स्वरूप
उत्पल रूचे = जैसे सूर्य प्रकाश से कमल के फूल खिल उठते हैं उसी प्रकार से जो
द्युति = अपनी संविद रश्मियों से (किरणों से) ही
दलित = विकसित करता है
नीलोत्पलरुचे = नील पीत आदि सारे पदार्थ वर्ग को
सततं = सदैव

स्तनभरविनम्राय = स्तनों के बोझ से विनम्र अर्थात् ज्ञान और क्रिया शक्ति रूपी स्तनों के गौरव से विनम्र
शिवस्य आराध्याय = भगवान् शंकर भी जिसकी आराधना करते हैं।
यस्मै = आपके उस
कस्मैचन = अलौकिक
महसे = तेज को
मुग्धाय = जो अत्यन्त सुन्दर है
नमः = नमस्कार हो।

अनुवाद

आपके उस अत्यन्त सुन्दर, अत्यन्त अलौकिक तेज को नमस्कार हो, जो वाणी और तर्क से जाना नहीं जाता, जिसका स्वरूप स्वानुभव-गम्य परमानन्दात्मक ऐश्वर्य को सजग बनाता है, जो अपनी संविद्-रश्मियों से ही नील-पीत आदि समस्त वस्तु-वर्ग को विकसित करता है जैसे सूर्य-प्रकाश से उत्पल-पुष्प विकसित होते हैं, जो प्रकाश ज्ञान-क्रियात्मक स्तनों के गौरव से विनम्र है अर्थात् सदैव विश्वमयरूपता को प्रकट करता है और जिस परम-तेज की आराधना भगवान् शंकर करते रहते हैं॥ २॥

विशेषः– स्तन यहां ज्ञान शक्ति और क्रिया शक्ति के प्रतीक हैं।

भर विनम्र शब्द का तात्पर्य है कि अलौकिक प्रकाश सदैव विश्वमयरूपता को प्रकट करता है।

ब्रह्माण्डपुराण में कहा भी है–

'शिवोऽपि यां समाराध्य ध्यान योग बलेन च।
ईश्वरः सर्वसिद्धीनामर्धनारीश्वरोऽभवत्॥'

लुठद्गुञ्जाहारस्तनभरनमन्मध्यलतिका-
मुदञ्चद्धर्माम्भः कणगुणितनीलोत्पलरुचम्।
शिवं पार्थत्राणप्रवणमृगयाकारगुणितं
शिवामन्वग्यान्तीं शवरमहमन्वेमि शवरीम्॥ ३॥

पदच्छेद अन्वय सहित

लुठत् गुंजाहार स्तनभर नमन् मध्य लतिकाम्
उदञ्चत् धर्माम्भः कण गुणित नीलोत्पलरुचम्।
शिवं पार्थत्राण प्रवण मृगया आकार गुणितं
शिवां अन्वग्यान्तीं शवरं अहं अन्वेमि शवरीम्॥ ३॥

उदञ्चद्धर्माम्भः कणगुणितनीलोत्पलरुचम् पार्थत्राणप्रवण-मृगयाकारगुणितं शवरं शिवम् अन्वग्यान्तीं लुठद्गुञ्जाहारस्तन भरनमन्मध्यलतिकां शवरीं शिवाम् अहम् अन्वेमि॥३॥

शब्दार्थ

कहते हैं कि अर्जुन पाशुपत अस्त्र को पाने के लिए इन्द्र कील पर्वत पर तपस्या करने लगे। अपने भक्त अर्जुन की रक्षा करने के लिए शिकार करने के अभिप्राय से भगवान शंकर ने शिकारी का रूप धारण किया। अनन्या पार्वती भी शंकर के पीछे-पीछे दौड़ने लगी। शिकार खेलने के इस भाग दौड़ में भगवान शंकर के शरीर से

उदञ्चत् = निकलते थे

धर्माम्भः कण = गर्म गर्म पसीनों की बूंदें मानो वे पसीनों की बूंदें

गुणित नीलोत्पल रुचम् = नीलकण्ठ के नीले शरीर पर नील कमल पर पड़ें ओस बिन्दुओं के समान चमकते थे

पार्थत्राण प्रवण = अर्जुन की रक्षा करने के लिए तत्पर

मृगयाकार गुणितं = शिकारी का रूप धारण करते हुए

शवरं शिवं = शिकारी शिव के

अन्वग् = पीछे-पीछे

यान्तीं = दौड़ती जाती

शवरीं = शिकारिन का रूप धारण करती हुई

शिवां = पार्वती जी को

लुठत् = इधर-उधर लुढ़कता था (दौड़ने के कारण)

गुञ्जाहार = घुंघचियों का हार

स्तनभर = और स्तनों के बोझ से

नमम्मध्यलतिकां = उसकी कमर झुकी हुई थी

अहं अन्वेमि = (ऐसी ही रूपवाली शिकारिन पार्वतीजी की) शरण में मैं जाता हूँ।

अनुवाद

इन्द्रकीलगिरि पर पाशुपत-अस्त्र-प्राप्ति के लिए तपस्या करते हुए अर्जुन की रक्षा करने के हेतु आखेट-क्रिया करते हुए शिकारी का रूप शिवजी ने धारण किया था, अत एव शिवजी के शरीर से उष्ण २ स्वेद-कण निकलते थे मानो उसके नील-रंग वाले शरीर पर वे स्वेद-कण नील-कमल के समान चमकते थे। ऐसे ही शिकारी का रूप धारण करते हुए शिव के पीछे-पीछे शिकारिन का रूप धारण करती हुई पार्वती जी दौड़ती चली जाती थी जिस पार्वती जी को दौड़ने के कारण घुंघचियों की माला वक्षस्थल पर हिलती हुई इधर-उधर वक्षस्थल के दोनों ओर से लुढ़कती थी, और उसके वक्षस्थल के भार भोझ से उसकी कमर झुकी हुई थी–ऐसी ही रूप वाली शिकारिन पार्वती जी की शरण मैं लेता हूं अर्थात् उसमें समावेश करता हूं॥ ३॥

विशेषः–पाशुपत अस्त्र प्राप्ति के लिए इन्द्रकील पर्वत पर अर्जुन की तपस्या का विशेष वर्णन महाकवि भवभूति ने अपने महाकाव्य किरातार्जुनीयम् में किया है।

अन्वेमि = शरण में जाने का तात्पर्य है कि मैं उसमें समावेश करता हूँ

मिथः केशाकेशिप्रधननिधनास्तर्कघटनाः
बहुश्रद्धाभक्ति प्रवणविषयाश्चाप्तविधयः।
प्रसीद प्रत्यक्षीभव गिरिसुते ! देहि शरणं
निरालम्बं चेतः परिलुठति पारिप्लवमिदम्।। ४।।

पदच्छेद अन्वय सहित

मिथः केशा केशि प्रधननिधनाः तर्कघटनाः
बहुश्रद्धाभक्तिप्रवणविषयाः च आप्तविधयः।
प्रसीद प्रत्यक्षीभव गिरिसुते ! देहि शरणं
निरालम्बं चेतः परिलुठति पारिप्लवम् इदम्।। ४।।

तर्कघटनाः मिथः केशाकेशिप्रधननिधनाः, आप्तविधयः च बहुश्रद्धाभक्तिप्रवणविषयाः। हे गिरिसुते ! प्रसीद, प्रत्यक्षीभव, शरणं देहि। (यतः) इदम् (अस्माकं) चेतः निरालम्बं (सत्) पारिप्लवं परिलुठति।। ४।।

शब्दार्थ

मिथः = परस्पर एक दूसरे के
केशाकेशि = बालों को पकड़कर अर्थात् अपने अपने मतों को सिद्ध करने के लिए
तर्क घटना = परस्पर वाद-विवाद करने वालों की
प्रधन = लडाई
निधनाः = आयु की समाप्ति करवाती है
आप्तविधयः = स्वात्म लाभ संपन्न आप्त पुरुषों के शास्त्र
बहुश्रद्धाभक्तिप्रवणविषयाः = बहुत ही श्रद्धा तथा भक्ति की शक्ति पर निर्भर है। अतः
हे गिरिसुते = हे पर्वत पुत्री !
प्रसीद = मुझपर प्रसन्न बनिये
प्रत्यक्षीभव = नेत्रों का विषय होवे और
देहिशरणं = पूरी रक्षा कीजिये।
निरालम्बं = क्योंकि आश्रयहीन तथा
पारिप्लवं = संकल्प विकल्प रूपी उपद्रवों से पूर्ण बना हुआ
इदं चेतः = यह मेरा मन
परिलुठति = लुढ़कता रहता है

अनुवाद

तार्किक सिद्धान्तियों के पारस्परिक वाद-विवाद रूपी प्रधन (युद्ध) अन्त में उन्हें कुछ प्राप्त न होकर आयु की समाप्ति ही करवाता है। स्वरूप-साक्षात्कार-संपन्न

आप्तपुरुषों के शास्त्र तो बहुत ही श्रद्धा तथा भक्ति की शक्ति पर निर्भर हैं। मैं तो उपर्युक्त दोनों बातें करने का साहस नहीं रखता हूं। अतः हे गिरिजे ! मुझ पर आप प्रसन्न बनिये, अर्थात् अनुग्रह कीजिये, उस के पश्चात् मेरे नेत्रों का विषय बनिये और फिर मेरी संपूर्ण रक्षा कीजिये, क्योंकि संकल्प-विकल्प-रूपी उपद्रवों से युक्त बना हुआ मेरा आश्रयहीन मन लुढ़कता रहता है अर्थात् स्वरूपविश्रांति प्राप्त करने से वंचित रहता है।। ४।।

विशेषः- लुढ़कने का तात्पर्य यह है कि मेरा मन स्वात्मविश्रान्ति से वंचित रहता है।

शुनां वा वह्नेर्वा खगपरिषदो वा यदशनं
कदा केन क्वेति क्वचिदपि न कश्चित्कलयति।
अमुष्मिन्विश्वासं विजहिहिममाह्नाय वपुषि
प्रपद्येथाश्चेतः सकलजननीमेव शरणम्।। ५।।

पदच्छेद अन्वय सहित

शुनां वा वह्नेः वा खगपरिषदः वा यत् अशनं
कदा केन क्व इति क्वचित् अपि न कश्चित् कलयति।
अमुष्मिन् विश्वासं विजहिहि मम अह्नाय वपुषि
प्रपद्येथाः चेतः सकलजननीम् एव शरणम्।। ५।।

हे मम चेतः ! यत् (वपुः) शुनां वा, वह्नेर्वा, खगपरिषदः वा अशनम्। इति कश्चिदपि कदा, केन, क्व, क्वचित्, न कलयति। (इत्यतः त्वं) अमुष्मिन् वपुषि विश्वासम् अह्ना विजहिहि तथा अह्नाय सकलजननीम् एव शरणं प्रपद्येथाः।। ५।।

शब्दार्थ

हे मम चेतः = हे मेरे मन!
यत् (वपुः) = यह शरीर
शुनां = कुत्तों का (यह शब्द यहां शेर आदि जंगली हिंसक प्राणियों का भी उपलक्षण हैं)
वह्नेर्वा = अथवा श्मशान अग्नि का (या साधारण अग्नि का)
खगपरिषदः वा = या पक्षियों के समूह का (गीध, चील आदि पक्षियों का)
अशनं = भोजन अथवा ग्रास बनेगा
कदा = कब या किस समय
केन = किस कारण
क्व = कहां पर
इति = इस बात को
क्वचित् = किसी अवस्था में
अति = भी
न कश्चित् अपि = कोई भी नहीं

कलयति = इसका अनुमान लगा सकता है।
इत्यतः त्वं = इस कारण तू मेरे मन
अमुष्मिन् वपुषि = मेरे इस शरीर का
विश्वासं = अहं अभिमानात्मक विश्वास
अह्नाय = जल्दी
विजहिहि = छोड़ दो
शरणं प्रपद्येथाः = शरण ग्रहण कर
अह्नाय शब्द को शरणं प्रपद्येथाः के साथी भी जोड़ना चाहिए अर्थात् जल्दी शरण ग्रहण कर
सकल जननीं एव = सारे संसार की माता को ही

अनुवाद

हे मेरे मन ! न जाने कब, किसके कारण, कहां पर और किस अवस्था में यह शरीर, कुत्तों का, श्मशान-अग्नि का, पक्षियों के समूह का ग्रास अर्थात् भोजन बनेगा, इसका अनुमान कोई भी नहीं लगा सकता। अतः इस शरीर का (अहम्-अभिमानात्मक) विश्वास जल्दी छोड़ कर समस्त संसार की जननी परा-पारमेश्वरी शक्ति भगवती की ही शरण ग्रहण कर।। ५।।

विशेषः- सकल जननी का तात्पर्य है कि सकल अर्थात् भूः भुवः, स्वः नामक जगत् की अथवा वाच्य वाचक रूप वर्णाध्वा, पदाध्वा आदि छः प्रकार के स्फारमय जगत् की
जननी = स्थिति प्रदान करने वाली पराशक्तिरूप परदेवता।
तात्पर्य यह है कि शरीर कृतघ्न है वह तेरा साथ नहीं देगा। जगन्माता ऐसे नहीं उसी की शरण लो। कहा भी है- माता कुमाता न भवति आदि।
सकल जननीं शब्द से आचार्य ने पराविद्या के "स" शक्ति कूट का उद्धार इस श्लोक में किया है।

अनाद्यन्ताभेदप्रणयरसिकापि प्रणयिनी
शिवस्यासीर्यत्त्वं परिणयविधौ देवि ! गृहिणी।
सवित्री भूतानामपि यदुदभूः शैलतनया
तदेतत्संसारप्रणयनमहानाटकसुखम्।। ६।।

पदच्छेद अन्वय सहित

अनाद्यन्ता भेदप्रणयरसिका अपि प्रणयिनी
शिवस्य आसीः यत् त्वं परिणयविधौ देवि ! गृहिणी
सवित्री भूतानाम् अपि यत् उदभूः शैलतनया
तत् एतत् संसार प्रणयनमहानाटक सुखम्।। ६।।

हे देवि ! (हिमालयालये जन्मग्रहणपूर्वं) परिणयविधौ प्रणयिनी गृहिणी आसीः। भूतानां सवित्री अपि यत् (त्वं) शैलतनया उदभूः। तदेतत् संसार-प्रणयन-महानाटक-सुखम्।।६।।

शब्दार्थ

हे देवि! = हे देवी।
(हिमालयालये जन्मग्रहणपूर्व) हिमालय के घर में जन्म लेने से पहिले
परिणयविधौ = विवाह के समय
शिवस्य = शिव की
अनाद्यन्ता = आदि और अन्तरहित
अभेद = अभेद रूप
प्रणय = प्रेम में
रसिकापि = आनन्द लेने वाली होकर भी
प्रणयिनी = प्रेमवती
गृहिणी = सहधर्मिणी अर्थात् अर्धांगिनी
असि = बनी
भूतानां = सारे प्राणियों की
सवित्री अपि = उत्पन्न करने वाली होकर भी
यत् (त्वं) = जो आप
शैलतनया = हिमालय पर्वत की कन्या बनकर
उदभूः = प्रकट हुई
तत् एतत् = वही यह सब
संसार प्रणयन = संसार रचनारूप, अर्थात् शिव के साथ विवाह करके उसकी अर्धांगिनी बनना फिर हिमालय के घर पुत्री के रूप में जन्म लेना
महानाटक सुखं = आनन्दपूर्ण श्रृंगार रस सहित नाटक सुख ही है, अर्थात् यह आपकी एक सुखमय लीला है।

अनुवाद

हे देवी ! अनुत्तर परमशिव के साथ अभिन्न होने से आप आदि और अन्त से रहित अभेदात्मक प्रेम में रसिक होकर भी, हिमालय के घर में जन्म लेने से पूर्व, पाणि-ग्रहण के समय भगवान् शंकर जी की अर्धांगिनी बनीं। इसके अतिरिक्त सकलादि समस्त प्राणियों को उत्पन्न करने वाली होकर भी, जो आप हिमालय-पर्वत की कन्या बनकर प्रकट हुई, अर्थात् जगत्जननी होकर भी आप हिमालय की पुत्री बन गईं। इस प्रकार का वैषम्य देखकर यही अनुमान लगाया जाता है कि आप का शिव के साथ पाणि-ग्रहण करके गृहिणी बनना तथा हिमालय के घर जन्म लेना एक विनोदमय शृङ्गाररसपूर्ण नाटक-सुख ही है अर्थात् जन्मग्रहण तथा दम्पतीभाव का संपादन रूप संसार, एक आप की सुखमय लीला है।। ६।।

विशेषः- देवि! शब्द का ही आमन्त्रण रूप में प्रयोग करके यह दर्शाया गया है कि इस श्लोक में नाटक क्रीडा का वर्णन हो रहा है। क्योंकि पाणिनीय व्याकरण के अनुसार देवि शब्द "दिवु क्रीडा विजिगीषा" आदि अर्थ वाले दिवु धातु से बना है।

भूतानां = विज्ञानाकल प्रलयाकल और सकल तक सारे प्रमातृ वर्गों की तथा पृथिवी तत्त्व से लेकर शिव तत्त्व तक सारे छत्तीस तत्त्वों का अर्थ है।

अपि शब्द यहां विरोध को जतलाने वाला है कि सर्वजननी होके भी किसी के घर में पुत्री बनके

आना विरोधाभास है। संसार शब्द से गृहस्थ धर्म का पालन करने की ओर संकेत मिलता है।

ब्रुवन्त्येके तत्त्वं भगवति ! सदन्ये विदुरस-
त्परे मातः ! प्राहुस्तव सदसदन्ये सुकवयः।
परे नैतत्सर्वं समभिदधते देवि ! सुधिय-
स्तदेतत्त्वन्माया विलसितमशेषं ननु शिवे ! ।। ७।।

पदच्छेद अन्वय सहित

ब्रुवन्ति एके तत्त्वं भगवति ! सत् अन्ये विदुः असत्
परे मातः ! प्राहुः तव सत् असत् अन्ये सुकवयः।
परे न एतत् सर्वं समभिदधते देवि ! सुधियः
तत् एतत् त्वत् माया विलसितं अशेषं ननु शिवे ! ।। ७।।

हे भगवति ! एके (तव) तत्त्वं सत् ब्रुवन्ति, अन्ये असत् - इति विदुः। हे परे मातः ! अन्ये सुकवयः तव (तत्त्वं) सदसत् प्राहुः। हे देवि ! ननु तत् एतत् अशेषं त्वत्माया-विलसितम् (अस्ति)।। ७।।

शब्दार्थ

हे भगवती ! = हे स्वातन्त्र्यशालिनी देवी
एके = कई विद्वान् लोग (तव तत्त्व) तुम्हारे तत्त्व को
सत् = सत् रूप
ब्रुवन्ति = कहते हैं
अन्ये = दूसरे लोग
असत् = असत् रूप
इति विदुः = जानते हैं
हे परे मातः =हे पराशक्ति माता
अन्ये सुकवयः = दूसरे ज्ञानी लोग
तव तत्त्वं = तुम्हारे तत्त्व को
सदसत् = साकार रूप और निराकार रूप
प्राहुः = कहते हैं
हे देवि = हे माता!
परे सुधियः = दूसरे ज्ञानी जन
एतत् सर्वंन = यह सब नहीं अर्थात् आपका स्वरूप न सत्‌रूप न असत् रूप न सदसत् रूप है
समभिदधते = ऐसा कहते हैं
हे शिवे = हे पार्वती जी!
तत् एतत् अशेषं = यह ऊपर कहे हुए आपके सभी लक्षण
ननु = निश्चय करके
त्वत् = आपकी
मायाविलसितं = माया शक्ति अर्थात् आपकी अप्रतिहता स्वातन्त्र्य शक्ति की क्रीड़ा है।

अनुवाद

हे स्वातन्त्र्यशालिनी देवि ! कई बुद्धिमान् जन आपके स्वरूप को सत् रूप और कई असत्-स्वरूप अर्थात् वाणी तथा मन का विषय न होने के फलस्वरूप

शून्यात्मक कहते हैं। हे परा-शक्ति-रूप माता ! कई विद्वान् जन आपका स्वरूप सदसदुभयात्मक कहते हैं, यानी आपका स्वरूप साकार रूप भी है और निराकाररूप भी है। इसके अतिरिक्त कई ज्ञानी-जन कहते हैं कि तत्त्वदृष्टि से यह कुछ ही नहीं है अर्थात् आपका स्वरूप अनुलेख्य होने से न सत् है, न असत् और न सदसद्रूप है। इससे मुझे यह अनुमान होता है कि हे पार्वती जी ! यह ऊपर-वर्णित आपके सभी लक्षण आपकी अप्रतिहता स्वातंत्र्य-शक्ति की केवल क्रीड़ा है और कुछ नहीं।। ७।।

विशेषः- हे शिवे ! शिवा पार्वती को कहते हैं उसका आमन्त्रण पद है शिवे ! अपने भक्तों का कल्याण करने से इसे शिवा कहते हैं। अथवा शिवः कामेश्वराख्यः अस्ति अस्याः पतिः तेन् अथवा शिवं मोक्षं ददाति इति शिवा।

कहा है—

शिवा मुक्तिः समाख्यता योगिनां मोक्षदायिनी।
शिवाय जयते देवी ततो लोके शिवा स्मृता।।

तडित्कोटिज्योतिर्द्युतिदलितषड्ग्रन्थिगहनं
प्रविष्टं स्वाधारं पुनरपि सुधावृष्टिवपुषा।
किमप्यष्टात्रिंशत्किरणसकलीभूतमनिशं
भजे धाम श्यामं कुचभरनतं बर्बरकचम्।। ८।।

पदच्छेद अन्वय सहित

तडित् कोटिज्योतिः द्युतिदलितषट्ग्रन्थि गहनं
प्रविष्टं स्वाधारं पुनः अपि सुधावृष्टि वपुषा।
किम् अपि अष्टात्रिंशत् किरण सकली भूतम अनिशं
भजे धाम श्यामं कुचभरनतं बर्बर कचम्।। ८।।

(अहं) तडित्कोटि ज्योतिर्द्युतिदलितषट्ग्रन्थि गहनं, पुनरपि, सुधावृष्टि वपुषा स्वाधारं प्रविष्टम्, अष्टात्रिंशत्किरणसकली-भूतं, कुचभरनतं, बर्बरकचम् किमपि श्यामं धाम अनिशं भजे।। ८।।

शब्दार्थ

तडित कोटिज्योतिः = जोतेज करोड़ों बिजलियों के प्रकाश की

द्युतिः = कान्ति से

दलित = काटता या वेधन करता है।

षड्ग्रन्थि = छः ग्रथियों अर्थात् मूलाधार चक्र से लेकर सहस्रार चक्र तक विद्यमान छः

बन्धनों के

गहनं = दुष्प्रवेश स्थानों को

पुनरपि = फिर से (अवरोहण क्रम से)

सुधावृष्टिवपुषा = परमानन्दरूपी अमृतवर्षा से युक्त अर्थात् बैन्दवी धाम से फूट पड़े अमृत वर्षा रूप से नानाविध नाड़ियों में व्याप्त होकर

स्वाधारं = अपने आधार अर्थात् मूलाधार में

प्रविष्टं = प्रवेश करता है।

किमपि = किसी अलौकिक

अष्टात्रिशत् किरण = अठतीस किरणों को अर्थात् चन्द्रमा की सोलह कलाओं को, सूर्य की बारह कलाओं को और अग्नि की दस कलाओं को

सकलीभूतं = अपने स्वरूप में लीन किया है (इस प्रकार इन उपरोक्त तेजों की एकीभूत अवस्था धारण करने के फलस्वरूप जो तेज)

बर्बरकचं = कश्मीरी बेल "बबर" के समान वर्ण का है अथवा शैवाचार्य श्री हरभट्ट शास्त्री ने अपनी व्याख्या में इसका अर्थ इस प्रकार किया है– बर्बरा कुटिलाः इतस्ततः प्रसरन्तः केशा मरीचि पुंजाः = (किरणों का समूह)

कुचभरनतं = ज्ञान क्रिया रूपी स्तनों के (अर्थात् अहन्ता इदन्ता विषयक ज्ञान क्रिया रूपी) विमर्शात्मक बोझ से झुका हुआ है जगदानन्दरूपी अवस्था की ओर

श्यामं = श्यामवर्णवाला बन गया है

धाम = इस परमधामात्मक तेज की

अनिशं = निरन्तर रूप से

भजे = मैं वन्दना करता हूँ अर्थात् सदा के लिए उसमें समाविष्ट होता हूँ

अनुवाद

जो तेज, अपने करोड़ों बिजलियों के प्रकाश की कान्ति से (सभी) छः चक्रों का वेधन करता है, तथा परमानन्द रूपी अमृतवर्षा-से युक्त ऊर्ध्वकुण्डलिनी का स्वरूप धारण करके फिर से अपने आधार अर्थात् मूलाधार-स्थान में प्रवेश करता है–इस प्रकार जिस तेज ने अठतीस किरणों को सोम, सूर्य तथा अग्नि - इन तीन प्रकाशों की अठतीस कलाओं को अपने स्वरूप में लीन किया है और इसीलिए इन तीन तेजों की संघटनात्मक अवस्था धारण करने के फलस्वरूप जो तेज, श्याम-वर्ण वाला बन गया है, तथा ज्ञान क्रिया रूपी स्तनों के विमर्शनात्मक बोझ से जो तेज जगदानन्द रूपी अवस्था की ओर झुका हुआ है, एवं इस रीति से जिस तेज ने अपने अनन्त विश्व-व्यापी शक्ति-चक्र को विकसित किया है, उसी अलौकिक परम-धामात्मक तेज की मैं वन्दना करता हूं अर्थात् उसमें सदा के लिए समाविष्ट होता हूं।। ८।।

विशेषः- सोम, सूर्य और अग्नि की अठतीस कलायें ये हैं– सोम की सोलह कलाएं

(अमृता, मानदा, पूषा, पुष्टिः, प्रीतिः, रेवती, ह्रीमती, श्री, कान्तिः, सुधा, ज्योत्स्ना, हैमवती, छाया, संपूरिणी, रामा और श्यामा); सूर्य की बारह कलाएं (तपिनी, तापिनी, शोधनी, शोषणी, भ्रामणी, क्लेदिनी, वरेण्या, आकर्षिणी, सुषुम्णा, वृष्टिवाहा, ज्येष्ठा और हिरण्यदा); अग्नि की दस कलाएं– (धूम्रार्चिः, नीलरक्ता, कपिला, विस्फुलिंगिनी, ज्वालामालिनी, अर्चिष्मती, हव्यवाहिनी, कव्यवाहा, रौद्री और संहारिणी)। इन अठतीस कलाओं के लक्षण विस्तार - भय से नहीं किये जाते हैं कहा भी है–

भेद भावक मायीयतेजोंऽश ग्रसनाच्चतत्।
सर्व संहारकत्वेन कृष्णं तिमिररूपधृत्।।

अर्थात् भेद परामर्श करने वाले सभी माया-मय सूर्य आदि तेजों का ग्रास करने से वह अमायीय पर प्रकाशात्मक तेज कृष्ण-वर्ण वाला है।

हमारे सद्गुरु ईश्वरस्वरूप स्वामी लक्ष्मणजी महाराज ने एक रविवासरीय व्याख्यान में इस श्लोक की अनुभवात्मक व्याख्या करके कहा था कि इस श्लोक में कुण्डलिनी के उदय होने का स्वरूप चित्रित किया गया है। कुण्डिलिनी पहिले करोड़ों बिजलियों के प्रकाश की कांति से किसी परिश्रम के बिना छः ग्रथियों के अर्थात् मूलाधार आदि चक्रों को काटकर सहस्रार में प्रवेश करती है। तत्पश्चात् ऊर्ध्व कुण्डलिनी का स्वरूप धारण करके अमृत की वर्षा करती है। इस प्रकार से किसी अलौकिक अठतीसवें तत्त्व अर्थात् विश्वात्मसााक्षात्कार करके निरन्तर जगदानन्द का स्वाद लेती है। मैं इसी कुंडलिनी के स्वरूप की आराधना करता हूँ कि जो कि भेद प्रथा के समाप्त करने से श्याम है और प्रकाशमय शक्ति चक्र से युक्त है।

चतुष्पत्रान्तः षड्दलभगपुटान्तस्त्रिवलय-
स्फुरद्विद्युद्वह्निद्युमणिनियुताभद्युतियुते।
षडश्रं भित्त्वादौ दशदलमथ द्वादशदलं
कलाश्रं च द्व्यश्रं गतवति ! नमस्ते गिरिसुते !।। ९।।

पदच्छेद अन्वय सहित

चतुष्पत्र-अन्तः षट्दलभगपुटान्तः त्रिवलय-
स्फुरत् विद्युत् वह्निद्युमणि नियुताभद्युतियुते
षट् अश्रं भित्त्वा आदौ दशदलं अथ द्वादशदलं
कला अश्रं च द्वि अश्रं गतवति ! नमःते गिरिसुते ! ।। ९।।

चतुष्पत्रान्तः-षद्दलभगपुटान्तः - त्रिवलय - स्फुरद् विद्युद्वह्नि-द्युमणि- नियुताभद्युतियुते (हे मातः !) आदौ षडश्रं भित्त्वा अथ दशदलम् अथ द्वादशदलं कलाश्रं च (भित्त्वा) द्व्यश्रं गतवति हे गिरि सुते ! ते नमः।। ९।।

शब्दार्थ

हे कुण्डलिनी शक्ति स्वरूपवाली माता ! आप
चतुष्पत्रान्तः = चार पत्तों वाले कमल में स्थित
षड्दल = छः पत्तों वाले
भगपुट = षट्कोण,
अन्तः = में
त्रिवलय = साढेतीन वलयों (घेरों में) मुड़ी हुई होकर
स्फुरत् = देदीप्यमान (अतिशय प्रकाशमान) बनी हुई है उस सोई हुई अवस्था में यह कुण्डलिनी
विद्युत् = बिजली
वह्नि = अग्नि
द्युमणिः = सूर्य
नियुत = दस लाख
आभ = प्रकाश के समान
द्युतियुते = चमकती हुई हे माता !
फिर आदौ = सबसे पहले (उस कुण्डलिनी स्वरूप का उत्थान करने के लिए)
षडश्रं = छः पत्तों वाले कमल को
भित्त्वा = (अपने नादात्मक ज्ञान त्रिशूल से) काटकर (वेधनकर)
अथ = उसके पश्चात्
दशदलं = दस पत्तों वाले कमल को
अथ = उसके पश्चात्
द्वादशदलं = बारह पत्तों वाले कमल को
च = और फिर
कलाश्रं = सोलह पत्तों वाले कमल का वेधन करके अन्त में
द्व्यश्रं = दो पत्तों वाले कमल में
गतवति = ठहरी हुई।
हे गिरिसते = हे पार्वती (हे पर्वत पुत्री)
ते नमः = आपको मैं प्रणाम करता हूँ

अनुवाद

हे कुण्डलिनी-शक्ति-स्वरूप वाली भगवती ! (आप) चार पत्तों वाले कमल-स्थान मूलाधार-में अवस्थित षड्दल अर्थात् षडाकार भगपुट (षट्कोण) में साढ़े तीन वलयों (घेरों) में मुड़ी हुई होकर देदीप्यमान् बनी हुई हैं। उस सुप्तावस्था में आप दस लाख बिजली, अग्नि तथा सूर्य-प्रकाश के समान चमकती हुई ठहरी हैं। वहां आप अपने कुण्डलिनी-स्वरूप का उत्थान करने के लिए प्रथम स्वाधिष्ठान षड्दलात्मक कमल को नादात्मक शूल से काट कर, उसके पश्चात् मणिपूर नाम वाले दशदल-स्वरूप कमल को, फिर अनाहत चक्र वाले द्वादश कमल को तत्पश्चात् विशुद्ध-चक्रात्मक षोडशदल रूपी कमल का भेदन करके अन्त में आज्ञाचक्रस्थान के द्विदलात्मक कमल में प्रवेश करती हैं - उसी द्विदलात्मक आज्ञा-चक्र में ठहरी हुई आपको मैं प्रणाम करता हूँ। उसी आपकी उच्चतम अवस्था में समावेश करता हूं।। ९।।

विशेषः- चतुष्पत्र = चार पत्तों वाले कमल से तात्पर्य "मूलाधार" है

षडदलभगपुटं से तात्पर्य है कि जो षट्कोण में साढ़े तीन घेरों में ठहरी है। स्वामी जी महाराज ने अपने कुण्डलिनी विज्ञान रहस्य में स्पष्ट किया है कि "सामान्य रूपतया पूर्णाहन्तारूपा शैवी विसर्गशक्तिः कुण्डलिनी इति कथ्यते, या सार्धत्रिवलयाकारा आम्नायेषु प्रतिपद्यते"।

षड्श्रं = छः पत्तों वाले कमल से तात्पर्य है स्वाधिष्ठान चक्र।

दशदलं = दस पत्तों के कमल से तात्पर्य मणिपूर चक्र है।

द्वादशदलं = बारह पत्तों वाले कमल से तात्पर्य अनाहत चक्र है।

कलाश्रं = सोलह पत्तों वाले कमल से तात्पर्य विशुद्धि चक्र है।

नादात्मक ज्ञानत्रिशूल से वेधन करना ही "भित्वा" का तात्पर्य है।

द्वयश्रं = दो पत्तों वाले कमल से तात्पर्य आज्ञाचक्र है।

इस प्रकार इस श्लोक में मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्धि और आज्ञाचक्रात्मक छः चक्रों का उलेख हुआ है। जिनका वेधन कुण्डलिनी जागरण के पश्चात प्रायः होता है एवं इस प्रकार स्पन्दनशील दीखने वाले आपके कुण्डलिनी स्वरूप को नमस्कार हो।

भगवान शंकर की परिपूर्ण अहन्तारूप सर्जन शक्ति को कुण्डलिनी के नाम से पुकारा जाता है। यह कुण्डलिनी सांप की तरह कुंण्डल बनाकर। मूलाधार में साढ़े तीन वलयों (घेरों Coils) में स्थित होती है। इन साढे तीन वलयों में पहला घेरा प्रमेय प्रधान अहन्ता रूप वलय है (that I consciousness which is attached to objectivity) दूसरा वलय प्रमाण प्रधान अहन्तारूप है (that I Consciousness which is attached to cognitive cycle) तीसरा वलय प्रमातृप्रधान अहन्तारूप है (that I Consciousness which is attached to subjectivity आधा वलय (साढ़े तीन वलयों में से) प्रमाप्रधान या प्रमिति प्रदान अहन्तारूप है। (that I consciousness which is free of all traces of objectivity)

कुलं केचित्प्राहुर्वपुरकुलमन्ये तव बुधाः
परे तत्सम्भेदं समभिदधते कौलमपरे।
चतुर्णामप्येषामुपरि किमपि प्राहुरपरे
महामाये ! तत्त्वं तव कथममी निश्चिनुमहे।। १०।।

पदच्छेद अन्वय सहित

कुलं केचित् प्राहुः वपुः अकुलं अन्ये तव बुधाः
परे तत्सम्भेदं समभिदधते कौलं अपरे।
चतुर्णां अपि एषाम् उपरि किं अपि प्राहुः अपरे
महामाये ! तत्त्वं तव कथं अमी निश्चिनुमहे।। १०।।

महामाये ! केचित् तव वपुः कुलं प्राहुः, अन्ये बुधाः अकुलं (प्राहुः)। परे तत्संभेदं

समभिदधते। अपरे कौलं एषां चतुर्णामपि उपरि किमपि तव स्वरूपं प्राहुः। अतः अमी वयं कथं तव तत्त्वं निश्चिनुमहे।। १०।।

शब्दार्थ

हे महामाये ! = हे स्वातन्त्र्यशक्ति शालिनी महामाया भगवती!
केचित् = कुलाम्नाय वादी
तव वपुः = तुम्हारे स्वरूप को
कुलं = पारमेश्वरी शक्तिः
प्राहुः = कहते हैं
अन्ये = तांत्रिक संप्रदाय का अनुसरण करने वाले दूसरे
बुधाः = विद्वान्
अकुलं = शिव के नाम से पुकारते हैं
परे = त्रिक दर्शन का अनुसरण करने वाले दूसरे विद्वान् आपके स्वरूप को
तत्संभेदं = कुल व अकुल रूप अर्थात् शिव शक्ति सामरस्यात्मक यामल रूप,
समभिदधते = कहते हैं
अपरे = प्रत्यभिज्ञा दर्शनवादी दूसरे विद्वान् आपके स्वरूप को
कौलं = कौल नाम से पुकारते हैं।
अपरे = दूसरे विद्वान्
एषां चतुर्णां अपि उपरि = इन उपरोक्त चारों स्वरूपों से (कुल, अकुल, कुलाकुल और कौल) उत्तीर्ण
किमपि = अनाख्य अनुत्तर महाप्रकाशात्मक परम शुद्धतत्व
तवस्वरूपं = तुम्हारे स्वरूप को
प्राहुः = कहते हैं
अतः = इसलिए
अमी वयं = ये हमलोग
तव तत्त्वं = तुम्हारे पारमार्थिक स्वरूप की
कथं निश्चिनुमहे = निश्चय किस रूप से करेंगे।

अनुवाद

हे स्वातंत्र्यशक्तिशालिनी महामाया भगवती ! कई बुद्धिमान्जन आपके स्वरूप को कुल अर्थात् पारमेश्वरी शक्ति कहते हैं। अन्य विद्वान् तांत्रिकसंप्रदाय-शाली, आपको अकुल अर्थात् शिव के नाम से पुकारते हैं। अन्य त्रिक-आदि दर्शनवादी आपका स्वरूप उभयात्मक कुलाकुल रूप अर्थात् शिव-शक्ति-सामरस्यात्मक कहते हैं और कई प्रत्यभिज्ञादर्शन-वादी आपको कौल-नाम की उपाधि से विभूषित करते हैं। अन्य विद्वान् तो इन उपर्युक्त चारों स्वरूपों से उत्तीर्ण आपको अनाख्य-स्वरूप ही कहते हैं। हे माता ! आप ही बताइये कि ये हम सभी आपके स्वरूप का निश्चय किस रूप से करेंगे।। १०।।

विशेषः- कुलं = कहा है "कुलं हिं परमा शक्तिः" इति
अथवा "शक्ति गोचरगं वीर्यं तत्कुलं विद्धि सर्वगम्" इति
अथवा "कुलं स परमानन्दः"

"कुलं आत्मस्वरूपं तु"

अकुलं = "शिव उच्यते" कहा है- "कुलं शक्तिरिति प्रोक्तं अकुलं शिव उच्यते"।

तत्संभेदं = कुलाकुलयोः यामलं रूपं। कहा है–

तयोः यत् यावलं रूपं संघट्ट इति स स्मृतः।

आनन्द शक्तिः सैवोक्ता यतो विश्वं विसृज्यते।।

कौलं = कहा है–

"कुलेऽकुलस्य सम्बन्धः कौलं इत्यमिधीयते।" अर्थात् कुल-शक्ति में, अकुल-शिव का यह सम्बन्धात्मक रूप अर्थात् (प्रकाश का पूर्णाहन्तात्मक स्वात्मविश्रान्ति वाला रूप) "कौल" नामसे पुकारा जाता है। आचार्य उत्पलदेव ने अजडप्रमातृसिद्धि नामक ग्रन्थ में कहा है–

प्रकाशस्य आत्मविश्रान्तिरहंभावो हि कीर्तितः।

उक्ता सैव च विश्रान्तिः सर्वापेक्षानिरोधतः।।

कुल से विश्वमयता को और अकुल से विश्वोत्तीर्णता को दर्शाया है।

चतुर्णा = चारों। कई टीकाकारों ने इसका आशय प्रमाता प्रमाण प्रमेय और प्रमिति स्वरूप चार रूप किया है। जिनका सम्बन्ध कुल अकुल आदि चार रूपों से है।

षडध्वारण्यानीं प्रलय रविकोटिप्रतिरुचा
रुचा भस्मीकृत्य स्वपदकमलप्रह्वशिरसाम्।
वितन्वानः शैवं किमपि वपुरिन्दीवररुचिः
कुचाभ्यामानम्रः शिवपुरुषकारो विजयते।। ११।।

पदच्छेद अन्वय सहित

षट्-अध्व-अरण्यानीं प्रलय रवि कोटि प्रतिरुचा
रुचा भस्मीकृत्य स्वपदकमलप्रह्व शिरसाम्।
वितन्वानः शैवं किम् अपि वपुः इन्दीवररुचिः
कुचाभ्याम् आनम्रः शिव पुरुष कारो विजयते।। ११।।

स्वपदकमलप्रह्वशिरसां प्रलय रवि कोटि प्रतिरुचा षडध्व-अरण्यानीं भस्मीकृत्य, किमपि शैवं वपुः वितन्वानः कुचाभ्यामानम्रः इन्दीवररुचिः शिवपुरुषकारः विजयते।।११।।

शब्दार्थ

षडध्वा = छः अध्वारूपी अर्थात् वर्णाध्वा, मन्त्राध्वा, पदाध्वा, कलाध्वा, तत्त्वाध्वा और भुवनाध्वा आदि छः अध्वारूपी अथवा कुण्डलिनी के छः चक्रों को

अरण्यानीं = प्रवेश करने के अयोग्य होने से अत्यन्त घने जंगल को

प्रलयरविकोटि प्रतिरुचा = प्रलयकालीन करोड़ों

सूर्यों की समान दीप्ति वाली
रुचा = अपनी दीप्ति से
भस्मीकृत्य = भस्म करके (अर्थात् जलाकर)
स्वपदकमल प्रह्वशिरसां = अपने प्रकाश विमर्शमय परमधाम में तद्रूप बने हुए योगियों को या भक्त जनों को
किमपि = अलौकिक
शैवं वपुः = परमशिव धामात्मक स्वरूप
वितन्वानः = दिखाते हुए अथवा विस्तार से प्रकट करते हुए
शिव पुरुष कारः = कामेश्वर की पौरुषी शक्ति की
विजयते = जय हो। जो शक्ति
इन्दीवररुचिः = संकोच विकासशील होने से नील कमल के समान है और
कुचाभ्यां = ज्ञानशक्ति तथा क्रियाशक्ति की अधिकता से
आनम्रः = अपने शिवात्मक स्थान से पृथ्वीतल तक फैली हुई हैं

अनुवाद

प्रलयकालीन करोड़ों सूर्यों के समान दीप्ति से षडध्वा रूपी अर्थात् वर्णाध्वा, मन्त्राध्वा, पदाध्वा, कलाध्वा, तत्त्वाध्वा और भुवनाध्वा, अथवा मूलाधार, नाभि, हृदय, कंठ, भ्रूमध्य और सहस्रार–इन छः प्रकार से बने हुए घने जंगल को जलाकर अर्थात् भस्म करके अपने प्रकाश विमर्शमय परमधाम में तद्रूप बने हुए योगियों को (भक्त-जनों को) सर्वोत्तीर्ण अलौकिक परमशिव-धामात्मक स्वरूप दिखाते हुए भैरवात्मक शिव पुरुषकार की जय हो, जो भैरव-पुरुषार्थ संकोच विकासशील होने से नील-उत्पल के समान है और ज्ञानशक्ति तथा क्रियाशक्ति की प्रचुरता से अपने शिवात्मक स्थान से पृथ्वीतत्त्व तक नम्र अर्थात् फैला हुआ है।। ११।।

विशेषः- शैवं = शिवश्च शिवा च शिवौ तयोः (शिव और शिवा पार्वती के जो अनन्य चमत्कार है उससे निर्भर)

शिवयोः इदं शैवं = शिव शक्ति सामरस्य आनन्द चमत्कार से निर्भर

कुचाभ्यां = कुच (स्तन) शब्द से इच्छोपाय रूप और ज्ञानोपाय रूप शम्भवोपाय और शाक्तोपाय की ओर संकेत है।

दाहादिचिन्तन युक्ति से इसमें विज्ञानभैरव की आग्नेयी धारणा सूचित की गई है। द्रष्टव्य विज्ञानभैरव श्लोक ५२।

प्रकाशानन्दाभ्यामविदितचरीं मध्यपदवीं
प्रविश्यैतद्द्वन्द्वं रविशशिसमाख्यं कवलयन्।
प्रविश्योर्ध्वं नादं लयदहन भस्मीकृतकुलः
प्रसादात्ते जन्तुः शिवमकुलमम्ब ! प्रविशति।। १२।।

पदच्छेद अन्वय सहित

प्रकाश आनन्दाभ्यां अविदितचरीं मध्य पदवीं
प्रविश्य एतत् द्वन्द्वं रविशशिसमाख्यं कवलयन्।
प्रविश्य ऊर्ध्वं नादं लयदहन भस्मीकृतकुलः
प्रसादात् ते जन्तुः शिवं अकुलं अम्ब ! प्रविशति।। १२।।

अम्ब ! एतत् रविशशिसमाख्यं द्वन्द्वं कवलयन् जन्तुः प्रकाशानन्दाभ्यामविदित चरीं मध्यपदवीं प्रविश्य लयदहन भस्मीकृतकुलः ऊर्ध्वं नादं प्रविश्य ते प्रसादात् अकुलं शिवं प्रविशति।। १२।।

शब्दार्थ

अम्ब = हे पराकुण्डलिनीरूपी माता।
जन्तुः = जब कोई भाग्यशाली भक्त
एतत् = इस
रविशशि समाख्य = रवि-प्राण
शशि अपान = अर्थात् सूर्य और चन्द्रमा नामवाले प्राण और अपानरूपी
द्वन्द्व = जोड़े को
कवलयन् = ग्रास करता हुआ
प्रकाशानन्दाभ्यां = प्रकाश तथा विमर्श का आश्रय लेकर
अविदितचरीं = अनन्त काल से अज्ञात
मध्यपदवीं = मध्ययाम अर्थात् सुषुम्ना मार्ग में, (इसी सुषुम्ना को मध्य नाड़ी भी कहते हैं।)
प्रविश्य = घुसकर
लयदहन = चित्तप्रलयरूपी अग्नि से
भस्मीकृतकुलः = भेद प्रथात्मक जगत् का संहार करके
ऊर्ध्वं नादं प्रविश्य = ऊर्ध्व कुण्डलिनी की पदवी में प्रवेश करता है, तो फिर
ते प्रसादात् = आपकी तीव्रतम अनुग्रह शक्तियों से वह भक्त
अकुलंशिवं = परमशिवात्मक धाम में
प्रविशति = प्रवेश करता है।

अनुवाद

हे पराकुण्डलिनी रूप माता ! जब कोई भाग्यशाली भक्त इस सूर्य सोमात्मक प्राणापान रूपी द्वन्द्व का ग्रास करता हुआ अनन्त काल से अविदित मध्य-धाम अर्थात् सुषुम्ना-मार्ग में प्रकाश तथा विमर्श का आश्रय लेकर प्रवेश करता है और इसी प्रकार चित्त प्रलय रूपी अग्नि से अर्थात् हठ पाक प्रशम धारणा से समस्त भेद-प्रथात्मक जगत् का संहार करके ऊर्ध्वकुण्डलिनी की पदवी में प्रवेश करता है तो फिर आपकी तीव्रातितीव्र अनुग्रह शक्ति से वह व्यक्ति सदा के लिए परमशिवात्मक अकुल-धाम में प्रवेश करता है।। १२।।

विशेषः- रवि शशि समाख्यं = रवि शशिनौ – प्राणायानौ समौ मिलितौ आख्यायेते यत्र तं अर्थात् प्राण और अपान दोनों समान रूप से जहां मिले हुए कहे जाते हैं वही रवि शशि समाख्यं से निर्दिष्ट है।

कवलयन् = षट् चक्र भेदन पूर्वक ऊर्ध्वरेचक से उदान वह्नि को स्वैक्य (अपने से एक करके) से विमर्श करना ही कवलयन् - ग्रास करने का तात्पर्य है।

प्रविशति = परमसिद्धिरूपा मुक्ति पाना ही प्रवेश करने का तात्पर्य है।

मनुष्यास्तिर्यञ्चो मरुत इति लोकत्रयमिदं
भवाम्भोधौमग्नं त्रिगुणलहरी कोटिलुठितम्।
कटाक्षश्चेदत्र क्वचन तव मातः ! करुणया
शरीरी सद्योऽयं व्रजति परमानन्दतनुताम्।। १३।।

पदच्छेद अन्वय सहित

मनुष्याः तिर्यञ्चः मरुतः इति लोकत्रयम् इदं
भव अम्भोधौ मग्नं त्रिगुणलहरी कोटि लुठितम्।
कटाक्षः चेत् अत्र क्वचन तव मातः ! करुणया।
शरीरी सद्यः अयं व्रजति परमानन्द तनुताम्।। १३।।

मातः ! मनुष्याः, तिर्यञ्चः, मरुतः–इतीदं लोकत्रयं भवाम्भोधौ मग्नं (तथा) त्रिगुणलहरी कोटिलुठितम् (अस्ति) अत्र क्वचन तव कटाक्षः चेत् करुणया (स्यात्) सदा अयं शरीरी परमानन्दतनुतां सद्यः व्रजति।। १३।।

शब्दार्थ

मातः = हे माता!
मनुष्या = मनुष्य वर्ग
तिर्यञ्चः = पशुवर्ग
मरुतः = विद्याधर गन्धर्व आदि देव वर्ग
इतीदं = इस प्रकार के ये सभी
लोकत्रयं = तीनों प्राणि वर्ग
भवाम्भोधौ = संसाररूपी अगाध सागर में
मग्नं = डूब गये हैं तथा
त्रिगुण = सतोगुण, रजोगुण, व तमोगुण नामक वृत्तियों के
लहरी = सुखदुःख मोह रूपी लहरों की
कोटि = अनन्त धाराओं में
लुठितं = लुढ़कते रहते हैं
अत्र = अब इनमें से, चेत्- यदि
क्वचन = किसी एक प्रणी पर भी
तव कटाक्षः करुणया = आपकी दया पूर्ण दृष्टि पड़े तो
अयं = वह
शरीरी = देहधारी प्राणी
सद्य = उसी क्षण

परमानन्दतनुतां = परमानन्द दशा को **व्रजति** = प्राप्त करता है।

अनुवाद

हे माता ! मनुष्य-वर्ग-पशु, वर्ग तथा विद्याधर-गन्धर्वादि देव-वर्ग–इस प्रकार के ये सभी तीनों प्राणी-गण संसाररूपी अगाध समुद्र में डूब गये हैं तथा सत्त्वादि गुणत्रय वृत्तियों के सुख, दुःख, मोह रूपी लहरों की धाराओं में लुढ़कते रहते हैं। अब यदि इनमें से किसी एक प्राणी पर भी आपकी दया-पूर्ण दृष्टि पड़े तो वह देहधारी प्राणी उसी क्षण परमानन्द-दशा को प्राप्त करता है अर्थात् निरावरण चिदाकाश-रूपता को प्राप्त करता है।। १३।।

विशेषः- भाव यह है कि सारे प्राणी संकुचित शक्ति के कारण आणवमल, मायीयमल और कार्ममल से आवृत होने के फलस्वरूप अनन्त काल तक नाना प्रकार की योनियों में घुमते रहते हैं। इस प्रकार परमेश्वर के शक्तिपात से वंचित हुए संसार से छुटकारा नहीं पाते हैं। पर अकस्मात् जगत् जननी की दया दृष्टि से अनुगृहीत होकर वे इस सरणशील संसार से विमुक्त होते है। अर्थात् हठ शक्तिपात के समनन्तर ही समस्त विकल्प जाल के प्रशमन से पूर्णानन्द स्वभाव प्राप्ति रूप जीवन्मुक्ति को प्राप्त करते हैं अर्थात् चिदाकाशरूपता को प्राप्त करते हैं। श्री ईश्वर प्रत्यभिज्ञा में भी कहा है-

"विकल्प हानेनैका ग्र्यात् क्रमेणेश्वरता पद्म्"

स्पन्दकारिका में भी कहा है-

यदा क्षोभः प्रलीयेत तदा स्यात् परमं पदम्।

वातूलनाथ सूत्रमें भी कहा है-

महासाहसवृत्त्या स्वरूप लाभः।।

प्रियङ्गुश्यामाङ्गीमरुणतरवासः किसलयां
समुन्मीलन्मुक्ताफल बहुलनेपथ्य कुसुमाम्।
स्तनद्वन्द्वस्फारस्तबकनमितां कल्पलतिकां
सकृद्ध्यायन्तस्त्वां दधति शिवचिन्तामणि पदम्।। १४।।

पदच्छेद अन्वय सहित

प्रियङ्गु श्याम अङ्गीं अरुणतरवासः किसलयां
समुन्मीलत् मुक्ताफल बहुलनेपथ्य कुसुमाम्।
स्तन द्वन्द्व स्फारस्तबकनमितां कल्पलतिकां
सकृत् ध्यायन्तः त्वां दधति शिवचिन्तामणि पदम्।। १४।।

प्रियङ्गुश्यामाङ्गीम् अरुणतरवासः किसलयां समुन्मीलन्मुक्ताफल बहुलनेपथ्यकुसुमां स्तनद्वन्द्व स्फारस्तबकनमितां त्वां कल्पलतिकां सकृत् ध्यायन्तः शिवचिन्तामणि पदं दधति।। १४।।

शब्दार्थ

हे माता !

कल्पलतिकां (इव) = अभीष्ट फलों को देने वाली होने के फलस्वरूप आप उस कल्पलता के समान सुशोभित बनी हुई है।

जिस लता के सभी अंग

प्रियङ्गु श्यामाङ्गी = प्रियंगु नामक लता की तरह श्याम वर्ण वाली टहनियां है,

अरुणतरवासः = अत्यन्त लात वस्त्र

किसलयां = कोमल पत्ते हैं

समुन्मीलन्मुक्ता = चमकता हुआ मोतियों और रत्नों का समूह मानो उस लता के

फल = फल बने हुए हैं

बहुल नेपथ्य = भिन्न-भिन्न प्रकार की वेशभूषा

कुसुमां = मानो उसके फूल हैं

स्तन द्वन्द्व स्फार = ज्ञानक्रियारूपी दो मोटे स्तन मानो उसके

स्तवक नमितां = झुके हुए फूलों के गुच्छे हैं

त्वां = इस प्रकार आपके स्वरूप को

सकृत् = एक बार भी

ध्यायन्तः = ध्यान करने वाले भक्त

शिव चिन्ता मणि पदं = परमशिव धामात्मक चिन्तामणि पदवी को

दधति = प्राप्त करते हैं

अनुवाद

हे माता ! आप अभीष्टप्राप्ति-पद होने के फलस्वरूप एक कल्प-मञ्जरी के समान सुशोभित बनी हुई हैं, जिस लता के मुख-हाथ आदि सभी अंग मानो प्रियंगु नामक लता की तरह श्याम वर्ण वाली टहनियां हैं। अत्यन्त लाल दिव्य वस्त्र अत्यन्त कोमल पत्ते हैं। चमकता हुआ मोतियों और रत्नों का समूह मानों उस लता के फल बने हुए हैं। भिन्न-भिन्न प्रकार की वेशभूषा उसके पुष्प हैं और (ज्ञान क्रिया पूर्ण) विकसित दो पुष्ट स्तन मानो उस कल्पमंजरी के झुके हुए फूलों के गुच्छे हैं—इस प्रकार आप के स्वरूप को पूर्णरूपेण ध्यान करने वाले भक्त, परमशिव-धामात्मक चिन्तामणि-पदवी को प्राप्त करते हैं।। १४।।

विशेषः- प्रियङ्गु एक लता का नाम है जिसके बारे में कहा जाता है कि वह किसी भी स्त्री के स्पर्शमात्र से ही फूलती फलती है। इसकी टहनियां श्याम वर्ण की है जो पराशक्ति के अगाध विस्तार की प्रतीक है।

कल्पलतिकां = पांच कल्पलताओं में अभीष्ट फल दायिका श्री विद्या को ही प्रधान प्रथम कल्पलता माना जाता है। कहा है- "श्री विद्या पारिजातेशी"।

षडाधारावर्तैरपरिमितमन्त्रोर्मिपटलै-
श्चलन्मुद्राफेनैर्बहुविधलसद्दैवत झषैः।
क्रमस्त्रोतोभिस्त्वं वहसि परनादामृतनदी
भवानि ! प्रत्यग्रा शिवचिदमृताब्धिप्रणयिनी।। १५।।

पदच्छेद अन्वय सहित

षट् आधार आवर्तैः अपरिमितमन्त्र ऊर्मिपटलैः
चलन् मुद्राफेनैः बहुविधलसत् दैवत झषैः।
क्रमस्त्रोतोभिः त्वं वहसि परनाद अमृत नदी
भवानि ! प्रत्यग्रा शिवचित् अमृत अब्धि प्रणयिनी।। १५।।

हे भवानि ! त्वं षडाधारावर्तैरपरिमित मन्त्रोर्मिपटलैः चलन्मुद्रा फेनैर्बहुविधल सद्दैवत झषैः क्रमस्त्रोतोभिः शिवचिदमृताब्धिप्रणयिनी प्रत्यग्रा परनादामृत नदी वहसि।। १५।।

शब्दार्थ

हे भवानिः = हे पार्वती
त्वं = आप
प्रत्यग्रा = नवीन
परनादामृत नदी = पूर्णाहन्तारूपी अमृतनदी को
वहसि = धारण करती है, जिस नदी में
षडाधार = षट् चक्र आधार रूपी
आवर्तैः = भंवर हैं
अपरिमित = अनन्त
मन्त्र ऊर्मिः = मन्त्ररूपी लहरों की
पटलैः = तहें विद्यमान हैं
चलन् = स्यन्दमान (चंचल)
मुद्रा फेनैः = संक्षोभिणी अथवा करंकिणी आदि योगमुद्रारूपी झाग स्थित है।
बहुविध = अनेक प्रकार के
लसत् देवतझषैः = दिव्य दर्शन रूपी मगरमच्छ अवस्थित हैं।
क्रम = नियमित रूप से अभ्यास करना ही
स्रोतोभिः = जिस नदी का प्रवाह है। इस प्रकार यह अमृत नदी
शिवचिद्मृताब्धि = चिदानन्दात्मक शिव रूपी अमृतसागर से
प्रणयिनी = प्रेम करती है, अर्थात् उस अमृत सागर से तन्मय बनने के लिए वेग से उसकी ओर बहती रहती है।

अनुवाद

हे पार्वती ! आप नित्य नवीन पूर्णाहन्ता रूपी अमृत-नदी को धारण करती हैं, जिसमें षट्-चक्राधार रूपी भंवर अवस्थित हैं, अनन्त मन्त्र रूपी लहरों की तहें

विद्यमान हैं, स्पन्दमान् करङ्किणी आदि योग-मुद्रा रूपी झाग दृष्टिगोचर है, अनेक प्रकार के दिव्य दर्शन रूपी मगरमच्छ इसमें स्थित हैं और नियमित क्रम से अभ्यास करना ही जिस नदी का प्रवाह है—इस प्रकार यह अमृत नदी चिदानन्दात्मक शिव रूपी अमृत-सागर से प्रेम करती है, अर्थात् उस अमृत-सागर में तन्मय बनने के लिए वेग से उसकी ओर बहती रहती है।। १५।।

विशेषः- मुद्रा = मुद्रायें नव प्रकार की है जो इस प्रकार हैं-

संक्षोमिणी मुद्रा, द्राविणी मुद्रा, आकर्षिणी मुद्रा, वशिनी मुद्रा, उन्मादनीमुद्रा, महाङ्कुशा मुद्रा खेचरी मुद्रा, बीज मुद्रा और योनिमुद्रा।

दूसरे तंत्रों में किरङ्किणी आदि मुद्राओं का भी वर्णन है।

शिवचित् = विश्वेत्तीर्ण विश्वमय अनुत्तर परमशिव प्रकाश।

परनाद = अनाहत नाद से तात्पर्य है। कहा है-

ध्यान स्थानविहीनो यः रूपोच्चार विवर्जितः।
अनाहतो नदत्यन्तर्मुखात् मुखपदेस्थितः।।

इसी परनाद उपासना से शिव प्राप्ति होती है।

षट् - चक्राधारों का निर्णय शास्त्रों में इस प्रकार किया है-

जन्माख्ये नाडिचक्रन्तु नाभौ मायाख्यमुच्यते।
हृदिस्थं योगिचक्रं तु तालुस्थं भेदनं स्मृतम्
बिन्दुस्थं दीप्तिचक्रं तु नादस्थं शान्तमुच्यते।'

अर्थात् मूलाधार में नाडिचक्र और नाभिस्थान में माया-चक्र ठहरा हुआ है। हृदयस्थान में योगिचक्र और तालुस्थान अर्थात् लंबिका-स्थान में भेदन-चक्र स्थित है, इसी प्रकार भ्रूमध्य में दीप्ति-चक्र विद्यमान है और नाद अर्थात् ब्रह्मरन्ध्रस्थान पर शान्त-चक्र ठहरा हुआ है।

महीपाथोवह्निश्वसनवियदात्मेन्दुरविभि-
र्वपुर्भिर्ग्रस्तांशैरपि तव कियानम्ब महिमा।
अमून्यालोक्यन्ते भगवति ! न कुत्राप्यणुतरा-
मवस्थां प्राप्तानि त्वयि तु परमव्योमवपुषि।। १६।।

पदच्छेद अन्वय सहित

महीं पाथः वह्नि श्वसन वियत् आत्मा इन्दुरविभिः
वपुर्भिः ग्रस्त-अंशैः अपि तव कियान् अम्ब ! महिमा।
अमूनि आलोक्यन्ते भगवति ! न कुत्र अपि अणुतराम्
अवस्थां प्राप्तानि त्वयि तु परमव्योमवपुषि।। १६।।

अम्ब ! मही-पाथो-वह्नि-श्वसन-वियद्-आत्मा-इन्दु-रविभिवपुर्भिः - ग्रस्तांशैरपि तव कियान् महिमा। भगवति ! त्वयि परम व्योम वपुषि तु अणुतरामवस्थां प्राप्तानि अमूनि न कुत्रापि आलोक्यन्ते।। १६।।

शब्दार्थ

हे अम्बा! = हे माता

मही = धरती

पाथः = जल

वह्निः = अग्नि

श्वसनः = वायु

वियद् = आकाश

आत्मा = यजमान

इन्दुः = चन्द्रमा

रविः = सूर्य

तववपुर्मिः = आपके इन स्वरूपों से (इन आठ मूर्तियों से)

ग्रस्तांशैः = संसार के सभी कार्य वर्ग को अपने में समाया है

कियान् महिमा = इससे आपके स्वरूप की कितनी महिमा है। कोई इसका अनुमान नहीं लगा सकता है इसके अतिरिक्त

अमूनि = ये सभी आठ मूर्तियां

त्वयिपरमव्योम वपुषि = आपके उस अपरिमिति परमाकाश मूर्ति में

भगवति ! = हे स्वातन्त्र्यशालिनी जगदम्बा इतनी महान होने पर भी

अणुतरां अवस्था प्राप्तानि = छोटी और सूक्ष्म अवस्था को प्राप्त हुई।

न कुत्रापि = कहीं भी नहीं

आलोक्यन्ते = दिखाई देती है।

अनुवाद

हे माता ! पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, आत्मा, चन्द्रमा और सूर्य, जिन्होंने संसार-मण्डल-वर्ती सभी कार्य-वर्ग को अपने स्वरूप में समाया है–ऐसे इन स्वरूपों के विकास से आपके स्वरूप की महानता कितनी है–इसका अनुमान कोई भी व्यक्ति नहीं लगा सकता। इसके अतिरिक्त आप की महिमा इतनी अगाध है कि ये सभी आठ मूर्तियां आपके अपरिमित परमाकाश भूमि में इतनी छोटी और सूक्ष्म अवस्था को प्राप्त होती हैं कि उस आपके परमाकाश भूमि में कहीं भी और किसी प्रकार से दृष्टिगोचर नहीं होती अर्थात् उसी आपके स्वरूप के अथाह समुद्र में बुलबुलों की तरह समा जाती हैं।। १६।।

विशेषः- द्रष्टव्य कुलशेखरकृत मुकुन्दमाला-

पृथ्वी रेणुरणुः पयांसि कणिकाः फल्गुः स्फुलिंगोलघुः

तेजो निश्वसनं मरुत् तनुतरं रन्ध्रं सुसूक्ष्मं नभः इत्यादि।

इसी स्तव के अंतिम श्लोक में भी यही बात दोहरायी गई है।

यद्यपि अष्टमूर्ति भगवान शिव का ही पर्याय है पर उससे अभिन्न होने के कारण पराशक्ति भी अष्टमूर्तिरूपा कही गई है। इसका वर्णन ब्रह्मण्ड पुराण में विस्तार से किया गया है।

कलां प्रज्ञामाद्यां समयमनुभूतिं समरसां
गुरुं पारम्पर्यं विनयमुपदेशं शिवकथाम्।
प्रमाणं निर्वाणं परममतिभूतिं परगुहां
विधिं विद्यामाहुः सकलजननीमेव मुनयः।। १७।।

पदच्छेद अन्वय सहित

कलां प्रज्ञां आद्यां समयं अनुभूतिं समरसां
गुरुं पारम्पर्यं विनयं उपदेशं शिवकथाम्।
प्रमाणं निर्वाणं परमं अतिभूतिं परगुहाम्
विधिं विद्यां आहुः सकलजननीं एव मुनयः।। १७।।

मुनयः सकलजननीमेव त्वां–कलां, आद्यां प्रज्ञाम् समयम्, अनुभूतिं समरसां, गुरुं, पारम्पर्यम्, विनयम्, उपदेशं, शिवकथां, प्रमाणं, परमं निर्वाणम्, अतिभूतिं परगुहां विधिं विद्यां च आहुः।। १७।।

शब्दार्थ

मुनयः = मुनिजन

सकलजननीम् एव त्वां = सारे संसार को पैदा करनेवाली आप परापारमेश्वरी भगवती को ही

कला = अनाश्रित शिव नाम वाली शक्ति, आहुः- कहते हैं,

आद्या प्रज्ञा = स्वतन्त्र चमत्कार से पूर्ण पर प्रतिभारूपिणी शक्ति कहते हैं, अर्थात् चरम सीमा में ठहरी हुई बुद्धि कहते हैं।

समयं = शिव शक्ति सामरस्यात्मक अवस्था कहते हैं

समरसां अनुभूतिं = अहन्ता तथा इदन्ता से रहित अनुत्तर में ठहरी हुई चमत्कृति कहते हैं।

गुरुं = पारमेश्वरी अनुग्रह करने वाली शक्ति कहते हैं

पारम्पर्य = गुरु परंपरा कहते हैं

विनयं = तन्त्र प्रधान शास्त्र कहते हैं।

उपदेशं = उपायत्रय मार्ग का स्वरूप कहते हैं

शिवकथां = शिवात्मक परामर्श रूप कहते हैं।

प्रमाणं निर्वाणं परमं = परप्रमातृरूप परम-प्रमाण और परममोक्षरूप कहते हैं

अतिभूतिं = अति उच्च अष्ट सिद्धियों का स्फार कहते हैं

परगुहां = पर रहस्यरूपा कहते हैं

विधिं = विधिरूप या ब्रह्मा रूप कहते हैं

विद्यां = महामन्त्रमयी विद्या भी आप जगत् जननी को ही कहते हैं।

अनुवाद

मुनिजन, समस्त संसार को उत्पन्न करने वाली आप परापारमेश्वरी भगवती को ही 'कला' अर्थात् अनाश्रितशिव नाम वाली शक्ति कहते हैं, 'आद्या प्रज्ञा' अर्थात् स्वतन्त्र चमत्कारमयी पर प्रतिभारूपिणी शक्ति कहते हैं, 'समय' शिव शक्ति सामरस्यात्मक अवस्था कहते हैं, समरसामनुभूतिं अहन्ता तथा इदन्ता से रहित अनुत्तर - अकुल में ठहरी हुई चमत्कृति का नाम-करण देते हैं, गुरुं पारमेश्वरी अनुग्राहिका शक्ति कहते हैं, गुरु परंपरा कहते हैं, विनय तन्त्र प्रधान शास्त्र अथवा सच्चिदानन्द-स्वरूप-स्वात्मस्थिति के नाम से विभूषित करते हैं, शाम्भवोपाय, शाक्तोपाय और आणवोपाय–इन तीन मार्गों का स्वरूप कहते हैं, शिवात्मक परामर्श रूप कहते हैं, आप भगवती को ही मुनिजन पर प्रमातृ रूप परम-प्रमाण और परम-मोक्ष रूप परम निर्वाण करके विभूषित करते हैं इसके अतिरिक्त आप जगज्जननी को ही मुनिजन विधिरूप और महामन्त्रमयी विद्या कहते हैं।। १७।।

विशेषः- मुनयः से तात्पर्य है महामंन्त्रों के अनुसन्धान परायण महामाहेश्वर।

सकलजननीं = सकलस्य- सारे अर्थात् शिवतत्त्व से लेकर पृथिवी तत्त्व तक सारे चिद्रूप तथा अचिद्रूप जगत को उत्पन्न करने वाली जननी = सकल जननी है

समयं = समं-साम्यं अर्थात् शिवः शक्त्या सह याति = समेति इति समयः शक्त्या सह शिवस्य अविनाभाव सम्बन्धात् = कहा है- न शिवः शक्ति रहितो न शक्तिः शिववर्जिता।।

गुरुः = गृणाति- उपदिशति पारमार्थिकं अर्थं इति गुरुः अर्थात् जो पारमार्थिक अर्थ के विषय में ज्ञान कराता है वह गुरु है।

कहा है- गुकारः सद्इति प्रोक्तः रुकारः ज्ञानवाचकः।
ब्रह्मज्ञानैक रूपत्वात् गुरुः इत्यभिधीयते।।

अर्थात् सकल जननी अनुत्तर ज्ञान दायिनी गुरुमूर्ति को हो कहा है-

तां इच्छा विग्रहां देवीं गुरुरूपांविभावयेत्।

इसी पुस्तक के अम्बास्तव में भी कहा है-

"त्वां विश्वमाहुरपरे वयमामनाम साक्षादपारकरुणां गुरुमूर्तिमेव।"

परमं निर्वाणं = सारे दर्शनों में समझायी गई
मोक्ष प्राप्ति से उत्कृष्ट स्वशक्ति विकासात्मक मोक्ष है। कहा भी है-

मोक्षो हि नाम नैवान्यः स्वरूपप्रर्थनहिसः।
स्वरूपं चात्मनः संवित् इति।।

प्रलीने शब्दौघे तदनु विरते बिन्दुविभवे

ततस्तत्त्वे चाष्टध्वनि वपुरुपाधिन्युपरते।
श्रिते शाक्ते पर्वण्यनुकलितचिन्मात्रगहनां
स्वसंवित्तिं योगी रसयति शिवाख्यां परतनुम्। १८।।

पदच्छेद अन्वय सहित

प्रलीने शब्द ओघे तत् अनु विरते बिन्दुविभवे
ततः तत्त्वे च अष्टध्वनि वपुः उपाधिनि उपरते।
श्रिते शाक्ते पर्वणि अनुकलित चिन्मात्र गहनां
स्वसंवित्तिं योगी रसयति शिव आख्यां परतनुम्।। १८।।

शब्दौघे प्रलीने, तदनु बिन्दुविभवे विरते, ततः अष्ट ध्वनि वपुः उपाधिनि तत्त्वे उपरते, एवं शाक्ते पर्वणि श्रिते योगी अनुकलितचिन्मात्रगहनां शिवाख्यां परतनुं स्वसंवित्तिं रसयति।।१८।।

शब्दार्थ

इस श्लोक में अभ्यास सम्बन्धी अवस्थाओं का उल्लेख किया गया है। अनथक अभ्यास करता हुआ योगी जब स्वात्म समावेश की ओर अग्रसर होता है तो पहिले उसे

शब्दौधे = उन सारे शब्दों के लय होने के पश्चात्

बिन्दु विभवे = अनन्त प्रकार का प्रकाश पुंज अनुभव होने लगता है।

तदनुविरते = उसके भी शान्त होने के पश्चात्

अष्टध्वनिभिः = हृदय में आठ प्रकार के शब्द प्रकट होते हैं।

अनुपाधिनि तत्त्वे = उस उपाधिरहित तत्त्व के

उपर ते = शान्त होने पर योगी

शाक्ते पर्वणि श्रिते = शक्ति व्यापिनी और समनारूपी परा शक्ति के स्थान पर पहुंच जाता है।

उसके पश्चात् यह भाग्यशाली योगी उस

स्वसंवित्तिं रसयति = अपनी संवित् का अनुभव करता है जो चिदानन्द गहनां - चिदानन्द परामर्श से पूर्ण है।

अनुकलित = भली प्रकार विमर्श से पहचानी हुई

शिवाख्यां परतनुं = परापारमेश्वरी का पारमार्थिक परस्वरूप है।

अनुवाद

अनथक अभ्यास करता हुआ योगी जब स्वात्म-समावेश की ओर अग्रसर होता है तो प्रथम में उसे दस प्रकार के शब्दों का समूह प्रादुर्भूत होता है। उन समस्त शब्दों के लय होने के पश्चात् बिन्दु-विभव अर्थात् अनन्त प्रकारों वाला प्रकाश-पुंज अनुभव होने लगता है, उसके भी शान्त होने के पश्चात् अपने आधारस्थान हृदय में आठ प्रकार के दिव्य शब्द प्रकट होते हैं। उनके भी उपरत होने

पर योगी शक्ति, व्यापिनी और समना रूपी परा शक्ति के स्थान पर पहुंच जाता है। तदनन्तर ही यह भाग्यशाली योगी उस स्वात्म-संवित्ति का अनुभव करता है जो चिदानन्द-परामर्श से पूर्ण तथा परापारमेश्वरी का पारमार्थिक परस्वरूप है।। १८।।

विशेषः- शास्त्रों में दशधा नाद निम्न रूप से कहे गये हैं-

"नदते दशधा सा तु दिव्या नन्द प्रदायिका।
चिनी तु प्रथमः शब्दः चिञ्चिनी तु द्वितीयकः।
चीरवाकी तृतीयस्तु शंखशब्दश्चतुर्थकः।
तन्त्री घोषः पञ्चमस्तु षष्ठो वंशरवस्तथा।
सप्तमः कांस्यतालस्तु मेघशब्दोऽष्टमस्तथा।
नवमो दावनिर्घोषो दशमो दुन्दुभिस्वनः।। इति।

आठ ध्वनियों के नाम ये हैं-

'घोषो नादः स्वनः शब्दः स्फोटाख्यो ध्वनिरेव च।
झाङ्कारो धुक्कृतिश्चैव अष्टधानाहतः स्मृतः।।'

परानन्दाकारां निरवधिशिवैश्वर्य वपुषं
निराकारज्ञान प्रकृतिमनवच्छिन्न करुणाम्।
सवित्रीं लोकानां निरतिशयधामास्पदपदां
भवो वा मोक्षो वा भवतु भवतीमेवभजताम्।। १९।।

पदच्छेद अन्वय सहित

परानन्द आकारां निरवधि शिव ऐश्वर्य वपुषं
निराकार ज्ञान प्रकृतिं अनवच्छिन्न करुणाम्।
सवित्रीं भूतानां निरतिशयधाम आस्पद पदां
भवः वा मोक्षः वा भवतु भवतीम् एव भजताम्।। १९।।

हे मातः ! परानन्दाकारां निरवधिशिवैश्वर्य वपुषं निराकार ज्ञान प्रकृतिम् अपरिच्छिन्न करुणां सवित्रीं निरतिशय धामास्पद पदां भवतीमेव भजतां भवो वा मोक्षो वा भवतु।।१९।।

शब्दार्थ

हे मातः = हे माता!
परानन्दाकारां = परम आनन्द स्वरूप से युक्त
निरवधि = अवधि सीमा रहित अर्थात् अगाध तथा अनन्त

शिवैश्वर्यवपुषं = शिव की ऐश्वर्य शक्ति के स्वरूप
निराकार = आकारहीन अर्थात् अति सूक्ष्म
ज्ञान = ज्ञान शक्ति के
प्रकृतिं = स्वभाववाली
अपरिच्छिन्न = सदैव पूर्ण
करुणां = करुणामयी दयामयी
लोकानां = तीनों लोकों की
सवित्रीं = उत्पत्ति करने वाली
निरतिशय = सर्वोत्तम-सबसे उत्कृष्ट
धाम = अवस्था का अर्थात् परमशिव का
आस्पदां = आश्रय बनी हुई अर्थात् उसधाम में ठहरी हुई।
भवतीं एव = आप परमेश्वरी को ही
भजतां = स्मरण करने वालों को चाहे
भवः = सांसारिक भोगों की प्राप्ति हो चाहे
मोक्षः = मोक्ष धाम की प्राप्ति, भवतु- हो दोनों एक समान हैं।

अनुवाद

हे माता ! परम आनन्द-स्वरूप से युक्त, अगाध तथा अनन्त शिवैश्वर्य संपन्न, विश्वोत्तीर्ण निराकार, ज्ञान-स्वरूप तथा सदैव पूर्ण-करुणामयी, तीनों लोकों की उत्पत्ति करने वाली और उत्तमोत्तम शिव-धाम में ठहरी हुई आप परापारमेश्वरी को, जो भक्तजन स्मरण करते हैं, उन्हें सांसारिक भोगों की प्राप्ति हो अथवा परम - आनन्द रूप मोक्ष-प्राप्ति हो, उन्हें दोनों एक तुल्य हैं। तात्पर्य यह है कि उनके लिए सांसारिक भोग भी मोक्ष पर ही पर्यवसित रहते हैं।

विशेषः- परमानन्द रसास्वाद में मग्न चित्तवाले साधकों की भेद प्रतीति मिट जाती हैं अतः भोग हो या मोक्ष हो दोनों अवस्थाओं में अहं परामर्श की प्रतीति से एक अवस्था प्राप्त होती है। आचार्य उत्पल देव ने कहा है-

दुःखान्यपि सुखायन्ते विषमप्यमृतायते।
मोक्षायते च संसारो यत्र मार्गः सशाङ्करः।।

कहने का तात्पर्य यह है कि उनके लिए सांसारिक भोग भी मोक्ष पर ही आश्रित रहते हैं।
इसी भाव को आचार्य उत्पलदेव इस श्लोक में भी स्पष्ट करते हैं–

'लब्धत्वत्संपदां भक्तिमतां त्वत्पुरवासिनाम्।
सञ्चारो लोकमार्गेऽपि स्यात्तयैवविजृम्भया।। १९।।

इसी भाव की पुष्टि भट्टनारायण कवि ने इस प्रकार की है-

त्रैलोक्येऽप्यत्र यो यावानानन्दः कश्चिदीक्ष्यते।
स बिन्दुर्यस्य तं वन्दे देवमानन्द सागरम्।। (स्तवचिन्तामणि)

लोकानां प्रसवित्रीं मे भावानां प्रसवित्रीं भी पाठान्तर है। अन्तर दोनों में कुछ नहीं है। कहा है-

ब्रह्माद्याः स्थावरान्ताश्च यस्याः सर्वे समुद्गताः।

महदादि विशेषान्तं जगत् यस्याः समुदगतम्।।
तां एव सकलार्थानां प्रसवित्रीं परां नुमः।।

जगत्काये कृत्वा तमपि हृदये तच्च पुरुषे
पुमांसं बिन्दुस्थं तमसि परनादाख्यगहने।
तदेतज्ज्ञानाख्ये तदपि परमानन्दविभवे
महाव्योमाकारे ! त्वदनुभवशीलोविजयते।। २०।।

पदच्छेद अन्वय सहित

जगत् काये कृत्वा तं अपि हृदये तत् च पुरुषे
पुमांसं बिन्दुस्थं तं अपि पर नाद आख्य गहने।
तत् एतत् ज्ञान आख्ये तत् अपि परमानन्द विभवे
महाव्योम आकारे ! त्वत् अनुभव शीलः विजयते।। २०।।

हे मातः ! जगत् काये कृत्वा तं हृदये, तच्च पुरुषे, पुमांसं च बिन्दुस्थं कृत्वा, तमपि परनादाख्यगहने, तदेतत् ज्ञानाख्ये कृत्वा त्वदनुभव शीलः विजयते।। २०।।

शब्दार्थ

हे मातः = हे परापारमेश्वरी शक्ति!
जगत् = इस सर्वतत्त्वमय समस्त जगत् को
काये कृत्वा = लय चिन्तन धारणा से अपने पञ्चभौतिक शरीर में लीन करके
तं हृदये = उस अपने शरीर को भी अपने चित्प्रकाशरूपी हृदय में ठहराकर अर्थात् हृदयस्थान में प्रवेश कराकर फिर
तत् च पुरुषे = उस हृदय को पुरुष-अर्थात् प्रमाण, प्रमेय उपाधि सहित प्रमाता में मिलाकर
फिर
पुमांसंच = वह प्रमाता भी
बिन्दुस्थं कृत्वा = प्रमेय आदि उपाधि रहित प्रकाशात्मक बिन्दु में मिलाकर
फिर
तमपि = उस पर प्रकाशात्मक बिन्दु को भी
परनाद आख्य गहनः = अहं परामर्शात्मक गहन गंभीर स्थान में पहुंचाकर
फिर
तत् एतत् = उस अवस्था को भी
ज्ञान आख्ये कृत्वा = पारमार्थिक ज्ञानरूपी परमानन्द के ऐश्वर्य में लीन करके अर्थात् जगत् आनन्द रूप अवस्था को प्राप्त कर जो साधक
त्वदनुभवशीलः = आपके स्वतन्त्र चिदानन्दमय स्वरूपका साक्षात्कार करता है।
विजयते = उसकी जय हो।

अनुवाद

हे परापारमेश्वरी शक्ति ! इस समस्त सर्वतत्त्वमय जगत् को लयचिन्तन-धारणा से अपनी पांच भौतिक देह में लीन करके, उस अपने शरीर को भी अपने चित्प्रकाशरूपी हृदय में ठहरा कर हृदयस्थान में प्रवेश कराकर, तत्पश्चात् उस हृदय को पुरुष प्रमाण-प्रमेय-उपाधि-युक्त प्रमाता में मिला कर तदनन्तर वह प्रमाता भी प्रमेयादि-उपाधिरहित प्रकाशात्मक बिन्दु में नियुक्त करके, उसके बाद परप्रकाशात्मक बिन्दु भी पर-नाद अर्थात् अहं परामर्शात्मक गंभीर स्थान में पहुंचाकर, अर्थात् निद्रा और जाग्रत की बीच वाली तुर्यरूपा अवस्था में ले जाकर, तत्पश्चात् उस तुर्यरूप अवस्था को भी पारमार्थिक ज्ञानरूपी परमानन्द के ऐश्वर्य में अर्थात् जगदानन्द रूप अवस्था में लय करके जो जगदानन्द उत्तमोत्तम महान अनुत्तर प्रकाश स्वरूप है, वहां पहुंच कर जो व्यक्ति आप के स्वतंत्र चिदानन्द-घन स्वरूप का साक्षात्कार करता है उसकी जय हो॥ २०॥

विशेषः- इस श्लोक में साधना के विशेष रूप की ओर संकेत है। तात्पर्यार्थ इस प्रकार है कि सम्पूर्ण जगत् अपने शरीर को ही मानकर नखाग्र से शिखाग्र तक उस देह को अभ्यास में लगाकर उसे भी तीव्र अभ्यास विषयक उद्योग में लगाकर फिर उसे आन्तरिक उदित हुए प्रकाश में ठहराकर उस प्रकाश को भी अहं परामर्श नामक गंभीर स्थान में ले जाकर उसे भी स्वाभाविक निरन्तर ज्ञानात्मक अभ्यास में लगाकर उससे उत्पन्न परमआनन्दरूपी ऐश्वर्य रसास्वादन से सुषुम्नाधाम में प्रविष्ट होकर नित्योदित अति विस्तृत चिदाकाश रूपी जगत् माता के स्वरूप साक्षात्कार में अभ्यस्त बना उद्योगशील साधक जगत् शिरोमणि बनकर पूजा जाता है।

विधे विद्ये वेद्ये विविधसमये वेदजननि !
विचित्रे विश्वाद्ये विनयसुलभे वेदगुलिके !!
शिवाज्ञे शीलस्थे शिवपदवदान्ये शिवनिधे !
शिवे मातर्मह्यं त्वयि वितर भक्तिं निरूपमाम्॥ २१॥

पदच्छेद अन्वय सहित

विधे विद्ये वेद्ये विविधसमये वेदजननि !
विचित्रे विश्वाद्ये विनयसुलभे वेदगुलिके !!
शिवाज्ञे शीलस्थे शिवपदवदान्ये शिवनिधे !
शिवे मातः मह्यं त्वयि वितर भक्तिं निरूपमाम्॥ २१॥

हे विधे! हे विद्ये! हे वेद्ये! हे विविधसमये! हे वेदजननि! हे विचित्रे! हे विश्वाद्ये! हे विनयसुलभे! हे वेदगुलिके! हे शिवाज्ञे! हे शीलस्थे! हे शिवपदवदान्ये! हे शिव-निधे! हे शिवे! हे मातः! मह्यं त्वयि निरूपमां भक्तिं वितर।। २१।।

शब्दार्थ

हे मातः = हे माता!

हे विधे = हे सृष्टिकर्त्री, अर्थात् समस्त जगत् का निर्माण करने वाली

हे विद्ये! = हे विद्यारूपी

हे वेद्ये = हे स्वात्मरूपता से जानने योग्य

हे विविधसमयेः = हे अनन्तप्रकार के आचरणों वाली

हे वेदजननि = हे तीन वेदों की उत्पत्ति करने वाली

हे विचित्रे = हे अत्यन्त अद्भुत रूप बनी हुई।

हे विश्वाद्ये! = हे समस्त संसार की बीजभूता।

हे विनयसुलभे = हे कौल आदि शास्त्रों के द्वारा सहज ही प्राप्त होने वाली देवी!

हे वेद गुलिके = हे सारे वेदों का सार बनी हुई।

हे शिवाज्ञे = हे शिव की आज्ञा बनी हुई।

हे शीलस्थे! = हे स्वातन्त्र्य नामात्मक शील-महिमा में ठहरने वाली माता! अर्थात् चित्स्वभाव में अटलस्थिति वाली!

हे शिवपदवदान्ये! हे सत् चिदानन्दरूप शिवपद को देनेवाली अर्थात् शिव के साथ ऐवय दिलानेवाली

हे शिवनिधे ! = हे ऐहिक और पारलौकिक कल्याणों की कोषरूपा अर्थात् सभी लोगों को सुख देनेवाली

हे शिवे! = हे शिव की अर्धांगिनी

मह्यं त्वयि = मुझे अपने स्वरूप में

निरुपमां = अलौकिक

भक्ति = भक्ति

वितर = दीजिये अर्थात् मुझे अपने स्वरूप में अनुरक्त कीजिये अथवा अपना अनुपम दास बनाइये।

विशेषः- विधे! सृष्ठिकर्त्री। कहा है शक्ति सूत्र मेंः

चितिः स्वतन्त्रा विश्वसिद्धि हेतुः।

वेधे! = स्वात्मरूपता से जानने योग्या श्रुतिः भी इस विषय में कहती है- विज्ञातारं अरे केन विजानीयात् विविधसमये = विविधा समया- अनेक नित्य नैमित्तिक काम्य आदि कर्मों में न्यूनता (कमी) अधिकता आदि दोषों का प्रायश्चितों से पूरण करने वाली विद्या को समया नामवाली विद्या कहते हैं।

इसीलिए माता को समयाम्वा कहा है। विनय सुलभे = तन्त्र प्रधान शास्त्र लौकिक सिद्धि पूर्ण वाममार्ग विनय शब्द से अभिप्रेत है। उस वाममार्ग से प्राप्त होने वाली देवी को विनय सुलभा कहते हैं। पर स्वामी जी महाराज विनय शब्द का अर्थ कुलाचार वाले कौल सम्प्रदाय साधक करते हैं। उन साधकों से जो देवी सुखोपायसे प्राप्त होती है उसे विनय सुलभा कहते हैं।

शिवाज्ञे = स्वच्छन्दभट्टारक के मुख से उद्भूत अठाईस कामिक आदि आगम शास्त्रों का स्वरूप बनी हुई माता का नाम शिवाज्ञा है।

अनुवाद

हे समस्त जगत् का निर्माण करने वाली माता ! हे विधि-स्वरूप सृष्टिकारिणी! हे विद्या-चतुष्टय रूपी देवी ! हे स्वात्मरूपता से जानने योग्य ! हे अनन्त प्रकार के आचरणों वाली ! हे तीन वेदों की उत्पत्ति करने वाली ! हे विचित्ररूप अर्थात् अत्यन्त अद्भुतरूप बनी हुई ! हे जगत की आद्य अर्थात् समस्त संसार का बीज बनी हुई! हे विनय अर्थात् कौल आदि शास्त्रों के द्वारा सहज ही प्राप्त होने वाली देवी ! हे समस्त वेदों का सार बनी हुई ! हे स्वच्छन्द नाथ शिव की आज्ञा बनी हुई अर्थात् पांच प्रकार के शास्त्र का स्वरूप बनी हुई ! हे अपने स्वातंत्र्यनाम वाले शील महिमा में ठहरने वाली भगवती ! सच्चिदानन्दरूप शिव-पद को देने वाली हे देवी ! ऐहिक और पारलौकिक कल्याणों की कोषरूपा अर्थात् हे सभी जनों को सुख देने वाली भगवती ! हे महादेव शंकर भगवान् की अर्धाङ्गिनी ! मुझे अपने स्वरूप में अनुरक्त बना दीजिए अर्थात् मुझे अपना अनुपम दास बनाइये।। २१।।

विशेष:- परा पारमेश्वरी ही चार विद्याओं में प्रकट बनी हुई है। इस संबन्ध में विष्णु पुराण में यह श्लोक कहा है–

'यज्ञविद्या महाविद्या गुह्यविद्या च शोभने।
आत्मविद्या च देवी त्वं विमुक्ति फलदायिनी।।'

अर्थात् हे भगवती आप ही चार विद्याओं का स्वरूप धारण करके भक्त-जनों को मुक्ति प्रदान करती हैं। वे विद्यायें ये हैं - यज्ञविद्या, महाविद्या, गुह्यविद्या और आत्मविद्या।

बृहदारण्यक उपनिषद् में भी कहा है–

"अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदः"

इससे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि वेदों की जननी पारमेश्वरी शक्ति ही है।

विधेर्मुण्डं हृत्वा यदकुरुत पात्रं करतले
हरिं शूलप्रोतं यदऽगमयदंसाभरणताम्।
अलंचक्रे कण्ठं यदपि गरलेनाम्ब ! गिरिशः
शिवस्थायाः शक्तेस्तदिदमखिलं ते विलसितम्।। २२।।

पदच्छेद अन्वय सहित

विधेः मुण्डं हृत्वा यत् अकुरुत पात्रं करतले
हरिं शूलप्रोतं यत् अगमयत् अंसाभरणताम्।
अलं चक्रे कण्ठं यत् अपि गरलेन अम्ब ! गिरिशः

शिवस्थायाः शक्तेः तत् इदम् अखिलं ते विलसितम्।। २२।।

हे अम्ब ! गिरिशः विधेर्मुण्डं हत्वा यत् करतले पात्रम् अकुरुंत, हरिं शूलप्रोतं यत् अंसा-भरणताम् अगमयत्, यदपि गरलेन कण्ठम् अलंञ्चक्रे, तदिदं शिवस्थायाः ते शक्तेः एव विलसितम्।। २२।।

शब्दार्थ

हे अम्ब! = हे माता
गिरिशः विधेः मुण्डं हत्वा = भगवान् शंकर ने ब्रह्माजी का सिर काटकर
यत् = उसे
करतले = अपने हाथ का
अकुरुत पात्रं = पात्र बनाया
हरिं = भगवान् विष्णु को
शूलप्रोत = अपने त्रिशूल में धंसाकर
यत् = उसे
अंसाभरणतां = कन्धे पर रखकर कन्धे का आभूषण
अगमयत् = बनाया
गरलेन = कालकूट विष का पान करने से, यत् अपि = उससे
कण्ठं = अपने गले को
अलंचक्रे = विभूषित किया
तत् इदं अखिलं = यह सारा कार्य शिवस्थायाः शक्ते ते विलसितम्- शिव ने तप किया जब उसके स्वरूप में आप परापारमेश्वरी शक्ति ठहरी थी, अर्थात् आपके बिना शिव कुछ नहीं कर सकता था।

अनुवाद

हे माता ! कैलास-वासी शंकर भगवान् ने ब्रह्माजी का सिर काट कर उसे अपने हाथ का पात्र बनाया, भगवान् विष्णु को अपने त्रिशूल में धंसा कर उन्हें अपने कंधे पर रखकर अपना आभूषण बनाया और कालकूट-विष का पान करने से अपने कण्ठ को विभूषित किया। परन्तु यह सारा कार्य शिव ने तब किया जब उसके स्वरूप में आप परा पारमेश्वरी शक्ति ठहरी थीं। भाव यह है कि शिव का सारा चरित्र आपका ही चरित्र था। आपके बिना शिव कुछ भी नहीं कर सकता है।। २२।।

विशेषः- हरि यमराज को भी कहते हैं। पुराणों के कथनानुसार जब श्वेत नाम वाले भक्त को यमराज ने निग्रह करना चाहा था तो उस समय अपने भक्त श्वेत को बचाने के लिए भगवान् शंकर प्रकट हुए और यमराज को अपने त्रिशूल में धंसाया और श्वेत भक्त पर अनुग्रह किया।

सौन्दर्यलहरी में भी कहा भी है—

"शिवः शक्तया युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं।
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि।"।। २२।।

विरिञ्च्याख्या मातः ! सृजसि हरिसंज्ञा त्वमवसि
त्रिलोकीं रुद्राख्या हरसि विदधासीश्वरदशाम्।
भवन्ती सादाख्या शिवयसि च पाशौघदलिनी
त्वमेवैकाऽनेका भवसि कृतिभेदैर्गिरिसुते !।। २३।।

पदच्छेद अन्वय सहित

विरिञ्चयाख्या मातः ! सृजसि हरिसंज्ञा त्वम् अवसि
त्रिलोकीं रुद्र-आख्या हरसि विदधासि ईश्वर दशाम्।
भवन्ती सादाख्या शिवयसि च पाश-औघ दलिनी
त्वं एव एका अनेका भवसि कृतिभेदैः गिरिसुते ! ।। २३।।

हे मातः ! त्वं विरिञ्चाख्या सृजसि, हरिसंज्ञा अवसि, रुद्राख्या त्रिलोकीं हरसि, ईश्वर दशां भवन्ती विदधासि, सादाख्या पाशौघदलिनी शिवयसि च। हे गिरिसुते ! इत्येवं एका त्वमेव कृतिभेदैः अनेका भवसि।। २३।।

शब्दार्थ

हे माता् = हे जगत् जननी !
त्वं = आप
विरिञ्ची आख्या = सृष्टिरूप कृत्य की अधिष्ठात्री ब्रह्मा नाम से विभूषित होकर
सृजसि = जगत् को उत्पन्न करती है।
हरि संज्ञा = स्थितिरूप कृत्य की अधिष्ठात्री विष्णु नामसे विभूषित होकर
अवसि = भव, अभव तथा अतिभवात्मक संसार का पालन करती है।
रुद्राख्या = संहाररूप कृत्य की अधिष्ठात्री रुद्र नाम से विभूषित होकर इसे संहार करती है
ईश्वरदशां = तिरोधानकर्म की अधिष्ठात्री ईश्वर दशा को धारण करके
विदधासि = इस सारे संसार का विलय (तिरोधान) करती है।
साद आख्या भवन्ती=सदाशिव संज्ञा प्राप्त करके
पाशौघदलिनी = इस जगत् के सभी पाश आणव आदि मल काटकर
शिवयसि = इस संसार का अनुग्रह करती है।
गिरिसुते = हे पर्वराज पुत्री
इत्येवं = इस प्रकार
एका त्वमेव = आप वास्तव में एक स्वरूप वाली होकर भी
कृति भेदैः = सृष्टि, स्थिति, संसार, तिरोधान, अनुग्रहरूपी पांच कर्मो के भेद से
अनेका भवसि = अनेक बन जाती है अर्थात् आप ही ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव इन पांच कारणों का स्वरूप धारण करती है।

अनुवाद

हे माता ! आप सृष्टिरूप कृत्य की अधिष्ठात्री (ब्रह्मा) बन कर जगत् को उत्पन्न करती हैं, स्थितिरूप कृत्य की अधिष्ठात्री (विष्णु) बनी हुई इस भव-अभव तथा अति भवात्मक संसार का पालन करती हैं, संहति रूप कृत्य की अधिष्ठात्री (रुद्र) नाम से विभूषित होकर इसका संहार करती हैं, तिरोधानकर्म की अधिष्ठात्री अर्थात् ईश्वरदशा को धारण करके इस समस्त जगत् का विधान करती है और सदाशिव-संज्ञा पाकर आप इस जगत् के सभी पाश-आणव आदि मल काटकर इसका अनुग्रह करती है। हे पर्वतराज पुत्री ! इस प्रकार आप वास्तव में एक स्वरूप वाली होकर भी सृष्टि-स्थिति-संहार-विलय और अनुग्रह करती हैं। हे पर्वतराज पुत्री ! इस प्रकार आप वास्तव में एक स्वरूप वाली होकर भी सृष्टि-स्थिति-संहार-विलय और अनुग्रह रूपी पांच कृत्यों को धारण करके अनेक बन जाती हैं, अर्थात् आप ही ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव इन पांच कारणों का स्वरूप धारण करती हैं।। २३।।

विशेषः- इस श्लोक में कृति भेदैः के स्थान पर 'कृतभेदैः भी पाठान्तर है।

रुद्रः = रुजं (रोगं) द्रावयति (विनाशयति) इति रुद्रः

अथवा प्रलयकालिक वृष्टि रुद्र के सूर्य नामक नेत्र से उत्पन्न अश्रु के रूप में हुई। अतः रोदयति इति रुद्रः।

वेदों में कहा है- सोऽरोदीत्, यत् अरोदीत् तत् रुद्रस्य रुद्रत्वम्

मुनीनां चेतोभिः प्रमृदितकषायैरपि मना-
गऽशक्ये संस्प्रष्टुं चकितचकितैरम्ब ! सततम्।
श्रुतीनां मूर्धानः प्रकृतिकठिनाः कोमलतरे
कथं ते विन्दन्ते पदकिसलये पार्वति ! पदम्।। २४।।

पदच्छेद अन्वय सहित

मुनीनां चेतोभिः प्रमृदितकषायैः अपि मनाक्
अशक्ये संस्प्रष्टुं चकित चकितैः अम्ब ! सततम्।
श्रुतीनां मूर्धानः प्रकृति कठिनाः कोमलतरे
कथं ते विन्दन्ते पदकिसलये पार्वति ! पदम्।। २४।।

हे अम्ब ! प्रमृदितकषायैरपि सततं चकित चकितैरम्ब ! मुनीनां चेतोभिः संस्प्रष्टुंमनागऽशक्ये ते कोमलतरे पदकिसलये। अतः हे पार्वति ! श्रुतीनां मूर्धानः

प्रकृतिकठिनाः ते पदं कथं विन्दन्ते।। २४।।

शब्दार्थ

हे अम्ब! = हे माता!

प्रमुदित कषायैः अपि = काम क्रोध आदि मानसिक विकारों का नाश करके भी

मुनीनां चेतोभिः = मुनिजनों के मन

सततं = निरन्तर

चकित चकितैः = भयग्रस्त होने के कारण

ते कोमलतरे पद किसलये = आपके कोमल ज्ञान क्रियात्मक पाद कमलों का

मनाक् = जरा भी

संस्प्रष्टुं अशक्ये = स्पर्श कर नहीं पाते

अतः हे पार्वति ! = हे पार्वती

श्रुतीनां मूर्धानां = वेदादि श्रुतियों के जो प्रधान उपनिषद्भाग हैं वे

प्रकृति कठिनाः = स्वभाव से ही कर्कश कठिन और अकोमल हैं वे

ते पदं = आपके कोमलतम स्थान को

कथं विन्दन्ते = कैसे प्राप्त कर सकते हैं।

अनुवाद

हे माता ! काम, क्रोध आदि मानसिक विकारों का नाश करके भी मुनि-जनों के मन सदैव भयग्रस्त होने के कारण आपके अत्यन्त कोमल ज्ञानक्रियात्मक पद-पंकज का स्पर्श नहीं कर पाते। इसलिए हे पार्वती ! वेदादि श्रुतियों के शिरोमणि अर्थात् ऋग् आदि तीन वेदों में जो प्रधान बने हुए उपनिषद् भाग हैं, स्वभाव से वे सारे उपनिषद् अकोमल और कर्कश हैं वे आपके कोमलतम स्थान को कैसे प्राप्त हो सकते हैं अथवा प्राप्त करा सकते हैं।। २४।।

विशेषः- कहा भी है– "तत्त्वज्ञस्य तृणं शास्त्रम्"।

गीता में भी कहा है–

"तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च"।

उपनिषदों में भी–

"यतो वाचो निवर्तन्ते" इत्यादि।।

तडिद्वल्लीं नित्यामऽमृत सरितं पाररहितां
मलोत्तीर्णां ज्योत्स्नां प्रकृतिमगुणग्रन्थिगहनाम्।
गिरां दूरां विद्यामविनतकुचां विश्वजननी-
मपर्यन्तां लक्ष्मीमभिदधति सन्तो भगवतीम्।। २५।।

पदच्छेद अन्वय सहित

तडित् वल्लीं नित्यां अमृत सरितं पाररहितां

मल उत्तीर्णां ज्योत्स्नां प्रकृतिं अगुणग्रन्थि गहनाम्।
गिरां दूरां विद्यां अविनत कुचां विश्व जननीं
अपर्यन्तां लक्ष्मीं अभिदधति सन्तः भगवतीम्।। २५।।

सन्तो भगवतीम् नित्यां तडिद्वल्लीं, पाररहितां अमृतसरितं, मलोत्तीर्णां ज्योत्स्नां, अगुण ग्रन्थिगहनां प्रकृतिं, गिरां दूरां विद्यां, अविनत कुचां विश्व जननीम् (एवम्) अपर्यन्तां लक्ष्मीम् अभिदधति।। २५।।

शब्दार्थ

हे मातः! = हे माता!
सन्तः = सन्तजन, आपको
नित्यां = सदा रहने वाली
तडित्वल्लीं = बिजली की रेखा के समान
पाररहितां = बिना तटों के
अमृतसरितं = अमृत नदी के समान
मलोन्त्तीर्णा = मलहीन अर्थात् कलंकरहित
ज्योत्स्नां = चांदनी के समान
अगुणग्रन्थिगहनां = सतोगुण आदि गुणरूपी ग्रन्थियों से रहित।
प्रकृतिं = प्रकृति के समान
गिरांदूरां = वाणी का विषय न बनी हुई
विद्यां = विद्या के समान
अविनतकुचां = ज्ञान क्रियारूपी स्तनों के अविनत होकर भी अर्थात् ज्ञान क्रिया शक्तियों के बहिर्भावावस्था न प्राप्त करते हुए ही
विश्वजननीं = जगत् की उत्पत्ति करने वाली माता के समान
अपर्यन्तां लक्ष्मीं = कभी समाप्त न होने वाली माता के समान अर्थात् मोक्षलक्ष्मी रूपा आपका अभिदधति = वर्णन करते हैं

अनुवाद

हे माता ! सन्त-जन आपको सदा रहने वाली बिजली की रेखा के समान, बिना तटों के अमृत-नदी-तुल्य, कलंक-रहित, चांदनी के सदृश, सत्त्व आदि गुण रूपी ग्रन्थियों से रहित प्रकृति के समान, वाणी का अविषय बनी हुई विद्या के तुल्य, ज्ञानक्रिया-रूपी स्तनयुग्मों के अविनत होकर भी अर्थात् ज्ञानक्रिया-शक्तियों के बहिर्भावावस्था न प्राप्त करते हुए ही जगत् की उत्पत्ति करने वाली माता के समान, तथा न समाप्त होने वाली लक्ष्मी के समान अर्थात् मोक्ष लक्ष्मी रूपा वर्णन करते हैं।। २५।।

विशेषः- तडित्वल्लीं से मध्य मार्ग से परशिवसीमा तक जाती हुई कुण्डलिनी शक्ति का संकेत है जो स्थिर बिजली की रेखा के समान चमकीली होती है।

आचार्य पादों ने गौरी स्तुति में इसका वर्णन इस प्रकार किया है-

मूलाधारात् उत्थितवन्तीं विधिरन्ध्रं इत्यादि।

मलोत्तीर्णां ज्योत्स्नां से यहां आणव मायीय कार्म मलों से अतीत विन्दुवर्ती परशिव चन्द्र चित् चन्द्रिका रूपा जगत् आह्लाद कारिणी शक्ति ही अभिप्रेत हैं।

प्रकृतिः- सदाशिव तत्त्व से पृथ्वी तत्त्व तक सारे चर अचर जगत की मूलकारण रूपा।

गिरां दूरां से यहां परावाग् की ओर संकेत हैं।

शरीरं क्षित्यम्भः प्रभृतिरचितं केवलमिदं
सुखं दुःखं चायं कलयति पुमांश्चेतन इति।
स्फुटं जानानोऽपि प्रभवति न देही रहयितुं
शरीराहंकारं तव समयबाह्यो गिरिसुते ! ।। २६।।

पदच्छेद अन्वय सहित

शरीरं क्षिति अम्भः प्रभृतिरचितं केवलं इदम्
सुखं दुःखं च अयं कलयति पुमान् चेतनः इति।
स्फुटं जानानः अपि प्रभवति न देही रहयितुं
शरीर अहङ्कारं तव समयबाह्यः गिरिसुते ! ।। २६।।

हे गिरि सुते ! अयं चेतनः पुमान् केवलं क्षिति-अम्भः-प्रभृतिरचितं इदं शरीरं, सुखं दुःखं च कलयति। इत्येव तव समयबाह्यः देही स्फुटं जानानः अपि शरीराहंकारं रहयितुं न प्रभवति।। २६।।

शब्दार्थ

हे गिरिसुतेः = हे पर्वतराज पुत्री
अयं चेतनः पुमान् = यह चेतन पुरुष
केवलम् = केवल
क्षिति अम्भःप्रभृतिरचितं = पृथ्वी जल आदि पांचभूतों से बने हुए।
इदं शरीरं = इस अपने शरीर को वेदक रूपता से
सुखं दुःखं च = सुख तथा दुःख को वेद्यरूपता से
कलयति = जान लेता है अर्थात् पांच भौतिक जड़ शरीर पर आत्माभिमान धारण करता है।
इत्यतः = इसलिए
तवसमयबाह्यः = आपके रहस्यमय गुरु मुख से वंचित बना हुआ।
देही = यह शरीरधारी
शरीराहंकारं = अपने शरीर का आत्माभिमान
रहयितुं = छोड़ने के लिए
न प्रभवति = समर्थ नहीं होता
स्फुटं जानानः अपि = यद्यपि उसे भली भांति यह ज्ञान है कि यह मेरा शरीर जड़ ही है।

अनुवाद

हे पर्वतराज पुत्री ! यह चेतन पुरुष केवल पृथ्वी आदि पांच भूतों से निर्मित बने हुए अपने शरीर को वेदकरूपता से और सुख तथा दुःख को वेद्यरूपता से जान लेता है अर्थात् पांच भौतिक जड़ शरीर पर आत्माभिमान धारण करता है। इत्यतः आपके रहस्यमय गुरु-मुख से वञ्चित बना हुआ यह देहधारी अपने शरीर का आत्माभिमान छोड़ने के लिये समर्थ नहीं होता, यद्यपि उसे भली-भांति यह ज्ञान है कि यह मेरा शरीर जड़ ही है।

विशेषः- यह देहाभिमान छः प्रकार से शास्त्रों में वर्णित है–

संपन्नोऽस्मि कृशोऽस्मि स्निहात्करणोऽस्मि मोदमानोऽस्मि।

प्राणिमि शून्योऽस्मीति च षट्सु पदेष्वस्मिता दृष्टा।।

इस नीति से यह छः प्रकार का अभिमान जीव त्याग नहीं सकता।। २६।।

पिता माता भ्राता सुहृदनुचराः सद्म गृहिणी
वपुः पुत्रो मित्रं धनमपि यदा मां विजहति।
तदा मे भिन्दाना सपदि भयमोहान्धतमसं
महाज्योत्स्ने ! मातर्भव करुणया सन्निधिकरी।। २७।।

पदच्छेद अन्वय सहित

पिता माता भ्राता सुहृत्अनुचराः सद्म गृहिणी
वपुः पुत्रो मित्रं धनमपि यदा मां विजहति।
तदा मे भिन्दाना सपदि भय मोह अन्धतमसं
महाज्योत्स्ने ! मातर्भव करुणया सन्निधिकरी।। २७।।

हे मातः ! (देहत्यागावसरे) यदा पिता, माता, भ्राता, सुहृत् अनुचराः, सद्म, गृहिणी, वपुः, पुत्रः, मित्रं धनमपि मां विजहति, तदा हे महाज्योत्स्ने ! मे भयमोहान्धतमसं सपदि भिन्दाना त्वं करुणया सन्निधिकरी भव।। २७।।

शब्दार्थ

हे माता! = देह त्याग के समय
यदा = जब
पिता माता भ्राता = मां, बाप, भाई
सुहृत् = मित्र
अनुचराः = नौकर चाकर
सद्म = बंगला गाड़ी
गृहिणी = धर्मपत्नी
वपुः = शरीर

पुत्रः = सन्तान
मित्रं = दोस्त
धनंअपि = धन भी
मां = मुझे, परवश होकर सारे के सारे
विजहति = छोड़ना पड़ेगा
तदा = तब
हे महाज्योत्स्ने ! = हे महाप्रकाशमयी भगवती!
त्वं करुणया = आप कृपा करके
मे भय मोहान्धतमसं = मेरे भय, मोह और अन्धकार आदि विघ्नों को
सपदि = जल्दी से
भिन्दाना = काटती हुई
सन्निधिकरी भव = मेरे सम्मुख प्रत्यक्षबनो

अनुवाद

हे माता ! जिस देहत्यागक्षणात्मक मृत्यु के समय मुझे अपना पिता, माता, भाई, सखा, अनुचर, घर, पुत्र, गृहिणी, मित्र, धन तथा शरीर-ये सारे के सारे परवश होकर छोड़ने पड़ेंगे, उस समय हे महाप्रकाशमयी भगवती ! आप कृपा करके सभी भय, मोह और अन्धकार आदि विघ्नों को काट देना और मुझे अपना तुच्छ सेवक समझ कर दर्शन देना।। २७।।

विशेषः - तत्त्वदृष्टि से जगज्जननी पारमेश्वरी का साक्षात्कार अपने स्वात्म-प्रयत्न से कदापि नहीं प्राप्त हो सकता है। उसके लिए पराशक्ति का केवल अनुग्रह ही पर्याप्त है। कहा भी है–

'नात्र स्वात्मीयः पुरुषकारः कोऽपि निर्वहति'।

अर्थात् परादेवी के साक्षात् दर्शन-प्राप्ति के निमित्त अपना पुरुषकार सर्वथा अकिंचित्कर है।।

महाज्योत्स्ने से महाप्रकाशमयी संवित् ही अभिप्रेत है। कहा है प्रत्यभिज्ञा में-

सा स्फुरत्ता महासत्ता देशकालाविशेषिणी।

सुता दक्षस्यादौ किल सकलमातस्त्वमुदभूः
सदोषं तं हित्वा तदनु गिरिराजस्य तनया।
अनाद्यन्ता शम्भोरपृथगपि शक्तिर्भगवती
विवाहाज्जायासीत्यहह चरितं वेत्ति तव कः।। २८।।

पदच्छेद अन्वय सहित

सुता दक्षस्य आदौ किल सकलमातः त्वं उदभूः
सदोषं तं हित्वा तत् अनु गिरिराजस्य तनया।
अनाद्यन्ता शम्भोः अपृथक अपि शक्तिः भगवती
विवाहात् जायासि इति अहह चरितं वेत्तिं तव कः।। २८।।

हे सकलमातः ! आदौ त्वं किल दक्षस्य सुता उदभूः। तदनु सदोषं तं हित्वा

गिरिराजस्य तनया (सम्पन्नासि)। शम्भोरपृथगपि अनाद्यन्ता भगवती शक्तिः (त्वं) विवाहात् जायासि। अहह इति तव चरितं कः वेत्ति॥ २८॥

शब्दार्थ

हे सकलमातः = हे जगत् जननी!
आदौ = सृष्टि के आरंभ में पहिले
त्वं = आप
किल = निश्चय करके
दक्षस्य सुता उदभूः = राजा दक्षप्रजापति की पुत्री बन गई
तदनु = उसके पश्चात्
सदोषं तं = दोष युक्त उस प्रजापति का
हित्वा = त्याग करके
गिरिराजस्य = हिमालय की
तनया = कन्या बनी
शम्भोः अपृथक् शक्ति अपि = आप यदि तत्त्व दृष्टि से भगवान शंकर से अभिन्न होकर
अनाद्यन्ता = आदि और अन्त से रहित
भगवती = ऐश्वर्यमती है
तथापि
त्वं विवाहात् जायासि = उस भगवान् शंकर के साथ विवाह करके आप उनकी पत्नी बन गई।
अहह = आश्चर्य है इस प्रकार के
तव चरितं = तुम्हारे लीलामय चरित को
कः वेत्ति = कौन जान सकता है।

अनुवाद

हे जगज्जननी मां ! सृष्टि के आरम्भ में पहिले आप राजा दक्षप्रजापति की पुत्री बन गईं। उसके पश्चात् दोष-युक्त उस प्रजापति का त्याग करके हिमालय की कन्या बनीं। आप यदि तत्त्वदृष्टि से भगवान् शंकर से अभिन्न होकर आदि और अन्त से रहित भी हैं तथापि उस शंकर भगवान् के साथ विवाह करके उनकी पत्नी बन गईं। इस प्रकार के आप के लीलामय चरित को कौन जान सकता है अर्थात् आपका लीलामय-स्वातंत्र्य सर्वथा अगम्य है॥ २८॥

विशेषः- वास्तव में पारमेश्वरी शक्ति शिव के साथ सदैव अभिन्न है। कहा भी है–

'शक्तिश्च शक्तिमद्रूपाद्व्यतिरेकं न वांछति।
तादात्म्यमनयोर्नित्यं वह्निदाहकयोरिव॥

इत्यादि।

कणास्त्वद्दीप्तीनां रविशशिकृशानुप्रभृतयः
परं ब्रह्म क्षुद्रं तव नियतमानन्दकणिका।
शिवादिक्षित्यन्त्तं त्रिवलयतनोः सर्वमुदरे
तवास्ते भक्तस्य स्फुरसि हृदि चित्रं भगवति ! ॥ २९॥

पदच्छेद अन्वय सहित

कणाः त्वत् दीप्तीनां रवि शशि कृशानु प्रभृतयः
परं ब्रह्म क्षुद्रं तव नियतं आनन्दकणिका।
शिवादि क्षित्यन्तं त्रिवलय तनोः सर्वं उदरे
तव आस्ते भक्तस्य स्फुरसि हृदि चित्रं भगवति ! ॥ २९॥

हे भगवति ! रविशशिकृशानुप्रभृतयः त्वद् दीप्तीनां कणाः। परं ब्रह्म अपि क्षुद्रं सत् तव आनन्द-कणिका (इति मया) नियतम्। शिवादिक्षित्यन्तं सर्वं तव त्रिवलयतनोः उदरे आस्ते-इति सर्वं चित्रम्। इत्येवं भक्तस्य हृदि स्फुरसि॥ २९॥

शब्दार्थ

हे भवति ! = हे सर्वैश्वर्य शालिनी माता!
रवि = सूरज
शशि = चन्द्रमा
कृशानु = अग्नि
प्रभृतयः = आदि (प्रकाश)
त्वत् दीप्तीनां कणः = आपकी रश्मियों के कण मात्र हैं
परं ब्रह्म अपि = परिपूर्ण शिव रूप ब्रह्म भी
क्षुद्रंसत् = आपके महान् तेज के सामने, क्षुद्र अर्थात् तुच्छ बना हुआ।
तव आनन्द कणिका = उस आपके अगाध तेज का एक कण है
इति मया नियतं = यह मैंने समझ लिया है।
शिवादि क्षित्यन्तं = शिव तत्त्व से पृथ्वी तक
सर्वं = सभी ३६ तत्व
त्रिवलयतनोः = त्रिवलयाकार
तव = आप कुण्डलिनी के
उदरे = बीच में
आस्ते = ठहरे हुए हैं
इत्येवं = इस प्रकार आपका
सर्व चित्रं = आश्चर्यपूर्णस्वरूप
भक्तस्य हृदि = भक्त के हृदय में
स्फुरसि = अनुभव किया जाता है।

अनुवाद

हे भगवती ! सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि आदि सभी प्रकाश आपकी रश्मियों के कण-मात्र हैं। परिपूर्ण शिव रूप ब्रह्म भी आपके महान् तेज के सामने क्षुद्र अर्थात् तुच्छ बना हुआ उस आपके अगाध तेज का एक कण है—यह तो मैंने समझ लिया है। इसके अतिरिक्त शिव तत्त्व से लेकर पृथिवी तक सभी तत्त्व भी त्रिवलयाकार कुण्डलिनी के बीच में ठहरे हुए हैं। इस प्रकार आपका आश्चर्यपूर्ण स्वरूप आपके भक्त के हृदय में अनुभव किया जाता है॥ २९॥

विशेषः- जिस तेज के सामने सूर्यादि विश्ववर्ती तेज, कण-मात्र प्रतीत होते हैं उस तेज की महानता कितनी विशाल होगी—यह आश्चर्य है। जहां पूर्ण चित्प्रकाश स्वरूप शिव भी एक अल्प

तेज का कण सा प्रतीत होता है, वह तेज कितना आश्चर्यमय होगा। इसके अतिरिक्त जहां सारे छत्तीस तत्त्व उदर में ही ठहरे होंगे वह पराशक्ति कितनी विशाल और बड़ी होगी—यह भी बड़े आश्चर्य की बात है। इस विषय में कहा भी है—

'त्रैलोक्येऽप्यत्र यो यावानानन्दः कश्चिदीक्ष्यते।
स बिन्दुर्यस्य तं वन्दे देवमानन्दसागरम्।।'

अर्थात् महान् से महान् आनन्द इस त्रिलोकी में जो भी कोई देखने में आता है, वह आनन्द जिस महान् आनन्द-सागर का एक बिन्दु है, उस आनन्द समुद्र को मैं प्रणाम करता हूं।।

त्वया यो जानीते रचयति भवत्यैव सततं
त्वयैवेच्छत्यम्ब ! त्वमसि निखिला यस्य तनवः।
गतः साम्यं शम्भुर्वहति परमं व्योम भवती
तथाप्येवं हित्वा विहरति शिवस्येति किमिदम्।। ३०।।

पदच्छेद अन्वय सहित

त्वया यः जानीते रचयति भवत्या एव सततं
त्वया एव इच्छति अम्ब ! त्वं असि निखिला यस्य तनवः।
गतः साम्यं शम्भुः वहति परमं व्योम भवती
तथापि एवं हित्वा विहरति शिवस्य इति किंइदम्।। ३०।।

हे अम्ब ! यः त्वया जानीते, भवत्यैव सततं रचयति, त्वयैव इच्छति, यस्य निखिला तनवः त्वमसि, स शम्भुः (त्वत्स्वरूपे) साम्यं गतः परमं व्योम वहति। तथापि भवती एवं शिवस्य हित्वा विहरति इति किमिदम्।। ३०।।

शब्दार्थ

हे अम्ब ! = हे माता !
यः = जो शिव
त्वया = आपकी ही परापरारूपिणी जान शक्ति से
जानीते = सारे प्रमाण प्रमेयादि जगत् को जान लेता है।
भवत्या एव = आपकी अपराशक्ति रूपा क्रिया शक्ति से
सततं रचयति = निरन्तर इस जगन्मण्डल की रचना करता है
त्वया एव = आपकी ही परारूपा इच्छा शक्ति से
इच्छति = इस जगत् को फिर से अपने स्वरूप में लय करके संहृतकरती है। इसके अतिरिक्त
यस्य = जिस शिव की
निखिला तनवः = सभी आठ मूर्तियां
त्वं असि = तुम ही बनी हुई हैं
स शम्भुः = इस प्रकार जो शिव

त्वत्स्वरूपे = आपके स्वरूप में
साम्यंगतः = साम्य को प्राप्त हुआ
परमं व्योम = परमाकाश रूप शून्यधाम में
वहति = चला गया है अर्थात् सदा के लिए आपके स्वरूप में लीन होकर अपनी सत्ता समाप्त करता है।
तथापि = ऐसा होकर भी
भवती = आप
एवं = इस प्रकार
शिवस्य = इस शिव की
हित्वा = अनाख्यरूपता को छोड़कर
विहरति = इसके साथ फिर से विहार करती है।
इति किमिदम् = यह तो क्या है? अर्थात् यह आपकी लीला आश्चर्यकारिणी है।

अनुवाद

हे माता ! जो शिव आपकी ही परापरारूपिणी ज्ञान-शक्ति से समस्त प्रमाण-प्रमेयादि जगत् को जान लेता है, आपकी ही अपराशक्ति-रूपा क्रियाशक्ति से इस जगन्मण्डल की रचना करता है और आपकी ही परारूपा इच्छा शक्ति से इस जगत् को फिर से अपने स्वरूप में लय करके संहृत करता है। इसके अतिरिक्त जिस शिव की सभी आठ मूर्तियां आप ही बनी हुई हैं, इस प्रकार जो शिव आपके स्वरूप साम्य को प्राप्त हुआ परमाकाशरूप शून्य-धाम में चला गया है, अर्थात् सदा के लिए आपके स्वरूप में लीन होकर अपनी सत्ता समाप्त करता है, ऐसा होकर भी आप इस शिव की अनाख्य रूपता को छोड़कर इसके साथ फिर से विहार करती है यह तो क्या है? अर्थात् यह आपकी लीला मुझे आश्चर्य-चकित कर देती है।। ३०।।

विशेषः- शिव की आठ मूर्तियों के नाम ये हैं–

पृथ्वी, अग्नि, यजमान, सूर्य, जल, वायु, चन्द्रमा और आकाश।

अथवा भवदेव, शर्व, रुद्र, पशुपति, उग्र, महादेव, भीम और ईशान।।

जानीते = शिव जब जगत् को जानता है तो समझना चाहिये कि उसकी स्थिति होती है, रचनात्मक व्यवहार से शिव सृष्टिकर्ता और इच्छात्मक-क्रिया से उसकी संहर्तृता का संकेत समझना चाहिए।

परापरारूपा ज्ञानशक्ति, अपराशक्ति रूपा क्रियाशक्ति, परारूपा इच्छाशक्ति का विस्तार से वर्णन तंत्रालोक में किया गया है।

पुरः पश्चादन्तर्बहिरपरिमेयं परिमितं
परं स्थूलं सूक्ष्मं सकुलमकुलं गुह्यमगुहम्

दवीयो नेदीयः सदसदिति विश्वं भगवतीं
सदा पश्यन्त्याज्ञां वहसि भुवनक्षोभजननीम्।। ३१।।

पदच्छेद अन्वय सहित

पुरः पश्चात् अन्तः बहिः अपरिमेयं परिमितं
परं स्थूलं सूक्ष्मं सकुलं अकुलं गुह्यं अगुहम्।
दवीयः नेदीयः सत् असत् इति विश्वं भगवतीं
सदा पश्यन्ति आज्ञां वहसि भुवनक्षोभजननीम्।। ३१।।

हे भगवति ! पुरः पश्चाद्, अन्तर, बहिः, अपरिमेयं, परिमितं, परं, स्थूलं, सूक्ष्मं, सकुलम्, अकुलं, गुह्यम्, अगुहं, दवीयो नेदीयः सदसत्—इति सर्वं विश्वं ये त्वदभक्ताः सदा "ईं" कामकला-स्वरूपमेव पश्यन्ति, तेषां त्वं भुवनक्षोभजननीम् आज्ञां वहसि।।३१।।

शब्दार्थ

हे भगवतिः = हे ऐश्वर्यशालिनी मा!
पुरः = सामने
पश्चात् = पीछे
अन्तर = भीतर
बहि! = बाहर
अपरिमेयं = अनन्त
परिमितं = सीमित
परं = पर
स्थूल = स्थूल
सूक्ष्मं = सूक्ष्म
सकुलं = साकार
अकुलं = निराकार
गुह्यं = गुप्त
अगुह्यं = प्रकट
दवीय = दूर
नेदीय = समीप
सत् असत् = सत् और असत्
इति = इस प्रकार के
सर्वं विश्वं = सारे संसार को
ये त्वत् भवत्ताः = जो आपके भक्त
सदा = हमेशा
भगवतीं = कामकलास्वरूप बीजाक्षर "ई" को ही
पश्यन्ति = देखते हैं
तेषां = उन भक्तों के लिए तो
त्वं = आप
आज्ञां वहति = अपनी उत्तमोत्तमा आज्ञा अर्थात् अनुग्रह धारण करती हैं जिसके फलस्वरूप वे आपके भक्त
भुवनक्षोभ जननीं = समस्त संसार पर शासन करते हैं।

अनुवाद

हे भगवती ! सामने, पीछे, भीतर, बाहर, अनन्त, परिमित, पर, स्थूल, सूक्ष्म, साकार, निराकार, गुप्त, प्रकट, अत्यन्त दूर, समीप, सत् और असत्–इस प्रकार के सारे संसार को जो आपके भक्त-जन "ईं" अर्थात् कामकला का स्वरूप ही देखते हैं। उनके लिये तो आप अपनी उत्तमोत्तमा आज्ञा अर्थात् अनुग्रह धारण करते हैं जिसके फलस्वरूप वे आपके भक्त, समस्त भुवनों की अङ्गनाओं को (शक्तियों) चलायमान करते हैं। भाव यह है कि वे भक्त समस्त संसार पर शासन करते हैं।। ३१।।

विशेषः- जब पारमेश्वरी का भक्त उसके कामकला-स्वरूप "ईम्" बीजाक्षर की उपासना करता है तब वह समस्त भुवनों में ठहरी हुई स्त्रियों पर विजय प्राप्त करता है। इस पर शास्त्रों में कहा भी है–

महाकामकलाध्यानयोगात्तु सुरवान्दिते।
क्षोभयेत् स्वर्गभूर्लोकपातालतलयोषितः।।
इति। तथा
यदैव जपते विद्यां महात्रिपुरसुन्दरीम्।
तदैव मातृचक्राज्ञा संक्रामत्यस्य विग्रहे।
सर्वासां सर्वसंस्थानां योगिनीनां भवेत् प्रियः।।

अतः 'ईं'– इस महात्रिपुरसुन्दरी के जप करने से साधक में विश्वाकर्षणात्मिका शक्ति का प्रादुर्भाव होता है। इस 'ईं' बीजाक्षर की जपविधि गुरु-मुख से ही समझनी चाहिए।।

सूक्ष्मं स्थूलं से वाच्य वाचक रूप छः प्रकार का अध्वा अभिप्रेत हैं। इनमें भुवनाध्वा, तत्त्वाध्वा और कलाध्वा वाच्यरूप है। मन्त्राध्वा, पदाध्वा और वर्णाध्वा वाचक रूप है। अथवा परमआवरण आणवमल, सूक्ष्म आवरण मायीय मल है स्थूल आवरण कार्म मल है। इस प्रकार परं स्थूलं सूक्ष्मं से मलत्रयावेष्टित संसार का अर्थ लेना चाहिए।

मयूखाः पूष्णीव ज्वलने इव तद्दीप्तिकणिकाः
पयोधौ कल्लोल प्रतिहतमहिम्नीव पृषतः।
उदेत्योदेत्याम्ब ! त्वयि सह निजैस्तात्त्विककुलै-
र्भजन्ते तत्त्वौघाः प्रशममनुकल्पं परवशाः।। ३२।।

पदच्छेद अन्वय सहित

मयूखाः पूष्णि इव ज्वलन इव तत् दीप्तिकणिकाः
पयोधौ कल्लोल प्रतिहत महिम्नि इव पृषतः।

उदेत्य उदेत्य अम्ब ! त्वयि सह निजैः तात्त्विक कुलै-

भजन्ते तत्त्वौघाः प्रशमं अनुकल्पं परवशाः।। ३२।।

हे अम्ब ! पूष्णि मयूखाः इव, ज्वलने तद्दीप्तिकणिकाः इव, कल्लोलप्रतिहत महिम्नि पयोधौ पृषतः इव तत्त्वौघाः निजैः तात्त्विक कुलैः सह त्वयि उदेत्य उदेत्य अनुकल्पं परवशाः सन्तः प्रशमं भजन्ते।। ३२।।

शब्दार्थ

हे अम्ब ! = हे माता, जिस भांति

पूष्णि = सूर्य की

मयूखाः = किरणें उसी से उदित होकर उसी में लीन होती है जिस प्रकार

ज्वलने = आग में तत् दीप्ति कणिका- आग की चिंगारियां उदित होकर उसी में समाप्त होती हैं जिस प्रकार कल्लोल प्रतिहतमहिम्नि = लहरों की धारा से अनन्त महिमाशील बने हुए

पृषतः = जल की बूंदें

पयोधौ = सागर से उदित होकर सागर में ही समा जाती है।

इव = ठीक उसी भांति

निजैः तात्त्विक कुलैः सह=अपने-अपने तत्त्व सम्बन्धी श्रेणियों सहित, ये सभी छत्तीस तत्त्व

त्वयि = आप परमेश्वरी से

उदेत्य उदेत्य = बार बार उदित होकर

अनुकल्पं = प्रत्येक प्रलय काल में

परवशाः = विवश होकर

प्रशमं भजन्ते = आपके ही स्वरूप में समा जाते हैं

विशेषः- तत्त्वदृष्टि से सारा संसार-मण्डल चिंत् चमत्कृतिरूप पराशक्ति से उदय करता है और फिर से उसी में समा जाता है जैसा कि अष्टावक्रगीता में कहा है-

मय्यनन्ते चिदम्भोधावाश्चर्यं जीववीचयः।

उद्यन्ति घ्नन्ति खेलन्ति प्रविशन्ति स्वभावतः।।

इसके अतिरिक्त विज्ञानभैरव-शास्त्र में इसी आशय की ओर निम्न श्लोक में संकेत किया है-

जलस्येवोर्मयो वह्नेर्ज्वालाभङ्ग्यः प्रभा रवेः।

ममैव भैरवस्यैता विश्वभङ्ग्यो विनिर्गताः।।

इत्यादि।।

तात्त्विक कुल से कल्पान्त तक ठहरने वाले भाव अभिप्रेत है, शरीर भुवनादि नहीं।

गीता जी में भी इसी भाव को- सर्वभूताणि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकीम् इत्यादि श्लोक में स्पष्ट किया गया है।

अनुवाद

हे माता ! जिस भांति भगवान् सूर्य की किरणें उसी से उदित होकर उसी में लय होती हैं, जिस प्रकार अग्नि की चिंगारियां अग्नि से उदय करके उसी में समाप्त होती

हैं और जिस भांति ऊर्मिसंतति से युक्त महान् समुद्र से जल की बून्दें उसी से उदित होकर उसी में चली जाती हैं अर्थात् समा जाती हैं ठीक उसी भांति अपने-अपने तत्त्व संबन्धी श्रेणियों सहित ये सभी छत्तीस तत्त्व आप पारमेश्वरी भगवती से उदित होकर प्रत्येक प्रलयकाल में आपके स्वरूप में विवश होकर समा जाते हैं अर्थात् आपके स्वरूप में ही लय होते हैं।। ३२।।

विधुर्विष्णुर्ब्रह्मा प्रकृतिरणुरात्मा दिनकरः
स्वभावो जैनेन्द्रः सुगतमुनिराकाशमनिलः।
शिवः शक्तिश्चेति श्रुतिविषयतां तामुपगतां
विकल्पैरेभिस्त्वामभिदधति सन्तो भगवतीम्।। ३३।।

पदच्छेद अन्वय सहित

विधुः विष्णुः ब्रह्मा प्रकृतिः अणुः आत्मा दिनकरः
स्वभावः जैनेन्द्रः सुगतमुनिः आकाशं अनिलः।
शिवः शक्तिः च इति श्रुति विषयतां तां उपगतां
विकल्पैः एभिः त्वां अभिदधति सन्तः भगवतीम्।। ३३।।

हे अम्ब ! विधुः, विष्णुः, ब्रह्मा, प्रकृतिः, अणुः, आत्मा, दिनकरः, स्वभावः, जैनेन्द्रः सुगतमुनिः, आकाशम्, अनिलः, शिवः, शक्तिश्च–इति एभिः विकल्पैः तां श्रुतिविषयतां उपगतां त्वां भगवतीम् सन्तः अभिदधति।। ३३।।

शब्दार्थ

हे अम्ब ! = हे माता
विधुः = चन्द्रमा
विष्णुः = नारायण
ब्रह्मा = विधाता
प्रकृतिः = त्रिगुण साम्यात्मिका
अणुः = जीवात्मा
आत्मा = परमात्मा
दिनकरः = सूर्य देवता,
स्वभावः = परमशिव का स्वरूप
जैनेन्द्र सुगतमुनि = बौद्धों के श्रेष्ठतम बुद्ध
आकाशं = आकाश
अनिलः = वायु
शिवः शक्तिः = शिव और शक्ति
इति एभिः विकल्पैः = इन विकल्पात्मक शास्त्रों के नामों से
तां श्रुतिविषयतां उपगतां = उस सुनने का विषय बनी हुई
त्वां = आप
भगवती = महात्रिपुरसुन्दरी को
सन्तः = सन्तजन
अभिदधति = पुकारते रहते हैं।

विशेषः- इस श्लोक के आशय का संकेत करते हुए भगवद्गीता में भी कहा है—

येऽप्यन्यदेवताभक्ता यजन्तेश्रद्धयान्विताः।

तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्।।

अर्थात् जो भक्त मेरे से भिन्न अन्य अग्नि आदि देवताओं की उपासना करते हैं, वे भी पारमार्थिक दृष्टि से मेरी ही उपासना करते हैं।।

प्रकृति से पौराणिक ब्रह्म शक्ति देवता इष्ट भोग मोक्ष को देने वाली भगवती अभिप्रेत है।

अथवा प्रकृति त्रिगुण साम्यात्मिका अपने स्वभाव को आच्छादन करने की क्रीडा में निपुण माया नाम की शक्ति भी कही जाती है। महार्थ मञ्जरी में श्री महेश्वरानन्द ने प्रकृति को शांभवी शक्ति कहा है।

स्वभावः - देवी में स्थित महिमा नामकी शक्ति को ही स्वभाव शब्द से पुकारा जाता है।

अनुवाद

हे माता ! चन्द्रमा, विष्णु, ब्रह्मा, प्रकृति, जीवात्मा, परमात्मा, सूर्यदेवता, परमशिव का स्वरूप, बौद्धों के श्रेष्ठगुरु बुद्ध, आकाश, वायु, शिव और शक्ति—इन विकल्पात्मक शास्त्रोक्त नामों से सन्त-जन आप महात्रिपुरसुन्दरी को ही पुकारते रहते हैं। भाव यह है कि जितने भी नाम संसार में हैं वे सभी नाम आप जगद्रूपिणी माता के ही हैं।। ३३।।

प्रविश्य स्वं मार्गं सहजदयया देशिकदृशा।
षडध्वध्वान्तौघच्छिदुरगणनातीत करुणाम्।
परानन्दाकारां सपदि शिवयन्तीमपि तनुं
स्वमात्मानं धन्याश्चिरमुपलभन्ते भगवतीम्* ।। ३४।।

पदच्छेद अन्वय सहित

प्रविश्य स्वं मार्गं सहजदयया देशिक दृशा।
षट् अध्वान्त ओघ च्छिदुर गणनाअतीत करुणाम्।
परानन्दाकारां सपदि शिवयन्तीं अपि तनुं
स्वं आत्मानं धन्याः चिरं उपलभन्ते भगवतीम् ।। ३४।।

धन्याः सहजदयया देशिकदृशा स्वं मार्गं प्रविश्य षडध्व-ध्वान्तौघच्छिदुर गणनातीतकरुणां, तनुमपि सपदि शिवयन्तीं परानन्दाकारां स्वमात्मानं भगवतीं चिरम् उपलभन्ते।। ३४।।

शब्दार्थ

धन्याः = पराशक्ति भगवती के शक्तिपात से पवित्र बने हुए भाग्यशाली भक्त जन
सहजदयया = स्वाभाविक दया से परिपूर्ण
देशिकदृशा = सद्‌गुरु के कटाक्षसे
स्वंमार्ग प्रविश्य = अपने परमधाम में प्रविष्ट होकर
स्वमात्मानं भगवतीं = स्वात्म स्वरूपाभगवती को
चिरं = सदा के लिए
उपलभन्ते = प्राप्त करते हैं
जो भगवती परानन्दाकारां = परानन्दमयी
षडध्व = छः अध्वारूपी
ध्वान्तौघ = अन्धकार के पुंज को
च्छिदुर = काटने से
गणनातीत करुणां = अत्यन्त करुणामयी और
सपदि = क्षणमात्र में ही
तनुमपि = भक्त की आत्मा को
शिवयन्तीं = शिवमय बनाती है।

अनुवाद

पराशक्ति भगवती के शक्तिपात से पवित्र बने हुए भाग्यशाली भक्त-जन सहजदयामय सद्‌गुरु के कटाक्ष से अपने परमधाम में प्रविष्ट होकर स्वात्म-स्वरूपात्मिका भगवती को सदा के लिए प्राप्त करते हैं, जो भगवती समस्त षडध्वारूपी अन्धकार को काटने से अत्यन्त करुणामयी है और क्षणमात्र में भक्त की आत्मा को शिवमय बनाती है और इसीलिए परानन्द रूप बनी हुई है।। ३४।।

विशेषः- इस श्लोक में 'धन्य' का अर्थ है–

"धनं–भगवद्भक्ति सौभाग्यरूपं लब्धारो जनाः धन्याः"

अर्थात् जो प्रभु-शक्ति-रूप सौभाग्य प्राप्त करते हैं, वे धन्य कहलाते हैं।।

शिवस्त्वं शक्तिस्त्वं त्वमसि समया त्वं समयिनी
त्वमात्मा त्वं दीक्षा त्वमयमणिमादिर्गुणगणः।
अविद्या त्वं विद्या त्वमसि निखिलं त्वं किमपरं
पृथक्तत्त्वं त्वत्तो भगवति ! न वीक्षामह इमे।। ३५।।

पदच्छेद अन्वय सहित

शिवः त्वं शक्तिः त्वं त्वं असि समया त्वं समयिनी
त्वं आत्मा त्वं दीक्षा त्वं अयं अणिमा आदि गुणगणः।
अविद्या त्वं विद्या त्वं असि निखिलं त्वं किं अपरं
पृथक् तत्त्वं त्वत्तः भगवति ! न वीक्षामहे इमे।। ३५।।

हे भगवति ! त्वं शिवः, त्वं शक्तिः, त्वं समया असि, त्वं समयिनी, त्वमात्मा, त्वं दीक्षा, अयमणिमादिर्गुणगणः त्वम्, त्वमविद्या, विद्या त्वमसि, त्वं निखिलं, किमपरम्। इमे वयं त्वत्तः पृथक्तत्त्वं न वीक्षामहे।। ३५।।

शब्दार्थ

हे भगवति ! = हे पराशक्ति भगवती
त्वं शिवः = आप ही शिव हैं
त्वं शक्तिः = आप अनुग्रहकारिणी शक्ति है
त्वं समयाअसि = आप ही सृष्टि आदि द्वादश चक्रों में ठहरी हुई विधि अर्थात् उपाय बनी हुई है।
त्वं समयिनी = आप ही समयिनी अर्थात् उन अनाख्य विधियों का संचालन करने वाली हैं
त्वं आत्मा = आप ही आत्मा हैं।
त्वं दीक्षा = आप ही आत्मज्ञान देने वाली और पाशों को मिटाने वाली है।
त्वं अयं अणिमां आदि गुणगाणः = आप ही ये अणिमा आदि आठ सिद्धियां हैं
अविद्या त्वं = आप ही अख्याति रूपिणी अविद्या हो
त्वं विद्या = आप ही स्वरूप विकास रूप विद्या हो
त्वं निखिलं = तुम सम्पूर्ण रूप हो।
किमपरं = वह कौन सी वस्तु है जो आप नहीं है
इमेवयं = ये हम आपके भक्त
त्वत्तः = आपके स्वरूप से
पृथक् = भिन्न
तत्त्वं = कोई भी तत्त्व
न वीक्षामहे = नहीं देखते हैं

अनुवाद

हे सर्वैश्वर्यसंपन्ना माता ! आप ही शिव हैं, आप अनुग्रहकारिणी शक्ति हैं, आप ही सृष्टि आदि द्वादशदेवी-चक्रों में ठहरी हुई विधि अर्थात् उपाय बनी हुई हैं, आप ही समयिनी अर्थात् उन अनाख्य-विधियों का संचालन करने वाली हैं (प्रत्येक अनाख्य-विधियों से साधक को मध्य-धाम में ले जाने वाली हैं), आप ही आत्मा हैं, आप ही आत्म-ज्ञान देने वाली और पाशों को नष्ट करने वाली दीक्षा हैं, ये अणिमादि आठ सिद्धियां भी आप ही हैं, स्वरूप-अख्याति रूपिणी अविद्या और स्वरूप-विकास रूप विद्या भी आप ही हैं। वह कौन सी वस्तु है जो आप नहीं है। आपकी अनुग्रहशक्ति से पवित्र बने हुए हम आपके भक्त आपके स्वरूप से भिन्न कुछ भी नहीं देखते हैं।। ३५।।

विशेषः- शिव से तात्पर्य शिवरूप गुरु है, शक्ति से तात्पर्य अनुग्रह नामक शक्तिपात है। समयिनी = समयः भक्तरक्षार्थं प्रतिज्ञा वचनं अस्ति यस्याः सा समयिनी।

त्वं आत्मा शिव की अष्टमूत्तियों में से यजमान मूत्ति का अभिप्राय है।

दीक्षा = गुरु शब्द रूपा। कहा है दीयते विपुलं ज्ञानं क्षीयते कर्म वासना इति दीक्षा। दीक्षा, क्रिया दीक्षा शब्दकला, स्पर्श, वाक्, दृष्टि और मानस दीक्षा के प्रकारों से सात प्रकार की कही गई है।

असंख्यैः प्राचीनैर्जननि ! जननैः कर्मविलया-
द्गते जन्मन्यन्ते गुरुवपुषमासाद्य गिरिशम्।
अवाप्याज्ञां शैवीं क्रमतनुमपि त्वां विदितवान्
नयेयं त्वत्पूजास्तुतिविरचनेनैव दिवसान्।। ३६।।

पदच्छेद अन्वय सहित

असंख्यैः प्राचीनैः जननि ! जननैः कर्मविलयात्-
गते जन्मनि अन्ते गुरुवपुषं आसाद्य गिरिशम्।
अवाप्य आज्ञा शैवीं क्रमतनुं अपि त्वां विदितवान्
नयेयं त्वत्पूजास्तुतिविरचनेन एव दिवसान्।। ३६।।

हे जननि ! असंख्यैः प्राचीनैः जननैः कर्मविलयात् गते—लब्धे अन्ते जन्मनि, गिरिशं गुरुवपुषं आसाद्यं, शैवीमाज्ञामपि अवाप्य क्रमतनुं (अक्रमक्रमा-क्रमाकमरूपां) त्वां विदितवान् (अहं) त्वत्पूजा स्तुतिविरचनेनैव दिवसान् नयेयम्।। ३६।।

शब्दार्थ

हे माता ! = हे माता
प्राचीनैःअसंख्यैः = पूर्वकालीन अनन्त
जननैः = जन्मों में, देव नर पशु, पक्षी आदि शरीरों को धारण करते करते, निरन्तर आपकी अनुग्रहमयी शक्ति से
कर्मविलयात्गते = कर्मफलों के समाप्त होने पर
लब्धेअन्ते जन्मानि = यह अन्तिम जन्म मैंने प्राप्त किया है।
गिरिशं = इस मोक्ष प्राप्ति-प्रद जन्म में भगवान् शंकर को
गुरुवपुषं = गुरु के रूप में।
आसाद्य = प्राप्त करके
शैवीं आज्ञां अपि = उन शिवरूप गुरु से शैवी दीक्षा को भी
अवाप्य = पाकर
त्वां = आप परमेश्वरी की
क्रमतनुं = क्रमरुपता का अर्थात् आपके नरशक्तिशिवात्मक त्रिकरूपता का
विदितवान् = साक्षात्कार कर बैठा अब
दिवसान् = इस अन्तिम जन्म के शेष दिन
त्वत् पूजा स्तुति विरचनेनैव = आपकी पूजा और
स्तुति करते करते ही
नयेयम् = बिता दूँ

अनुवाद

हे माता ! पूर्वकालीन अनन्त जन्मों में देव-नर-पशु-पक्षी आदि शरीरों को धारण करते-करते निरर्गल आपकी अनुग्रहमयी शक्ति से, कर्मफलों के समाप्त होने पर यह अन्तिम जन्म मैंने प्राप्त किया है। इस मोक्षप्राप्ति-प्रद जन्म में भगवान् शंकर को गुरु के रूप में प्राप्त करके, उन शिवरूप गुरु-देव से शैवी दीक्षा से संयुक्त होकर आप परमेश्वरी की क्रमरूपता का अर्थात् आपके नरशक्ति-शिवात्मक त्रिकरूपता का साक्षात्कार करके इस अन्तिम जन्म के शेष दिन आपकी पूजा और स्तुति करते-करते ही बिता दूँ।। ३६।।

विशेषः- पारमार्थिक दृष्टि से गुरु शिव रूप ही मानना चाहिये। शिव और गुरु में तनिक भी अन्तर नहीं है इसीलिए कवि ने 'गुरुवपुषं गिरिशम्'—इस शब्द का प्रयोग किया है। कहा भी है—

यस्मान्महेश्वरः साक्षात् कृत्वा मानुष्यविग्रहम्।
कृपया गुरुरूपेण मग्नाः प्रोद्धरति प्रजाः।।

तत्त्वदृष्टि से पारमेश्वरी संविच्छक्ति क्रमाकार है। इस संविद्भगवती में अभेदरूपता से अक्रमता भेदाभेदरूपता से क्रमाक्रमरूपता और भेदरूपता से नरसंबंधी क्रमरूपता है। अतएव शास्त्रों में इस पृथ्वी की त्रिकरूपता सार्थक है।

यत्षट्पत्रं कमलमुदितं तस्य या कर्णिकाख्या
योनिस्तस्याः प्रथितमुदरे यत्तदोंकारपीठम्।
तस्मिन्नन्तः कुचभरनतां कुण्डलीतः प्रवृत्तां
श्यामाकारां सकलजननीं सन्ततं भावयामि।। ३७।।

पदच्छेद अन्वय सहित

यत् षट् पत्रं कमलं उदितं तस्य या कर्णिकाख्या
योनिः तस्याः प्रथितं उदरे यत् तत् ओंकार पीठम्।
तस्मिन् अन्तः कुचभरनतां कुण्डलीतः प्रवृत्तां
श्याम-आकारां सकलजननीं सन्ततं भावयामि।। ३७।।

यत् षट्पत्रं कमलम् उदितम् तस्य या कर्णिकाख्या योनिः, तस्याः उदरे प्रथितं यत्तत् ओंकारपीठम्, तस्मिन् अन्तः कुण्डलीतः प्रवृत्तां कुचभरनतां श्यामाकारां सकलजननीं सन्ततम् (अहं) भावयामि।। ३७।।

शब्दार्थ

यत् = जो इच्छाज्ञान क्रिया के शिव शवत्यात्मक अवस्था में

षट्पत्रम कमलम् = छः पत्तों वाला कमल।

उदितं = उदितरूपता में विकास करता है

तस्य = उस षट्कोण में

या = जो

कर्णिकाख्यायोनिः = योनि के आकार में कर्णिका है

तस्याःउदरे = उसी के बीच में

यत् तत् = जो वह (अलौकिक)

ओंकार पीठं = ओंकार का पीठ है।

प्रथितं = प्रकट है।

तस्मिन् अन्तः = उसके अन्दर

कुण्डलीतः प्रवृत्तां = ऊर्ध्व कुण्डलिनी का स्वरूप धारण करती हुई

श्यामाकारां = श्याम वर्णवाली

कुचभरनतां = ज्ञान क्रियारूप स्तनों के बोझ से झुकी हुई अर्थात् जगदानन्द पदवी की ओर प्रसारित होती हुई।

सकल जननीं = सारे संसार को शिवरूपता में प्रकट करती हुई महात्रिपुर सुन्दरी को मैं

सन्ततं = सदा के लिए

भावयामि = प्रणाम करता हूँ अर्थात् उसमें समावेश करता हूँ

अनुवाद

जो इच्छाज्ञानक्रिया के शिवशक्त्यात्मक अवस्था में षड्दलरूपी कमल उदित-रूपता में विकास करता है, उस षट्कोण में जो योनि के आकार में कर्णिका है, उसी के बीच में ओंकार का पीठ है, उस पीठ पर ऊर्ध्व-कुण्डलिनी* का स्वरूप धारण करती हुई श्यामवर्णवाली ज्ञान-क्रियात्मक स्तनयुगलों से जगदानन्द-पदवी की ओर प्रसारित होती हुई समस्त विश्व को शिवरूपता में प्रकट करती हुई महात्रिपुरसुन्दरी को मैं सदा के लिए प्रणाम करता हूँ अर्थात् उसमें समावेश करता हूँ।। ३७।।

विशेषः- उच्चकोटि के योगी कुण्डलिनी का स्वरूप तीन अवस्थाओं में अनुभव करते हैं। पहिली अवस्था कुण्डलिनी की शान्त अवस्था कहलाती है। इसका अनुभव मूलाधार में होता है। इसको सुप्त-कुण्डलिनी का नाम दिया गया है। जब यह अहंपरामर्श की अधिकता से प्रबुद्ध हो जाती है तब इस कुण्डलिनी को शान्तोदिता-कुण्डलिनी कहते हैं। इसका दूसरा नाम अधःकुण्डलिनी है। इसके पश्चात् जब यह दण्डाकाररूपता को धारण करती हुई ब्रह्मरन्ध्रस्थान तक उदित होती है तो फिर ऊर्ध्वकुण्डलिनी का स्वरूप धारण करती हुई जगदानन्द की अवस्था का अनुभव कराती है। इस श्लोक में कुण्डलिनी के इसी उदित अवस्था की ओर संकेत है।।

कर्णिकाख्या = त्रिकोण कुलासन जो गुरु के मुख से ही जाना जाता है उसी के मध्य में श्यामाकार से तात्पर्य है सर्वसंहारकत्व से काले तिमिररूप को धारण करने वाली।

भुवि पयसि कृशानौ मारुते खे शशाङ्के
सवितरि यजमानेऽप्यष्टधा शक्तिरेका।
वहति कुचभराभ्यां या विनम्रापि विश्वं
सकलजननि ! सात्वं पाहि मामित्यवश्यम्।। ३८।।

पदच्छेद अन्वय सहित

भुवि पयसि कृशानौ मारुते खे शशांके
सवितरि य यजमाने अपि अष्टधा शक्तिः एका।
वहति कुचभराभ्यां या विनम्रा अपि विश्वं
सकलजननि ! सा त्वं पाहि मां इति अवश्यम्।। ३८।।

हे सकलजननि ! या एकापि शक्तिः भुवि, पयसि, कृशानौ, मारुते, खे, शशाङ्के, सवितरि यजमाने च अष्टधा (भूत्वा) कुचभराभ्यां विनम्रापि विश्वं वहति, सा त्वम् अवश्यम् मां पाहि।। ३८।।

शब्दार्थ

सकल जननि! = हे संसार को पैदा करने वाली माता
यः = जो चित्‌चमत्कृतिमयी स्वातन्त्र्य शक्ति एक होकर भी विश्वमय दशा में
भुवि = पृथिवी में
पयसि = जल में
कृशानौ = अग्नि में
मारुते = वायु में
खे = आकाश में
शशांके = चन्द्रमा में
सवितरि = सूर्य में
यजमाने = आत्मा में इन
अष्टधा (भूत्वा) = आठ स्वरूपों में विकसित हुई है।
कुचभराभ्याम् = अपने ही ज्ञान क्रियात्मक स्तनरूपी रश्मिचक्रों की व्याप्ति से
विनम्रापि = झुकी भी है, तथापि ऐसा होकर भी
सा त्वं = वह आप
विश्वं बहति = सारे जगत की सृष्टि स्थिति संहार विलय और अनुग्रह करने का कार्य अनायास में ही धारण करती है।
इति अवश्यं मां पाहि = अतः मुझे भी अवश्य धारण करके रक्षा कीजिये अर्थात् अपने अनुत्तर धाम में प्रविष्ट करायें।

अनुवाद

हे समस्त जगत् को उत्पन्न करने वाली माता ! आप, चिच्चमत्कृतिमयी स्वातंत्र्यशक्ति एक होकर भी विश्वमयदशा में पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश,

चन्द्रमा, सूर्य और आत्मा–इन आठ स्वरूपों में विकसित हुई हैं। यद्यपि आप अपने ही ज्ञानक्रियात्मक स्तनरूपी रश्मिचक्रों की व्याप्ति से अपने विश्वव्यापी असंख्यशक्तियों से झुकी भी हैं, तथापि ऐसा होकर भी आप समस्त जगत् की सृष्टि, स्थिति, संहार, विलय और अनुग्रह करने का कार्य अनायास में ही धारण करती हैं। इत्यतः मुझे भी अवश्य धारण करके रक्षा कीजिये अर्थात् अपने अनुत्तर धाम में प्रविष्ट करायें।। ३८।।

विशेषः- इस श्लोक का सारांश यह है कि पारमेश्वरी संविद्देवी एक होकर ही अनेक रूपों में अवतरित हुई है। प्रथमतः उसका अवतार केवल आठ रूपों में हुआ है। वह आठ रूप हैं–पांच महाभूत, प्राण, अपान और आत्मा। तत्त्वदृष्टि से इन पांच रूपों से ही इसकी विश्वमयता की ओर संकेत है। इन्हीं पांच रूपों में सभी छत्तीस तत्त्व अन्तर्भूत हैं। यह छत्तीस तत्त्व-रूपी संसार जब विश्वोत्तीर्ण-पद प्राप्त करता है तब वह एक रूप अर्थात् शिव-रूप कहा जाता है और जब विश्वमय-रूपता को ग्रहण करता है तब यह अनेकरूप शक्ति कहा जाता है। इस विषय में कहा भी है–

"नौम्यनुत्तरनाथस्य रश्मिचक्रमहं सदा।
शिवशक्तीति विख्यातं परापरफलप्रदम्।।

अर्थात् अनुत्तर-नाथ के शक्तिचक्र को मैं प्रणाम करता हूँ जो शिव शक्ति के नाम से अलंकृत हुआ है और पर-फल-मोक्ष और अपर-फल-भोग को देता है।

इति शिवम्

पञ्चमः सकलजननीस्तवः समाप्तः।।

जय गुरुदेव

ऊँ इन्द्राक्षी स्तोत्रम्

नारद उवाच

इन्द्राक्षी स्तोत्रमाख्याहि नारायणगुणार्णव।
पार्वती शिवसंप्रोक्तम् परं कौतूहलं हि मे।।

नारायण उवाच

इन्द्राक्षी स्तोत्रमन्त्रस्य माहात्म्यं केनोच्यते।
इन्द्रेनादौ कृतंस्तोत्रं सर्वापद्विनिवारकम्।।
तदेवाहं ब्रवीम्यद्य पृच्छतस्तव नारद!

ऊँ अस्य श्री इन्द्राक्षीस्तोत्रमहामन्त्रस्य शची पुरन्दर ऋषिः। अनुष्टप् छन्दः। इन्द्राक्षी दुर्गा देवता। महालक्ष्मीबीजम्। भुवनेश्वरी शक्तिः। भवानी कीलकम् इन्द्राक्षीप्रसादसिद्ध्यर्थे पाठे/जपे विनियोगः।

करन्यासः– ऊँ इन्द्राक्ष्यैअंगुष्ठाभ्यां नमः। महालक्ष्म्यै तर्जनीभ्यां नमः। माहेश्वर्यै मध्यमाभ्यां नमः। अम्बुजाक्ष्यैअनामिकाभ्यां नमः। कात्यायन्यै कनिष्ठिकाभ्यां नमः कौमार्यै करतलकरपृष्ठाभ्याम् नम्ः

हृदयादिन्यासः- इन्द्राक्ष्यैहृदयाय नमः। महालक्ष्म्यै शिरसे स्वाहा। माहेश्वर्यै शिखायै वषट्। अम्बुजाक्ष्यै कवचाय हुं। कात्यायन्यै नेत्रत्रयाय वौषट्। कौमार्यै अस्त्राय फट् भूर्भवस्वरोमिति दिग्बन्धः।

अथ ध्यानम्

नेत्राणां दशभिश्शतैः परिवृतामत्युग्र चर्माम्बरां
हेमाभां महतीं विलम्बितशिखामामुक्त केशान्विताम् ।
घण्टामण्डितपादपद्मयुगलां नागेन्द्रकुम्भस्तनीं
इन्द्राक्षीं परिचिन्तयामि सततं प्रत्यक्ष सिद्धिप्रदाम् ।। १।।
इन्द्राक्षीं द्विभुजां देवीं पीतवस्त्रद्वयान्विताम्।
वामहस्तेवज्रधरां दक्षिणेन वरप्रदाम्।। २।।
इन्द्रादिभिः सुरैर्वन्द्यां वन्दे शंकर वल्लभाम्।
एवं ध्यात्वा महादेवीं जपेत् सर्वार्थसिद्धये।। ३।।

इन्द्राक्षीं नौमि युवतीं नानालंकारभूषिताम्।
प्रसन्नवदनाम्भोजामप्सरोगण सेविताम्।। ४।।
पीताम्बरां वज्रधरैकहस्तां नान विद्यालंकरणां प्रसन्नाम्।
त्वामप्सरासेवितपादपद्मामिन्द्राक्षि वन्दे शिवधर्मपत्नीम्।। ५।।

इन्द्र उवाच–

इन्द्राक्षी पूर्वतः पातु पात्वाग्नेय्यां तथेश्वरी।
कौमारी दक्षिणे पातु नैऋत्यां पातु पार्वती।।
वाराही पश्चिमे पातु वायव्यां नारसिंह्यपि।
उदीच्यां कालरात्री मामैशान्यां सर्वशक्तयः।।
भैरव्यूर्ध्वं सदा पातु पात्वधो वैष्णवी तथा।
एवं दशदिशो रक्षेत् सर्वदा भुवनेश्वरी।।
ओं ह्रीं श्रीं इन्द्राक्ष्यै नमः।। १।।

ओं नमो भगवत्यै इन्द्राक्ष्यै महालक्ष्म्यै सर्वजनवशंकर्यै सर्वदुष्टग्रहस्तम्भिन्यै स्वाहा।। २।।

ओं नमो भगवति पिङ्गलभैरवि त्रैलोक्यलक्ष्मि त्रैलोक्यमोहिनीन्द्राक्षि मां रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा।। ३।।

ओं नमो भगवति भद्रकालि महादेवि कृष्णवर्णे तुङ्गस्तनि शूर्पहस्ते कवाटवक्षःस्थे कपालधरे परशुधरे चापधरे विकृतरूपधरे विकृतरूपे महाकृष्णसर्पयज्ञोपवीतिनि भस्मोद्धलितसर्वगात्रीन्द्राक्षि मां रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा।। ४।।

ओं नमो भगवति प्राणेश्वरि पद्मासने सिंहवाहने महिषासुरमर्दिन्युष्णज्वरपितज्वर वातज्वरश्लेष्मज्वरकफज्वरातपज्वरसन्निपातज्वरकृत्रिमज्वरकृत्यादिज्वर एकाहिकज्वरद्व्याहिकज्वरत्र्याहिकज्वर चतुराहिक ज्वर पंचाहिकज्वरपक्षज्वर मास ज्वरषणमास ज्वर संवत्सरज्वर सर्वाङ्गज्वरान् नाशय नाशय हर हर जहि जहि दह दह पच पच ताडय

ताडयाकर्षयाकर्षय स्तम्भय स्तम्भय मोहय मोहयोच्चाटयोच्चाटय हुं फट् स्वाहा।। ५।।

ॐ ह्रीं ॐ नमो भगवति प्राणेश्वरि पद्मासने लम्बोष्ठि कम्बुकण्ठिके कलिकामरूपिणि परमन्त्र परयन्त्र परतन्त्र प्रभेदिनि प्रतिपक्षविध्वंसिनि परबलदुर्गविमर्दिनि शत्रुकरच्छेदिनि सकल दुष्टज्वर निवारिणि भूतप्रेत पिशाच ब्रह्मराक्षस यक्षयमदूतशाकिनी डाकिनी कामिनीस्तम्भिनी मोहिनीवशंकरी कुक्षिरोग शिरोरोग नेत्ररोग क्षयापस्मार कुष्टादिमहारोग निवारिणि मम सर्वरोगान् नाशय नाशय ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः हुं फट् स्वाहा।। ६।।

ॐ ऐं श्रीं हुं दुं इन्द्राक्षि मां रक्ष रक्ष, मम शत्रून् नाशय नाशय, जलरोगान् शोषय शोषय दुखव्याधीन् स्फोटय स्फोटय, क्रूरानरीन भञ्जय भञ्जय, मनोग्रन्थिप्राणग्रन्थि शिरोग्रन्थीन् काटय काटय इन्द्राक्षि मां रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा।। ७।।

ॐ नमो भगवति माहेश्वरि महाचिन्तामणिदुर्गे सकलसिद्धेश्वरि सकलजनमनोहारिणि कालकालरात्रिरनलेऽजितेऽभये महाघोररूपे विश्वरूपिणि

मधुसूदनि महाविष्णुस्वरूपिणि नेत्रशूल कर्णशूलकटिशूल पक्षशूलपाण्डुरोग कमलादीन् नाशय नाशय वैष्णवि ब्रह्मास्त्रेण विष्णुचक्रेण रुद्रशूलेन यमदण्डेन वरुणपाशेन वासववज्रेण सर्वानरीन् भञ्जय भञ्जय यक्षग्रहराक्षसग्रहस्कन्दग्रहविनायक-ग्रहबालग्रहचौरग्रह कूष्माण्डग्रहादीन् निग्रह निग्रह राजयक्ष्मक्षयरोगतापज्वर निवारिणि मम सर्वज्वरान्नाशय नाशय सर्वग्रहानुच्चाटयोच्चाटय हुं फट् स्वाहा ।। ८।।

अथ इन्द्राक्षीस्तोत्रम्

ॐ इन्द्राक्षी नाम सा देवी दैवतै समुदाहृता।
गौरी शाकम्भरी देवी दुर्गानाम्नीति विश्रुता।।

नित्यानन्दा निराहारा निष्कलायै नमोस्तुते।
कात्यायनी महादेवी चन्द्राघण्टा महातपाः।।
सावित्री साच गायत्री ब्रह्माणी ब्रह्मवादिनी।
नारायणी भद्राकाली रुद्राणी कृष्णापिङ्गला।।
अग्निज्वाला रौद्रमुखी कालरात्री तपस्विनी।
मेघस्वना सहस्राक्षी विकटाङ्गी जलोदरी।।
महोदरी मुक्तकेशी घोररूपा महाबला।
अजिता भद्रदाऽऽनन्दा रोगहर्त्री शिवप्रिया।
शिवदूती कराली च प्रत्यक्षपरमेश्वरी।
इन्द्राणी इन्द्ररूपा च इन्द्रशक्तिः परायणा।।
सदा सम्मोहिनी देवी सुन्दरी भुवनेश्वरी।
एकाक्षरी परब्राह्मी स्थूलसूक्ष्मप्रवर्तिनी।।
नित्या सकलकल्याणी भोगमोक्षप्रदायिनी।
महिषासुरसंहर्त्री चामुण्डा सप्तमातृका।।
वाराही नारसिंही च भीमा भैरवनादिनी।
श्रुतिः स्मृतिर्धृतिर्मेधा विद्यालक्ष्मीः सरस्वती।।
अनन्ता विजयापर्णा मानस्तोकापराजिता।
भवानी पार्वती दुर्गा हैमवत्यम्बिका शिवा।।
शिवा भवानी रुद्राणी शंकरार्द्धशरीरिणी।
ऐरावतगजारूढा वज्रहस्ता वरप्रदा।।
धूर्जटी विकटी खोरी ह्यष्टाङ्गी नरभोजनी।
भ्रामरी काञ्चिकामाक्षी क्वणन्माणिक्यनूपुरा।
ह्रींकारी रौद्रवेताली ह्रुंकार्यामृतपायनी।
त्रिपाद्भस्मप्रहरणा त्रिशिरा रक्तलोचना।।
शिवा च शिवरूपा च शिवशक्ति परायणी।
मृत्युंजयी महामायी सर्वरोगनिवारिणी।।
ऐन्द्री देवी सदाकालं शान्तिमाशु करोतुमे।

ईश्वरार्धाङ्गनिलया इन्दुबिम्बनिभानना।।
सर्वरोगप्रशमनी सर्वमृत्युविनाशनी।
अपवर्गप्रदा रम्या आयुरारोग्यदायिनी।।
इन्द्रादिदेवसंस्तुत्या इहामुत्र फलप्रदा।
इच्छाशक्तिः स्वरूपा च ज्ञानशक्ति महाफला।।
ऐन्द्रीदेवी महाकाली महालक्ष्मी नमोस्तुते।
एतैर्नामपदैर्दिव्यै स्तुता शक्रेण धीमता।।

अथ फलम्

परितुष्टावरं प्रादात् तस्मैदेवी तदीप्सितम्
आयुरारोग्यं ऐश्वर्यअपमृत्युर्भयापहम्।।
क्षयापस्मार कुष्ठादि तापज्वर निवारकम्।
शीतज्वरनिवारणं ऊष्णज्वर निवारकम्।
सन्निज्वर निवारणं सर्वज्वर निवारकम्।
सर्वरोग निवारणं सर्व मङ्गलवर्धनम्।।
शतमावर्तयेद्यस्तु मुच्यते व्याधि बन्धनात्।
आवर्तयेत् सहस्त्रंतु लभते वाञ्छितं फलम्।
एतत्स्तोत्रं महापुण्यं जपे तु आयुवर्धनम।
विनाशाय च रोगानां अपमृत्युहराय च।

प्रार्थना

सर्व मंगलमांगल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोस्तुते।।
अष्टदोर्भिसमायुक्ते नानायुद्धविशारदे।
भूतप्रेत पिशाचेभ्यो रोगतीव्रमुखैर्पिच।
नागेभ्यो विषयेन्द्रेभ्यः अभिचारैः महेश्वरि।।
रक्षमाम् रक्षमाम् नित्यं प्रत्यहम् पूजितामया।।

इति।

जय गुरुदेव।

ईश्वरस्वरूप
स्वामी लक्ष्मणजी महाराज
शैवाचार्य

वैशाख कृष्ण द्वादशी तदनुसार ९ मई १९०७ को श्रीनगर, कश्मीर में उत्पन्न।

आबाल ब्रह्माचारी। वैभवपूर्ण परिवार में पालन-पोषण।

अपने परमगुरु शाम्भवयोगी श्रीराम की संवित् ज्योति से बाल्यावस्था में ही प्रकाशित होकर अपने गुरु श्री महताब काक की उद्दाम सूर्य किरणों से रंजित। युवावस्था में ही कश्मीर-शैवदर्शन की बारीकियों को अनुभव के साथ-साथ समझाने में सक्षम। परावाक् की अनुकम्पा से विद्वत् दिग्गजों को अभिभूत करने में सचेष्ट। देशीय-विदेशीय संस्कृतभाषा के धुरन्धर विद्वानों से पूजित। कश्मीर शैवदर्शन सम्बन्धी गूढ़तम उलझनों को सुलझाने में दक्षहस्त। रविवासरीय व्याख्यानों में उपदेशामृत से जनता को पारमार्थिक मार्ग पर अग्रसर कराने का एकमात्र ध्येय। आध्यात्मिक अनुभूति का उज्ज्वल स्तम्भ। आश्विन कृष्णचतुर्थी २१ सितम्बर १९९१ को अनुत्तर प्रकाश में लीन।

स्वामी जी महाराज की प्रसिद्ध रचनायें :-

१. त्रिकशास्त्ररहस्य प्रक्रिया (हिन्दी में)

२. Secret Supreme (अंग्रेजी में)

३. शिवसूत्रविमर्शिनी विस्तृत व्याख्या सहित (अंग्रेजी में)

४. तंत्रालोक प्रथम आह्निक (हिन्दी में)

५. भगवत् गीतार्थ संग्रह अभिनवगुप्त की संस्कृत टीका सहित।

६. क्रमनयप्रदीपिका

७. विज्ञान भैरव, विस्तृत व्याख्या सहित (अंग्रेजी में) ईश्वर आश्रम ट्रस्ट प्रकाशन

८. शिवस्तोत्रावली हिन्दी व्याख्या सहित

९. कुण्डलिनीविज्ञान रहस्य (अंग्रेजी)

१०. वातूलनाथ सूत्र (अंग्रेजी)

११. साम्बपंचाशिका रहस्यात्मक व्याख्या सहित

१२. पंचस्तवी विशेष अनुवाद सहित